विद्यापति

शक्ति-स्तुति

कनक भूधर······फलदे।

परिचय—यह पद विद्यापति की पदावली के 'प्रार्थना और नाचारी' नामक प्रकरण से लिया गया है। विद्यापति शिव के भक्त तथा शाक्त थे। उन्होंने शक्ति की उपासना में बहुत सी स्तुतियां लिखी हैं, उन्हीं में से एक पद यह है। जिसमें कवि ने शक्ति को अनेक विशेषणों से सम्बोधित करते हुए तथा अपने आश्रय दाता शिवसिंह की इष्ट फल दायिनी बताते हुए शक्ति की जय मनाई है। स्तुति से महाराज शिवसिंह की मंगलकामना ध्वनित होती है।

शब्दार्थ—कनक=सोना। भूधर=पर्वत। चय = समूह, पुंज। चारु=सुन्दर। हासिनी=हँसी वाली। दशन=दांत। कोटि=पंक्ति, कोर। वंकिम=तिरछी। तुलित = लटकी हुई, समान। क्रुद्ध= क्रोध युक्त। बल=शक्ति, सेना। निपातिनी=मारने वाली। महिष, शुम्भ, निशुम्भ=तीन राक्षस जिन्होंने ने देवताओं को तंग कर दिया था तथा जो बाद में देवी के द्वारा मारे गये थे। भीत=डरे हुए। भयापनोदन पाटले=भय+अपनोदन+पाटले, डर के दूर करने में चतुर। दुरित=विघ्न, पाप। दुर्गमारि विमर्द कारिणी=प्रबल शत्रुओं का नाश करने वाली। सुरासुराधिप मंगलायतरे=सुर [देव] असुरों [राक्षसों] के अधिपों [स्वामियों] के लिए मंगलायतरा अर्थात मंगल रूप। गगन=आकाश। गर्भ-गाहिनी=गर्भ [बीच] में अवगाहन [मन्थन] करने वाली। समर =युद्ध। भूमिषु=स्थली में। परशु=फरसा, कुल्हाड़े जैसा एक अस्त्र

की निधि। चोर = ठग और काम, क्रोध, विषय, इन्द्रिय आदि दुर्भाव जो ज्ञान को हरने वाले हैं। बटोहिया=राही । पांच पचीस तीन=पांच इन्द्रियाँ, काम क्रोध आदि भाव और त्रिताप आदि ३३ चोर। सोर = शोर। बाट=रास्ता । अनेरा=दूर । बोर=डुबो देती है।

अर्थ—[कबीर बटोही को सम्बोधन करके कहते हैं।] हे पथिक! [साधक], तुम क्यों पड़े सो रहे हो?, तुम्हारे माल मत्ते के पीछे चोर लगे हुए हैं । गिनती में वे ३३ हैं और उन्होंने शोर मचा रखा है। जागो, भाई, सवेरा [जीवन का प्रथम प्रहर] होने वाला है, रास्ता लम्बा है और फिर जोर नहीं लगेगा। [तब न हो सकेगा] [इसके साथ ही] भव सागर नामक गहरी एक नदी बहती है, जिसके पार यदि नहीं उतर जोगे तो वह तुम्हें डुबो देगी। इसलिए, कबीर कहते हैं, सुनो सन्तो सवेरा जागते हुए ही करना चाहिये-समय रहते चेत जाना चाहिये।

अभिप्राय यह है कि जीव की यात्रा लम्बी है। उसके ज्ञान की संचित निधि के पीछे इन्द्रिय ग्राम और काम क्रोध आदि चोर [ज्ञान को हरने वाले) पड़े हुए हैं, किन्तु वह भूला हुआ है। कबीर उसे समय पर चेतन होकर अपने मार्ग पर सजग होकर चलने को और इस भव सागर रूपी नदी को पार करने (संसार के विषय मोह माया को छोड़ देने का) का उपदेश देते हैं और चेतावनी देते हैं कि यदि वह समय रहते चेत कर इस नदी (भवसागर) के पार नहीं हुआ तो यह उसे बहाले जायेगी—वह अपने मार्ग से छूट कर नष्ट हो जायेगा।

७. मोरी चुनरी में परिगयो दाग।..........

परिचय—वर्तमान पद में कबीर कर्म के संस्कार का वर्णन करते हैं। चुनरी से उनका अभिप्राय देह से है। इसमें संस्कार

पाश=जाल, फेंक कर मारने का एक जालनुमा अस्त्र। कृपाण= खड्ग, तलवार। शायक=बाण। शस्त्र=एक हथियार जो फेंक कर मारा जाता है। अष्ट भैरवि=देवी भगवत् में आठ भैरवियां जो देवी की सेविकायें मानी गई हैं। संग शालिनी=साथ रखने वाली। कृत=रचित, की गई। कदम्ब मालिनी=कदम्ब के फूलों की माला पहनने वाली। दनुज-राक्षस। शोणित=खून। पिसित =मांस। बर्द्धित=बढ़ी हुई। पारणाभ से=पारण [व्रत पूरा होने पर अन्न ग्रहण] की आभा से पूर्ण। निदान=कारण। मोचनि= छुड़ाने वाली। कृशानु=अग्नि। लोचनि=आंखों वाली। रस= आनन्द। जगती संसार में। विरंचि = ब्रह्मा। शेषर=मस्तक। चुम्ब्यमान=चुम्बित, स्पर्श होते हुए। परिच्युति=मुक्ति। तोषिते= प्रसन्न हुई। फलदे=फल देने वाली।

अर्थ—हे स्वर्ण के पर्वत की चोटी पर निवास करने वाली, चन्द्रमा की चांदनी के पुंज के समान (शुभ्र) हंसी वाली, अपने दांतों की पंक्ति की छटा से चन्द्रमा की टेढ़ी कला की समानता करने वाली क्रोधित होकर देव-शत्रुओं (राक्षसों) की सेना अथवा शक्ति का नाश करने वाली, महिषासुर, शुम्भ और निशुम्भ नाम के राक्षसों का विनाश करने वाली, डरे हुए भक्तों का भय दूर करने में चतुर तथा महान् शक्ति वाली, पापों का नाश करने वाली, बड़े २ शत्रुओं को कुचलने वाली अपनी भक्ति मे झुके हुए देव और असुरों के स्वामियों को मंगल देने वाली, आकाश मार्ग का मन्थन करने वाली, युद्ध भूमि में शेर की सवारी करने वाली, परसा, पाश, खड्ग, बाण, शंख और चक्र नाम के अस्त्रों को धारण करने वाली, आठ भैरवियों के साथ रहने वाली, कपाल (मुण्डो) रूपी कदम्ब के फूलों की माला पहनने वाली, राक्षसों के खून और मांस से अपने पारण (व्रत के पूर्ण होने पर अन्न ग्रहण करने) के उत्सव की छटा को बढ़ाने वाली, सांसारिक

ज्ञानी] है और वही बड़ा भारी सुन्दर भी है। रावण से बड़ा कौन राजा था, पर वह अपने गर्व [अहंकार] में ही गल गया (नष्ट हो गया)। ग़रीब राक्षस बेचारा विभीषण क्या था ? किन्तु राम ने हँस २ कर (बड़ी प्रसन्नता से) उसके सिर पर छत्र (राज्य छत्र) धारण कराया [उसे राज्य पद दिया]। सुदामा [कृष्ण का सह पाठी निर्धन ब्राह्मण मित्र] से बढ़कर। कौन निर्धन था, प्रभु ने स्वयं उसको प्रसन्न किया (संसार तो भगवान् को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है, किन्तु सुदामा को स्वयं भगवान् ने प्रसन्न करने का प्रयत्न किया)। अजामील [प्रसिद्ध भक्त] से अधिक कौन नीच था, लेकिन [भगवान् की शरण में आने पर] मृत्यु को भी उसके पास जाते डर लगने लगा था। नारद [देव-ऋषि] से बड़ा कौन सन्यासी या वैराग्य वान् था, किंतु [अपने ज्ञान के गर्व के कारण] भगवत् प्रसाद के बिना वह दिन-रात चक्कर खाता फिरता है (नारद का सृष्टि-भ्रमण प्रसिद्ध है)। कुब्जा से अधिक कौन कुरूप होगी (वह कुबड़ी थी), लेकिन [प्रसन्न होने पर] कृष्ण ने उसे अपनी पत्नी बना कर तार दिया [हरि को पति रूप में पाकर वह तर गई] सीता से बढ़कर कौन सुन्दरी थी, परन्तु [अपने सौन्दर्य गर्व के कारण या राम की प्रसन्नता के अभाव में] उसने प्रायः जन्म भर वियोग ही भोगा। शंकर से बढ़कर योगी कौन हो सकता है लेकिन [अहंकार या भगवान् की अप्रसन्नता के अभाव में] उन्हे काम देव ने जलाया [देवताओं के आग्रह पर एक बार काम देव ने शंकर की समाधि भंग करने के लिए उन पर बाण प्रहार किया था फल स्वरूप शंकर ने क्रोधित होकर उसे भस्म कर दिया था, पर समाधि भंग होने के कारण उद्वेग तो शंकर के हृदय में भी हुआ ही था।] सूरदास कहते हैं कि आज तक यह किसी को ज्ञात नहीं हुआ कि वह रसिक [रसीला-भगवान्] किस भाव से किस रूप में प्रसन्न हो सकता है ? इसी लिए भगवान् के भजन के बिना प्राणी बार २ [गर्व में

बन्धन के कारणों को छुड़ाने वाली, चांद, सूर्य और अग्नि के नेत्रों वाली, योगनियों के गीतों से अपनी नृत्यशाला के आनन्द को बढ़ाने वाली, संसार में जन्म, मरण और पालन के हज़ारों कार्यों की कारण स्वरूप, विष्णु, ब्रह्मा और शिव के मस्तकों से विचुम्बित (स्पर्शित) चरणों वाली, समस्त पाप की रीतियों से मुक्ति देने वाली कविवर विद्यापति से की हुई स्तुति द्वारा प्रसन्न होकर महाराज शिवसिंह को इष्ट (मन चाहा) फल देने वाली, हे देवी ! दुर्गे ! तुम्हारी (सदा) जय हो।

विशेष—कवि ने इस पद में शक्ति को जिन विशेषणों से विभूषित किया है, वे सब सार्थक हैं। क्योंकि शक्ति ही संसार में एक ऐसी वस्तु है कि जिसके बल पर मनुष्य अपनी सारी बाधाओं को दूर कर सकता है। ब्रह्मा विष्णु और महेश आदि सभी देव शक्ति के सामने नतमस्तक होते हैं। कवि ने असुरों का नाश और देवों का मंगल करने वाली जिस शक्ति की स्तुति इस पद में की है तथा जो विशेषण उसके लिए प्रयुक्त किये हैं, वे सभी राजा शिवसिंह अथवा किसी भी उपासक को मन चाहा फल देने की सामर्थ्य दिखलाते हैं, इससे कवि के वर्णन में और भी सौन्दर्य बढ़ गया है। पद में अर्थ और भाव की अपेक्षा लय की मधुरता अधिक है।

कबीर

साखी

परिचय—कबीर की वाणी का संग्रह बीजक के नाम से हुआ है, जिसके रमैणी, सबद और साखी तीन भाग हैं। साखी में कबीर ने साम्प्रदायिक शिक्षा, सिद्धान्त के उपदेश लौकिक तथा अलौकिक अनुभूतियों का वर्णन दोहों में किया है। प्रस्तुत पुस्तक में कबीर के ऐसे ही दोहों का संग्रह दिया गया है। इन दोहों की भाषा राजस्थानी

के लिए हुआ है] और वे भयभीत हुआ में बलराम को भी आवाज़ देते हैं।

१३ मैया मैं नहीं माखन खायो।............

परिचय—यह भी बाल कृष्ण की एक क्रीड़ा का सुन्दर चित्र है। यशोदा डांट रही है और भगवान अपनी मां को झूठ बोल कर बहका रहे हैं !!

शब्दार्थ-दधि=दही। ख्याल परे=ऐसा ज्ञान पड़ता है। मिलि=मिलकर। देखि-देख। सींके=छींके। भाजन=बर्तन। धर=रखकर। निरखि=देख। कैसे करि=किस तरह से। पीठि=पीठ पीछे। दुरायो=छुपाया। सांट=लकड़ी या सोंटी, छड़ी। डरि=डालकर, छोड़कर। गहि=पकड़कर। मोह्यो=मोह लिया। जसुमति=यशोदा। विरची=ब्रह्मा। बौरायो=पागल हो गया, भ्रान्त हो गया, ललचा गया।

अर्थ—[यशोदा डांट रही है और कृष्ण इन्कार कर रहे हैं कि] मैया मैंने दही नहीं खाया। ऐसा ख्याल पड़ता है कि मेरे इन सब हमजोलियों [मित्रों] ने जबर्दस्ती मेरे मुंह में लिपटा दिया है। तूही देख छींके में रख कर बर्तन [मक्खन का] इतने ऊंचे लटकाया हुआ है, भला मैं अपने इन छोटे छोटे हाथों से इसे कैसे ले सकता था? दोना तो [जिसमें माखन था] भगवान कृष्ण ने पीठ के पीछे छुपाया हुआ है और इस प्रकार झूठ बोल रहे हैं। भगवान के इस झूठे बहाने [चतुराई] को सुनकर यशोदा का हृदय वात्सल्य से उमड़ पड़ता है और वह डांटने को उठाई लकड़ी को एक ओर डाल कर मुस्करा देती है और कृष्ण को उठाकर हृदय से चिपटा लेती है। बाल क्रीड़ा में उसका मन डूबा हुआ है, इस प्रकार यशोदा का मन कृष्ण अपनी बाल क्रीड़ाओं से मोह लेते हैं। सूर कहते हैं यह सब भक्ति का प्रताप है। यशुमति [यशोदा] का सुख सौभाग्य देखकर शिव और ब्रह्मा

और पंजाबी से मिश्रित खड़ी बोली है। अपने किसी-किसी दोहे में कबीरदास बड़े पते की बात कह गये हैं। कबीर की कविता की मुख्य विशेषता आत्मिक शान्ति है, जो उनके यहां उद्धृत दोहों को पढ़कर भी अनुभव की जा सकती है। दोहों के भाव विद्यार्थियों की सुविधा के लिए अर्थ के साथ-साथ ही लिखे गये हैं। उनके द्वारा विद्यार्थी कबीर की वाणी का रसास्वादन भली भांति कर सकते हैं।

१. जाके मुंह माथा·········तत्व अनूप ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर अपने मत के अनुसार अनुपम तत्व (संसार का कारण रूप निर्गुण ब्रह्म) का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—जाके=जिसके। पुहुप=पुष्प, फूल। बास=सुगन्धि। तैं=से। पातरा=पतला। अनूप=अद्भुत, अनुपम।

अर्थ—जिसके न तो माथा है, न मुंह है, न अच्छा-बुरा कुछ रूप है, जो फूल की सुगन्धि से भी पतला है, ऐसा अद्भुत (अनुपम, निराला) वह तत्व है। अर्थात् वह ब्रह्म रूप तत्व नीरूप, अत्यन्त सूक्ष्म और अनुपम है न वह प्रत्यक्ष हो सकता है और न किसी की उपमा या उदाहरण देकर ही उसको समझाया जा सकता है।

२. एक कहौं·········कबीर विचारि ॥

परिचय—इस पद्य में भी कबीर ने उसी एक भी और अनेक भी दो विरोधी गुणों वाले परमात्मतत्व का वर्णन किया है जो अवर्णनीय है।

शब्दार्थ—कहौं=कहूं। गारि=अनुचित बात। बिचारि=विचार कर।

अर्थ—(उस परम तत्व को) एक बताऊं तो (ठीक नहीं, क्योंकि) वह ऐसा है नहीं और अगर दो कहूँ तो यह भी अनुचित है, (इसलिए) कबीर विचार कर कहते हैं कि वह जैसा है वैसा ही रहे (वह अकथनीय है, उसके वर्णन का प्रयत्न व्यर्थ है)।

नीचे खड़े हुए हैं।

यह भी कृष्ण के एक मोहक नटवर रूप का मधुर ध्यान है। सूर ने अनेक सुन्दर और उपयुक्त उपमा और रूपकों के द्वारा कृष्ण के शरीर-माधुर्य और उनकी विविध अलंकारिक वेशभूषा का चित्र बनाया है जो अत्यन्त विशद और रसमय है। कृष्ण का दोनों ओर गोपियों से परिवारित और विविध शृंगार किये रूप का स्पष्ट चित्र सामने आजाता है। भक्ति सर्वत्र व्यंग्य है।

१७. बरनौ बाल भेष मुरारि·······

परिचय—जैसाकि प्रथम पंक्तिसे ही प्रकट है सूर ने इस पद में कृष्ण के एक अन्य मधुर रूप का ध्यान उपस्थित किया है। इस में उन्होंने कृष्ण का शंकर के रूपक द्वारा वर्णन किया है।

शब्दार्थ—बरनौं=वर्णन करूंगा, या करता हूं। मुरारि=
कृष्ण। संकित=भ्रम में पड़े हुए। जितकित=इधर उधर। अमर=
देव। मानौ=मानो। त्रिपुरारि=त्रिपुर राक्षस का अरि (शत्रु)
शंकर। किय=करके। ललित=मनोहर। ललाट=मस्तक। केसरि
=केशर। जनु=मानों। त्रिलोचन=तीन नेत्रों वाला महादेव।
रह्यो=रहा है। जारि=जलाना। रिपु=शत्रु, काम। अंभोज=कमल।
गरल=विष। उर=वक्ष, छाती। भाय=भाव। मदनारि-मदन
(काम) का अरि, शंकर। कुटिल-टेढ़े। हरिनख=सिंहनख। ईश-
शंकर। जनु-मानों। रजनीस-रजनीश, चन्द्रमा। हूते-से भी।
सदनरज-गृहधूलि। इहिअनुहारि-इस प्रकार से। त्रिदस पति-
त्रिदश (देव) का पति, इन्द्र। वज्र-इन्द्र का शस्त्र, विद्युत्। कर
-करता है। आरि-जिद। चारि-चार। जाको-जिसको।

अर्थ—(सूर कहते हैं) मैं भगवान् कृष्ण के बालरूप का वर्णन करता हूँ। नन्दलाल को देख कर जिधर देखो उधर ही देवता ऋषि मुनि सब लोग हैरान खड़े हैं। सिर के बाल बिना हवा के ही चारों

अभिप्राय यह है कि उस परम तत्व को एक कहें तो भी ठीक नहीं, क्योंकि उपाधि भेद (रूप भेद) से वह अनेक है, और अगर दो कहें तो भी अनुचित बात है, क्योंकि उस परम तत्व जैसा सर्व शक्तिमान कोई दूसरा बताना उसे गाली देना है। अन्त में विचार कर इसी निर्णय पर पहुंचते है कि वह जैसा है वैसा ही रहे। उसके वर्णन करने का प्रयत्न व्यर्थ है, सफल नहीं हो सकता।

३. सरगुण की सेवा·········हमारा ध्यान ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर अपने ध्यान की भूमि (स्थान) का वर्णन करते हैं, कि वे ध्यान किसमें लगाते हैं।

शब्दार्थ—सरगुण=सगुण,मूर्तिधारी। निर्गुण=रूप रहित, निराकार।

अर्थ—(चाहे तुम भगवान् के) सगुण रूप की सेवा करो और चाहे निर्गुण रूप का ज्ञान प्राप्त करो, परन्तु (कबीर कहते हैं) हमारा ध्यान तो निर्गुण सगुण से परे (ऊपर) है।

भाव यह है कि कबीर निर्गुण और सगुण रूपो से भी परे परम तत्व, जो न केवल सगुण ही है और न निरा निर्गुण ही, प्रत्युत दोनों है, और इनमें से एक भी नहीं, में ध्यान लगाते है।

४. सब बन··········जग माहिं ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर साधुओं की दुर्लभता का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—दल=फौज। माहिं=में।

अर्थ—सभी बनों में चन्दन नहीं होता। सेना में सारे ही शूर-वीर नहीं होते (अधिकतर कायर होते हैं) और सभी समुद्रों में मोती नहीं होते। इसी प्रकार, कबीर कहते हैं, जगत में साधुओं (सज्जन पुरुषों) के विषय में भी समझना चाहिये। अर्थात्, जगत में सज्जन लोग सर्वत्र नहीं मिलते, सौभाग्य से ही मिलते हैं।

सीता—श्रति तनु धनु ....मारै न मेरो ॥८८॥

परिचय—सीता क्रुद्ध हो रावण को लताड़ती है, राम का प्रभाव बताती है और उसे वहां से निकल जाने को कहती है।

शब्दार्थ—अति=बहुत। तनु=पतली। धनु रेखा=धनुष की रेखा। नाकी=लांघी। खल=दुष्ट। खर=तीक्ष्ण। सर=शर, बाण। ताकी=उसकी। विड़कन=विष्ठा कण। घूरे=कूड़े का ढेर। घन=भारी। भखि=खाकर। जीवै जिये। सिव=शिव। श्री=कला। छीवै=छुए। उठि=उठ, खड़ा हो। ह्यांते=यहां से। भागु=भाग। तौ लौं=तब तक। मम=मेरे। विषवर्ग=सांप की तरह उड़ने वाले। जौ लौं=जब तक। बिकल=नष्ट। आसुरी=राक्षसी। निपट=निपट। तो कों=तुझे। रोष=क्रोध।

अर्थ—अरे दुष्ट रावण! तेरे से जिनकी पतली सी धनु रेखा (लक्ष्मण ने सीता के चारों ओर जो पंचवटी में धनुष से रेखा खींची थी) ही नहीं लांघी गई, उनके बाणों की तीखी धार तू कैसे सहेगा? बाज कूड़े के ढेर में से विष्टा कणों को खा २ कर नहीं जीता। भला शिव के सिर पर स्थित चन्द्र कला को राहु कैसे ग्रस सकता है?

उठ, खड़ा हो, भाग जा यहां से तब तक, जब तक सांपकी तरह फैलने वाले मेरे वचन तेरा शरीर नहीं लेते। मैं वंश सहित तेरे राक्षसी नाम का अन्त देख रही हूँ। मेरा क्रोध तुझे इस लिए नहीं मारता कि तू तो पहिले प्रायः मरा हुआ है (तेरे सिर पर काल खेल रहा है)।

विशेष—सीता एक ही बात में रावण की शेखी किरकिरी कर देती है लक्ष्मण की धनु रेखा का जिक्र करके, जिसका केवल सीता और रावण को ही पता था। छोटे भाई का ही तप तेज बल अजय है, फिर बड़े का तो क्या बात? सीता रावण को विष्टाहारी और राम को शिवकी उपमा देती है। अन्त में क्रोध में हो उसे यहां से निकल जाने को कहती है।

५. बृच्छ कबहुं न·········धरा सरीर ॥

परिचय—इस दोहे में कबीर सज्जनों के निःस्वार्थ और परोपकारी भाव का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—बृच्छ=वृक्ष। कबहुं=कभी। संचै=संग्रह करती है। परमार्थ=परोपकार। कारने=लिए, कारण से।

अर्थ—वृक्ष (स्वयं) कभी (अपने) फल नहीं खाते और नदी (अपने लिए कभी) जल का संग्रह नहीं करती। कबीरदास कहते हैं कि (वस्तुतः) परोपकार के लिए ही साधु पुरुषों ने शरीर धारण किया हुआ होता है। अर्थात सज्जन परोपकारी लोग दूसरे के भले के लिए धन आदि का संग्रह करते हैं, उनका जन्म परोपकार के लिए ही होता है।

६. जाति न पूछो·········दो म्यान ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर साधु के ज्ञान की प्रशंसा करते हैं।

शब्दार्थ—साध=साधु। तरवार=तलवार।

अर्थ—(कबीर कहते हैं) साधु की जाति न पूछिये, उसका ज्ञान पूछ लीजिये, तलवार का मोल करो (जो असली चीज़ है) उसकी म्यान को एक ओर पड़ा रहने दीजिए। अर्थात जैसे तलवार की क़ीमत उसके म्यान के कारण नहीं होती, प्रत्युत तलवार के कारण होती है, इसी प्रकार साधु का मूल्य उसकी जाति के कारण नहीं, बल्कि उसके ज्ञान के कारण है। अतएव साधु की जाति से कोई वास्ता नहीं, उसके ज्ञान से होना चाहिये।

७. साधु ऐसा चाहिए·········बगीचा माँहिं ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर साधु की निःसंग दशा (अलग रहने की दशा) या किसी को दुःख न देने की वृत्ति का वर्णन करते हैं।

यमुना सौन्दर्य

[हरिश्चंद्र

१ तरनि तनू जा तट········मन सुख लहत ।

परिचय-भारतेन्दु जी ने यमुना तट के जल को स्पर्श करते हुए वृक्षों का अनेक उत्प्रेक्षाओं द्वारा वर्णन किया है ।

शब्दार्थ-तरनि तनू जा तट=सूर्य की लडकी यमुना के तट पर । मनहु=मानो । किधौं=क्या, या । मुकुर=शीशा । उझकि= झुक कर । कै=क्या । प्रनवत=प्रणाम करते हैं । मनु = मानो । आतप=धूप । वारन=हटाने ।

अर्थ-यमुना तट पर घने तमाल वृक्ष छाये हुए हैं, जो ऐसे शोभा पाते हैं, मानो जल का स्पर्श करने को झुके हों । क्या वे झुक झुक कर जल रूपी दर्पण में अपने रूप की शोभा देख रहे हैं ? क्या वे जल को परम पवित्र मानकर फल के लोभ से, उसे प्रणाम कर रहे हैं ? मानो तट की धूप से रक्षा करने को उस पर सघन होकर छाये हों, या जैसे कृष्ण सेवा के प्रेम में खडे हों । उन्हे देख देखकर हृदय और नयनों को शांति मिलती है ।

२-३ कहूं तीर पर कमल ·· ·· ·निज जल धरत ।

परिचय--यमुना मे असंख्य श्वेत लाल कमल खिल रहे हैं । कवि यमुना को कृष्ण की प्रिया के रूप में मान कर उन कमलों पर अनेक उत्प्रेक्षाएं करता है ।

शब्दार्थ--अमल = स्वच्छ । संवालन = शैवालों, कुमुदिनी=श्वेत कमल । पातिन=श्रेणियां । मनु=मानो । दृग=

शब्दार्थ—दुखवै=दुखमाने। दुखावै=दूसरे को दुखित करे।

अर्थ—(कबीर कहते हैं कि) साधु ऐसा होना चाहिए जो (किसी कारण से) न आप दुखी हो और न दूसरों को दुख दे, वह बग़ीचे में निवास करे पर उसके फल फूलों को न छेड़े या तोड़े।

भाव यह है कि साधु पुरुष को विपत्ति में या किसी के बुरे कार्य द्वारा न तो स्वयं दुखी होना चाहिये और न अपने किसी कार्य से किसी को दुख देना चाहिये।

८. साधू भया·········भरी भगार।

परिचय—इस पद्य में कबीर ऐसे साधु का वर्णन करते हैं, जिसका बाह्य रूप तो साधु जैसा है पर अन्दर झाड़ झंखार (मैल) भरा है।

शब्दार्थ—भंगार=घास-फूस, कचरा।

अर्थ—बाहर (गले में) चार मालाएं पहिन कर अगर कोई साधु हो गया तो क्या हुआ अर्थात इससे क्या लाभ ? बाहर से तो वेश (साधु जैसा) बना लिया पर अन्दर झाड़-झंखार, (कचरा) भरा हुआ है। अर्थात केवल माला आदि पहिन कर साधु का आडम्बर कर लेने से कोई लाभ नहीं, जब तक कि अन्दर में कूड़ा कचरा (मैल) भरा हुआ है।

९. दाढ़ी मूंछ·········भरिया खोट।

परिचय—यहां कबीर साधु के लिए आडम्बर की निन्दा कर मन को वश में करने की प्रशंसा करते हैं।

शब्दार्थ—मुंडाय कै=मुंडवाकर। घोटम घोट=बालों को सफाचट करवाना। भरिया=भरा हुआ है।

अर्थ—(कबीर कहते हैं कि) दाढ़ी मूँछें सफा करवा कर घोटम घोट तो हो गये, पर अपने मन को क्यों नहीं मूंडते (साफ स्वच्छ करते) जिसमें खोट (बुराई) भरी है। अर्थात बाहरी सफाई से

ब्रजवासी दास

१. कहवि जसोदा कौन·········पै धरिये ।

परिचय—यशोदा ने भूल से कृष्ण को चांद दिखा दिया है। अब वे उसे खाने को मांगते हैं, रोते हैं और हठ करते हैं। यशोदा किंकर्तव्यविमूढ़ है। कवि ने इसी बाल लीला का स्वाभाविक वर्णन किया है।

शब्दार्थ-विधि = तरह से । दिखाओं=दिखाया। मोकों= मुझको। तोकों=तुझे । खैहो=खाओगे । बहुरो=फिर। पैहो= पाओगे। पालागों=पांव पड़ती हूं । आधि=अधिक । रिसहि- क्रोध से। छीजत-कम होता है। जसुमति-यशोदा । श्यामैं- श्याम को। बहरावै-बहलाती है। आव-आरे । तेहि-उसे। नैकु-जरासी भी। धरनी-जमीन, पृथ्वी।

अर्थ-यशोदा कहती हैं, मैंने भूल से कृष्ण को चांद दिखा दिया, अब ये उसे खाने को मांगते हैं। किस तरह समझाऊं ? (कहती है) यह चन्द्रमा ही पुत्र ! मुझे हर रोज माखन दिया करता है, जो मैं चण चण तुम्हें देती हूँ। हे श्याम ! यदि तुम इसे ही खा जाओगे तो फिर मक्खन कहां पाओगे ? बाल गोविन्द ! हठ नहीं करो, यह चांद तो खिलौना है, इसे दूर से ही देखते रहो। पांव पड़ती हूँ, अधिक हठ नहीं करो, क्रोध ही क्रोध में शरीर कमजोर होता है, बलिजाऊं। यशोदा सोचती है, क्या करना चाहिये, कृष्ण चांद को मांगते हैं, कहां से लाकर दूं ? सोच कर तब यशोदा ने एक

कोई लाभ होने की सम्भावना नहीं, साधु बनने के लिए अन्दर की (मन की) सफाई चाहिये।

१०. साधु ऐसा.........देइ उड़ाय ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर साधु के सत्य असत्य के विवेक (ज्ञान) की प्रशंसा करते हैं।

शब्दार्थ—सूप=छाज । सुभाय=स्वभाव । सार=तत्व, असलीयत । गहिरहै=ग्रहण करले ।

अर्थ—साधु का स्वभाव ऐसा होना चाहिये जैसा छाज का होता है, अर्थात जो सार (असली तत्व) को ग्रहण करले और फोक को त्याग दे । अर्थात जैसे छाज कूड़े को फेंक देता है और अन्न के दानों को रखे रहता है, इसी प्रकार का साधु का स्वभाव भी होना चाहिये जो सार वस्तु (गुणों) को ले और फोक (बुराई) को छोड़ दे ।

११. कबिरा संगत.........वास सुवास ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर सत्संगति की महिमा का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—वास=निवास । संगत=संगति, मेल ।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि साधु की संगति (मेल-मिलाप) ऐसी है जैसे गंधी (इत्र बेचने वाले) का (पास में) निवास । गंधी चाहे कुछ दे नहीं, पर उसके निवास (पास रहने) से ही सुगन्धि अवश्य आती है । अर्थात गंधी के पड़ौस से चाहे वैसे कुछ न मिले पर सुगन्धि का लाभ तो होता ही है, इसी प्रकार साधु चाहे कुछ दे नहीं, पर उसकी संगति से सुमति और सद् ज्ञान का लाभ तो होता ही है ।

१२. काजर केरी.........निकसन हार ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर संसार की मोह माया के बन्धन का वर्णन करते हैं कि उसका काटना बड़ा कठिन है ।

शब्दार्थ—काजर केरी कोठरी=काजल की (केरी) कोठरी, काजर की कोठरी। पैठिके=घुसकर। निकसन हार=निकल सकने वाला।

अर्थ—(कबीर कहते हैं) यह संसार काजल की कोठरी जैसा है, उस दास (सन्त) पर मैं न्यौछावर होता हूँ, जो इसमे घुसकर भी (बाहर) स्वच्छ निकलने मे समर्थ है अर्थात् संसार की मोह माया का जाल इतना प्रबल है कि इसमें घुसकर उसमें फंसे बिना कोई रह नहीं सकता। अत: कबीर ऐसे साधु पर बलिहारी होने को तैयार हैं, जो संसार में घुस कर भी कमल की तरह निर्लेप रह कर उससे निकल सकता है।

१३. सांई तेरा.........ढूंढै घास॥

परिचय—इस दोहे में कबीर ब्रह्म की व्यापकता और जीव की अज्ञता (मूर्खता) के स्वरूप का वर्णन करते है।

शब्दार्थ—सांई=स्वामी। तुझ में=तेरे मे। पुहुपन=पुष्प। बास=गन्ध। मिरग=हिरण।

अर्थ—(कबीर कहते हैं कि) तुम्हारा स्वामी तुम्हारे अन्दर ही निवास करता है, ऐसे,जैसे,फूलों में गन्ध। इसी प्रकार मृग की नाभी में कस्तूरी रहती है पर कस्तूरी का मृग (कस्तूरी के लिए) घास को ढूंढता है वैसे ही तुम अपने स्वामी को इधर-उधर खोजते फिरते हो।

भाव यह है कि ब्रह्म या ईश्वर हर वस्तु में इस प्रकार व्याप्त है, जैसे पुष्पों में सुगन्धि और मृग की नाभि में कस्तूरी, जो दिखाई नहीं देती पर जिसकी सत्ता का प्रतिपल अनुभव (मृग को) होता है। जीव की दशा मृग जैसी है, जो नाभि (घट) में लिए हुए भी कस्तूरी (प्रभु) को अज्ञानवश घास में ढूंढता फिरता है और पता नहीं पाता, इसी प्रकार मर जाता है।

१४. लघुतासे.........सिर धूर॥

परिचय—इस पद्य में कबीरदास लघुता, (तुच्छता) या विनय के भाव की प्रशंसा करते हैं और बडप्पन [अभिमान] की निन्दा करते हैं।

शब्दार्थ—लघुता = विनीतता, नम्रता। प्रभुता = स्वामित्व स्वामी पन। सक्कर=चीनी, मीठा।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि] नम्रता [विनय] से तो प्रभुता प्राप्त होती है, पर स्वामी होने पर उससे प्रभु [स्वामी या ईश्वर] दूर हो जाते हैं। चींटी [जो छोटा जीव है] को शक्कर मिलती है, पर हाथी [जो, अभिमानी जीव है] के सिर पर धूल ही पडती है।

अभिप्राय यह है कि प्रभु तुच्छ, लघु, अकिंचन प्राणी को अपनाते हैं, बड़े और अभिमानी को नहीं है। विनय और नम्रता से आदर और सम्मान मिलता है, किन्तु बड़ा हो जाने पर [अभिमान आ जाने पर] उसके सिर में धूल पड़ती है। जैसे चींटी को शक्कर मिलती है पर हाथी के सिर में धूल पड़ती है, क्योंकि वह अभिमानी है।

१५. जो जल बाढ़ै ······को काम ॥

परिचय—इस दोहे में कबीर व्यवहार-मार्ग के लिए एक नीति की बात कहते हैं।

शब्दार्थ—बाढ़ै=बढ़ जाय। उलीचिये=अंजलि भर के पानी सींचना या बाहर फेंकना। कौ=का।

अर्थ—यदि नौका में जल और घर में धन बढ़ जाय तो [कबीर कहते हैं कि दोनों हाथों से उसे निकालना चाहिये अर्थात शीघ्र से शीघ्र उसे कम करना चाहिये।

अभिप्राय यह है कि नौका में जल बढ़ने पर जैसे उसे दोनों हाथों से बाहर फेंकने में ही कल्याण होता है, नहीं तो नौका डूबने का भय रहता है, इसी प्रकार घर में भी दाम (धन) बढ़ जाने पर

उसे दोनों हाथों से दान करना चाहिये, नहीं तो घर का घर ही माया के सुखों में डूब जाएगा।

१६ माला तो............सुमिरन नाहिं।

परिचय—इस पद्य में कबीर जी मन की स्थिरता के बिना ध्यान लगाने का तिरस्कार करते हैं।

शब्दार्थ—कर=हाथ। मनुवा=मन। दहुँ=दसों। दिस=दिशाएं। सुमिरण=स्मरण, ध्यान, भजन।

अर्थ—हाथ में माला फिर रही है और मुख में जीभ भी घूम रही है, पर मन दसों दिशाओं में चक्कर काट रहा है तो (कबीर कहते हैं) यह स्मरण या ध्यान का तरीका नहीं है। अर्थात जब तक मन भी संसार के विषयों से हट कर एकाग्र न हो जाय, तब तक हाथ में माला घुमाते और मुख से राम नाम का उच्चारण करने से कोई लाभ नहीं। स्मरण या ध्यान की यह विधि नहीं होती, सच्चा ध्यान तो मन से लगता है।

१७ भक्ति भाव... ....मास ठहराय।

परिचय—इस पद्य में कबीर स्थिर (अचल) और अस्थिर [चंचल] भक्ति का भेद लिखकर अचला भक्ति की प्रशंसा करते हैं।

शब्दार्थ—सबै=सभी। घहराय=घुमड़कर। सरिता=स्वच्छ जल वाली शान्त नदी। मास=महीना।

अर्थ—भक्ति भावना के अनेक प्रवाह भादुवे [बरसात] के महीने की नदियों के समान उमड़ घुमड़कर बह चले हैं, पर सरिता [स्वच्छ जल का प्रवाह तो वही प्रशंसनीय है जो जेठ के महीने में भी ठहरी रहे, सूखे नहीं।

विशेष—कबीर के समय में भक्ति का प्रवाह अनेक मत मतान्तरों के रूप में बहने लगा था। जो देखो वही किसी न किसी पद्धति का भक्त बना बैठा था। कबीर का अभिप्राय है कि वैसे तो

झूठे सच्चे सभी भक्ति का राग गाते हैं, पर वस्तुतः तो सच्ची भक्ति वही है, जिसका किसी भी काल में-घोर से घोर संकट में भी नशा कम न हो। इसी बात को उन्होंने नदियों के रूपक से बताया है कि बरसात में तो सैंकड़ों नदी-नाले प्रवाहित हो जाते हैं, पर प्रशंसा तो उसी नदी की है जो सर्वदा, जेठ में [गर्मी में] भी सूखे नहीं, बहती रहे। ऐसे ही भक्ति भी वही है जो सदा स्थिर रहे।

१८. कबिरा हम..............चाक ॥

परिचत—इस पद्य में कबीर गुरू के सच्चे उपदेश से उत्पन्न अपने ज्ञान की परिपक्वता का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—कबिरा=कबीर दास। गुरू रस=गुरू का उपदेश या ज्ञान। छाक=इच्छा। पाक=पक गया। कलस=घड़ा। चढ़सी=चढ़ेगा। बहुरि=फिर, दोबारा।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि हमने गुरू से ज्ञान [उपदेशामृत] का पान किया है [समझा है] अब और [ज्ञान की] लालसा शेष नहीं है। कुम्हार का घड़ा जब एकबार पक गया तो फिर दोबार चाकपर नहीं चढ़ेगा।

अभिप्राय यह है कि जैसे एक बार पक जाने पर कुम्हार के घड़े को दोबरा चाक पर चढ़ाने की आवश्यकता नही रहती, उसी प्रकार, कबीर कहते हैं कि, उन्हें सद्‌गुरु से सद्ज्ञान प्राप्त करके सन्तुष्टि हो चुकी है, अब उन्हें और उपदेश की इच्छा नहीं रही है।

१९. जाको राखै..............बैरी होय।

परिचय—इस दोहे में कबीर ईश्वर में अगाध विश्वास कर सब चिन्ताओं से मुक्त हो जाने की सलाह देते हैं।

शब्दार्थ—जाको=जिसको। सांईयां=स्वामी [ईश्वर]। कोय=कोई।

अर्थ—[कबीर कहते हैं] जिसकी ईश्वर रक्षा करता है, उसे कोई नहीं मार सकता। उसका यदि संसार भी शत्रु होजाय तो भी बाल

बाँका नहीं कर सकता [कुछ नहीं बिगाड़ सकता]।

अभिप्राय यह है कि संसार में सब कुछ परमात्मा की इच्छा से होता है, उसकी बिना इच्छा के कोई कुछ नहीं कर सकता।

२०. ज्यों तिल मांहि.............तो जाग।

परिचय—इस पद्य में कबीर ईश्वर की व्यापकता का स्वरूप बता कर जीव को चेता रहे हैं।

शब्दार्थ—चकमक=एक पत्थर, जिसके रगड़ने से आग पैदा हो जाती है। [Fire Stone]। जागि सके=जाग सकता है।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि] जैसे तिल में तेल और चकमक पत्थर में अग्नि [अदृश्य रूप में] व्याप्त रहती है, उसी प्रकार तुम्हारा स्वामी [ईश्वर] तुम में रम रहा है, [हे जीव !] यदि तू जाग सकता है तोजाग जा।

अभिप्राय यह है कि ईश्वर सब जगह, जीव के अन्दर भी विद्यमान है, उसे कहीं बाहर खोजना भूल है। जो पहिचानना चाहे तो वह उसे अपने में ही पहिचान सकता है।

२१ गगन गरजि......दास कबीर।

परिचय—इस पद्य में वर्षा के बहाने से कबीर अपनी आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति की दशा का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—गरजि=गरज कर। गहर=गहरा। दिसि=दिशाओं में। दमकै=चमकती है। दामिनी=बिजली।

अर्थ—आकाश में गहरे [काले] और गम्भीर बादल गरज कर बरस रहे हैं, चारों दिशाओं में बिजली चमक रही है और कबीरदास भीग रहे हैं।

विशेष—अर्थ से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि कबीर ने वर्षा ऋतु का वर्णन किया हो, जो साधारण है, परन्तु बात ऐसी नहीं है।

कबीर ने वस्तुतः यहां बादल और वर्षा के बहाने से अपने अध्यात्मिक आनन्द के अतिरेक [आधिक्य] की दशा का चित्र खींचा है। ईश्वर बादल रूप है, जो अपनी सत्ता का पता अपनी चमक-दमक और गर्जन-तर्जन जैसे, अनेक रूपों से दे रहा है। उससे ज्ञानामृत की वर्षा होती है, जिसमें भीग कर कबीर जैसा सन्त ही उसके आनन्द का रस लेता है।

२३ सुन्न सरोवर······जाने भेव ॥

परिचय—इस दोहे में कबीर शून्य अर्थात् ब्रह्म के ज्ञान की दुर्जयता [प्रबलता] का वर्णन करते हैं कि उसे कोई विरला ही प्राप्त कर सकता है।

शब्दार्थ—सुन्न=शून्य, निराकार ब्रह्म। मीन=मछली। विलसही=विकसित या शोभित होता है। विरला=कोई-कोई। भेव=भेद, रहस्य।

अर्थ—शून्य (निराकार ब्रह्म) के तालाब मे मन मछली रूप है (मछली की तरह चंचल होकर इधर-उधर चक्कर काटता है), उसके जल के किनारे पर देव गण बैठे हैं जो उसमें अवगाहन (स्नान) कर उसका आनन्द नहीं ले सकते—क्योंकि यह कार्य उनके वश का नहीं है। उस अमृत के समुद्र में आनंद कमल की तरह शोभित हो रहा है। कबीरदास कहते हैं कि इसका भेद किसी विरले (एक आध) को ही ज्ञात होता है, सब उसे नहीं जान पाते।

विशेष—कबीर के मत से जगत मिथ्या [शून्य] और ब्रह्म सुख रूप तथा सत्य है। मन की चंचलता और भ्रान्ति के कारण ही जगत की स्थिति दृष्टिगोचर होती है। वैसे यह स्थिर नहीं है। इस बात को कबीर ने निराकार ब्रह्म को सरोवर और मन को मीन का रूप देकर व्यक्त किया है, कबीर का कथन है कि वास्तविक आनन्द उस निराकार रूपी ब्रह्म में ही निहित है, जिसकी उपमा उन्होंने सरोवर में खिले

हुए कमल से दी है, किन्तु इस रहस्य को कोई कबीर जैसा सन्त ही जान पाता है, देवता भी इसे नहीं जानते, वे उस सरोवर के किनारे पर ही बैठे हुए हैं, उसमें स्नान कर उसका आनन्द लेने की शक्ति उनमें नहीं है।

२३—औगन को तो·········चीन।

परिचय—इस दोहे में कबीरदास परमात्मा को पहिचानने का मार्ग बताते हैं।

शब्दार्थ—औगन = अवगुन, बुराई। गहै=ग्रहण करे। लैबीन=चुनले। मंहके=गूँजता है, महकता है। मधुप=भौंरा। लैचीन=पहिचान ले।

अर्थ—कबीरदास कहते हैं कि जो मनुष्य बुराई को तो लेता नहीं, गुणों को छांट-छांट कर ग्रहण करता है और घर घर में भौंरे की तरह गूंजता[मंडराता]फिरता है तो इस प्रकार वह परमात्माको पहिचान लेगा।

अभिप्राय यह है कि ईश्वर की खोज करने वाले व्यक्ति को गुणों का संग्रह और अवगुणों का त्याग करना चाहिये। ऐसा करता हुआ जब वह तत्व ग्राही भौंरे की तरह संसार में घूमेगा तो वह अवश्य परमात्मा को पहिचान लेगा, क्योंकि जड़ और चेतन समस्त संसार में ईश्वर परोक्ष [छिपे हुए] रूप में निवास करता है, जिसका प्रकाशन जीव के गुणों से होता है। ईश्वर के इन उत्तम गुणों के ग्रहण से गुणी ईश्वर का ज्ञान ऐसे मनुष्य को स्वतः ही हो जाता है।

२४. छीर रूप·············छाछनहारे॥

परिचय—इस दोहे में कबीर ईश्वर और जगत् का नीर-क्षीर (दूध और पानी का) विवेक कराने वाले साधु का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—छीर=क्षीर, दूध। सतनाम=ब्रम्ह,ईश्वर। व्यवहार=संसार के कार्य, जगत का व्यवहार। तत=तत्व, सत्य। छाननहार=

छानने वाला, पृथक् पृथक करने वाला, फोक निकाल कर तत्व ग्रहण करना।

अर्थ—(कबीर कहते हैं) ईश्वर [सत] का नाम दूध रूप है, जगत का व्यवहार जल रूप है और उन दोनों को [विचार से] पृथक् पृथक् कर सार [दूध] ग्रहण करने वाला कोई विरला साधु हंस का रूप है जो जगद्व्यवहार रूपी जल [व्यर्थ वस्तु] को छोड़ देता है और सतनाम रूपी दुग्ध को पी लेता है।

अभिप्राय यह है कि संसार मिथ्या है, उसमें सारभूत वस्तु रामनाम ही है, जिसे सच्चा साधु विवेक के साथ ग्रहण कर लेता है और जगत के निरर्थक व्यवहार को छोड देता है।

२५. जबलग..............कहावै सोय ॥

परिचय—कबीर सच्चे भक्त का वर्णन करते हैं, जिसने संसार छोड दिया है, क्योंकि संसार मार्ग और भक्ति का परस्पर विरोध है।

शब्दार्थ—कहावै=कहाये। सोय वही।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि] जब तक जगत् से सम्बन्ध है, तब तक भक्ति नहीं हो सकती है। जो संसार से सम्बन्ध तोड़ ले और परमात्मा का भजन करे, वस्तुतः वही भक्त कहा सकता है। अर्थात् लोक के मिथ्या व्यवहार को छोड़े बिना भक्ति के आध्यात्मिक मार्ग पर प्रवृत नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि दोनों परस्पर विरुद्ध दशाएं हैं।

२६. येख देखी............कंचुली भुजंग ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर दिखावटी झूठी भक्ति के ढोंग की निन्दा करते हैं।

शब्दार्थ—चढ़सी=चढ़ेगा। छांड़सी=छोड़ देगा। कंचुली=केंचुली। भुजंग=सर्प।

अर्थ—दूसरों की देखा देखी बनावटी भक्ति का ढोंग करने से उसका [भक्ति का] रंग नहीं चढ़ सकता। कबीर कहते हैं कि विपत्ति [संकट] पड़ने पर मनुष्य उसे [भक्ति को] ऐसे छोड़ देगा जैसे साँप केंचुली को छोड़ देता है।

अभि प्राय यह है कि सच्ची [हृदय की] भक्ति से ही मंगल होता है। झूटी—दिखावटी से नहीं। दिखावटी [नकली] भक्ति तो संकट पड़ने पर स्थिर नहीं रह सकती क्योंकि ईश्वर मे निर्बल आस्था संकट के समय तत्काल ही हिल जायगी।

२७. खेत निगारयो… ………में धूर॥

परिचय—इस पद्य में कबीर लालची भक्तों के द्वारा बिगाड़ी हुई भक्ति की शोचनीय दशा का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—खरतुआ=खेत को बिगाड़ ने वाली एक खराब घास। कूर=क्रूर, दुष्ट। धूर= धूल।

अर्थ—खेती को खरतुआ नाम की खराब घासने बिगाड़ दिया, सभा को गुण्डों ने बिगाड़ दिया और भक्ति लालची [लोभी] भक्तों से ऐसे विकृत हो गई जैसे धूल मिल जाने से केशर काम का नहीं रहता। अर्थात भक्ति की दशा लालची भक्तो ने आकर ऐसी ख़राब करदी जैसे खेती को खरतुआ घास बिगाड़ देती है, सभा को दुष्ट बिगाड़ देता है और केशर को धूल बिगाड़ देती है।

२८. जल ज्यों प्यारा…………पियारा नाम॥

परिचय—इस दोहे में कबीर भक्तों के राम-नाम-प्रेम की महिमा का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—माछरी=मछली दाम=पैसा। बालक=पुत्र, संतान।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि भक्त को भगवान् का नाम ऐसा ही प्यारा होता है जैसा मछली को जल, लोभी को धन और मां को बालक प्यारा होता है। भाव स्पष्ट है।

२९. यह तो घर है.............घर मोहि ।,

परिचय- इस पद्य में कबीर ने प्रेम पंथ की कठोरता का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—खाला=मौसी भुई=भूमि । पैठै=घुसे । खाला का घर=आराम की जगह, एक मुहावरा है।

अर्थ—प्रेम के घर में बड़ी तपस्या से प्रवेश किया जाता है। वह कोई मौसी का घर नहीं, जहां जाते ही खातिर होगी। वह तो ऐसा घर है कि जिसमे तब घुसा जा सकता है जब कि पहिले भूमि पर अपना सिर उतार कर रख दिया जाय, अर्थात् मृत्यु के भय को दूर कर दिया जाय। [किंतु सच्चे प्रेमी को मौत का क्या भय ?]

३०......उठा बगूला.............तिन के पास ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर ने उस स्थिति का वर्णन किया है जो प्रभु के प्रेम का मन में संचय करने पर होती है।

शब्दार्थ—तिन का इस शब्द का प्रयोग यहाँ पर कबीर ने जीव, शरीर, आत्मा और परमात्मा के लिए किया है।

अर्थ—जब मन में भगवान के प्रेम का बबूला [आंधी] उठा तो यह जीव रूपी तिनका आकाश में उड़ गया अर्थात् शून्य में समा गया तथा यह शरीर रूपी तिनका तिनकों [मिट्टी] में मिल गया और आत्मा रूपी तिनका उसके पास पहुंच गया, जिसका कि यह था अर्थात आत्मा परमात्मा से जा मिला।

३१. मिलना जग में.............माथे मनि होय ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर वियोग की व्यथा और जीवन की अनित्यता का प्रतिपादन करते हैं।

शब्दार्थ—मिलि=मिलकर । जनि=मत । तेहि=उसको । माथे माणि होय=जो अमर हो, एक पौराणिक मुहावरा, अश्वत्थामा के

मस्तक में मणि थी, इस लिए वह अमर था। इसी आधार पर इस मुहावरे का चलन है।

अर्थ—कबीर कहते हैं मिल कर दुनिया में कोई न बिछुड़े, क्योंकि बिछुड़े सज्जन उन्हीं को मिल सकते हैं जो अमर अथवा भाग्यशाली हों, अन्यथा इस जीवन का क्या भरोसा, पता नहीं किस दिन समाप्त हो जाये।

३२. नैनों की करि............लिया रिझाय॥

परिचय—इस दोहे में कबीर बाह्य [लौकिक] प्रेम के वर्णन के बहाने अपने आध्यात्मिक प्रियतम [निर्गुण राम] के दर्शन [मिलन या ध्यान दशा] का वर्णन करते हैं। यहां कबीर रहस्य वादी के रूप में हैं।

शब्दार्थ—करि=करके। पुतली-पलंग=पुतली रूपी पलंग [शैया] चिक=पर्दा।

अर्थ—[कबीर कहते हैं] प्रियतम को हमने आंखों में बसाकर, पुतली [आंख की पुतली] रूपी पलंग पर आसीन [लिटा] कर के पलकों रूपी पर्दे को डालकर खुश कर लिया है।

भाव यह है कि प्रेमी अपने प्रियतम का आंखें बन्द करके, जगत की ओर से मुंह मोड़कर चुपचाप [क्यों कि उसे किसी को दिखाने के लिए तो कुछ करना नहीं] ध्यान या दर्शन करता है। उसी प्रकार कबीर भी आंखें बन्द करके गुपचुप—दुनिया के दिखावे से दूर रहते हुए—आंखों में अपने प्रियतम (निर्गुण रूप राम) का दर्शन या ध्यान करते हैं। लौकिक प्रेम वर्णन के द्वारा कबीर ने अपने आध्यात्मिक मिलन का संकेत [व्यंग्य] यहाँ किया है।

३३. हस बगुला............मोती खाहिं॥

परिचय—इस पद्य में कबीर ने प्रकृति [स्वभाव] का वर्णन किया है कि दुनिया में अच्छा बुरा सब कुछ है, पर प्राणी अपनी

अपनी प्रकृति या स्वभाव के अनुसार उसका चुनाव कर लेता है।

शब्दार्थ--बगा=बगुला । माहीं=में । ढंढोरे=ढूढ़े । माछरी=मछली । खाही=खाता है ।

अर्थ--हंस और बगुला समान रूप से मानसरोवर [जिसमें मोती और मछली दोनों हैं] में रहते हैं; पर [अपने-अपने स्वभाव या गुण के अनुकूल) उनमें से हंस मोती खाता है और बगुला मछली तलाश करता है।

भाव यह है कि संसार में पाप-पुण्य—अच्छे बुरे कर्म—दोनों विद्यमान हैं, उनमें से किसी को तो पाप पसन्द है जो बुरे कर्म करता है और किसी को पुण्य, जो परोपकार करता है।

३४. सर्पहिं..........विषखाय ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर संसार में दुर्जनों की अधिकता और परोपकारी सज्जनों की दुर्लभता का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ--ह्वै=हो। जाय=जाता है। विष=ज़हर । [या बुरी बात, पाप]।

अर्थ—[कबीर कहते हैं] सांप को दूध पिलायें तो वह उसको ज़हर बना देगा, पर ऐसा [सज्जन] हमें कोई नहीं मिला जो स्वयं ज़हर खा जाय [और शंकर के समान हज़म करके लोक-त्राण करे।]

अभिप्राय यह है कि दुनिया में ऐसे दुर्जन आदमी तो मिलते हैं, जिन्हें अच्छाई दो तो वे उसकी भी बुराई बना लेंगे [जैसे सांप दूध को ज़हर कर देता है] और बुरा काम करेंगे, पर ऐसे आदमी अभी तक कबीर को नहीं मिले जो बुराई को स्वयं हज़म करके विश्व का [शिव के समान] मंगल करें।

३५. कथनी मीठी............अमृतहोय ॥

परिचय—इस दोहे में कबीर कह देने में और करने में अन्तर दिखाकर, करने को [आचरण को] श्रेष्ठ बताते हैं।

शब्दार्थ—कथनी=कहना। करनी=करना, कार्य। तोय=झपट। तजि=छोड़कर।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि किसी बात को या सिद्धान्त को] मुंह से कहते रहने में और उसपर आचरण करने में बहुत भेद है] कह देना तो खांड जैसा मीठा है [आसान है], किन्तु उसको करना (उसपर आचरण करना) विष की ज्वाला की तरह कठिन है। इसलिए कहना छोड कर करनी [कर्तव्य करने] में जुट जाना चाहिए। ऐसा करने से विष भी अमृत हो सकता है, अर्थात् अभिशाप भी एक वरदान बन सकता है।

अभिप्राय यह है कि श्रद्धा और विश्वास के साथ २ जब तक आचरण भी वैसा ही नहीं होता तब तक उसका कोई फल नहीं मिलता। फल आचरण या कर्म में है न कि कोरे कथन में।

३६. पानी मिलै··············धीर ॥

परिचय—प्रस्तुत दोहे मे कबीर अधूरे, खुद ही भटकते हुए गुरुओं की निन्दा करते हैं। क्योंकि उनके समय मे इस प्रकार के अधकचरे गुरुओं द्वारा प्रवर्तित अनेक सम्प्रदाय प्रचलित हो रहे थे उनमें से कुछ इनकी निन्दा भी करते थे।

शब्दार्थ—औरन=औरों को। बकसत=दान करते हो। छीरि=दूध। निसचल=निश्चल, एकाग्र।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि] आप प्यासे मरते हो और दूसरे को दूध पिलाने को कहते हो, अपना मनतो स्थिर नही हुआ है औरों को धर्म का उपदेश देते हो तो व्यर्थ है।

विशेष—यह किसी ऐसे गुरु को कबीर कह रहे हैं जिसे आप तो ज्ञान नहीं हुआ किन्तु जो औरों को ज्ञान देने का ढोंग करता है, या जो स्वयं आत्मा को जानता नहीं और परमात्मा का प्रकाशन करने का दावा करता है।

३७. खरी कसौटी…………मिरतक होय ॥

परिचय--इस दोहे में कबीर जी रामनाम की खरी कसौटी का वर्णन करते हैं कि इसके द्वारा खरे खोटे भक्त की पहिचान हो जाती है।

शब्दार्थ--खरी = सच्ची। कसौटी = एक पत्थर, जिसपर घिसकर सोने की खरे खोटे की पहिचान की जाती है या कोई भी ऐसा साधन जो कि खरे खोटे की पहिचान करने वाला हो। टिकै = ठहरे। जीवत-मिरतक = जीवित मृतक, अर्थात् जिसने जीते हुए ही अपनी व्यक्तिगतसत्ता [इच्छा वासना आदि] का नाश कर दिया हो, जीवन-मुक्त।

अर्थ--[कबीर कहते हैं कि] रामनाम की कसौटी बहुत सच्ची है। इसपर खोटा [भक्त] नहीं ठहर सकता। इस पर तो वही ठहर सकता है जो [अपनी व्यक्तिगत विषय वासनादि रूप भौतिक सत्ता का त्याग कर, ससार से विरक्त हो कर] जीवन में मृतक जैसा हो गया हो। अर्थात भजन में झूटा दिखावटी भक्त नहीं ठहर सकता। उसमें तो वही सच्चा भक्त ठहरेगा जिसने अपने विषय-वासनादिक स्वार्थों को मिटा कर भौतिक व्यवहार को छोड़ दियाहै और संसार से मुंह मोड़ लिया है।

३८ गगन दमामा……

परिचय--इस पद्य में कबीर ने मनुष्य को अन्तिम दशा [मृत्यु] का चित्र खींचा है।

शब्दार्थ--गगन=आकाश, शून्य। दमामा=नगाड़ा। निशाने =निशाना, लक्ष्य। घाव = चोट। शूरमा=शूरवीर, काल। खेत= मैदान।

अर्थ--शून्य में नगाड़ा बज रहा है अर्थात ब्रह्म रंध्र में जीव के कूच करने की ध्वनि सुनाई दे रही है। अरे प्राणी! तुझे शूरवीर काल

मैदान [युद्ध भूमि] में पुकार रहा है, तेरा उससे लड़ने का दाँव [अवसर] आ गया है।

३९ सिर राखे·· ···उजियारा होत।

परिचय·—इस पद्य में कबीर वीरता और निर्भीकता की प्रशंसा करते हैं।

शब्दार्थ —राखै=रक्षा करने पर। सो=वही। बाती=बत्ती कटि=कटकर।

अर्थ—[कबीर कहते हैं] सिर को संभाल-संभाल कर [कायरता पूर्वक] रखने से वह नहीं रह सकता [कायर पुरुष को कोई भी मार सकता है]। सिर को, उसी की प्रशंसा है जो काट दिया जाय [अर्थात सिर की उसी की प्रशंसा है जो वीरतापूर्वक किसी योग्य उद्देश्य [धर्म के हित कटवा दिया जाय]। इसी को उदाहरण से समझते हुए कबीर कहते हैं कि दिये की बत्ती काटने पर ही [उसका फूल झाड़ देने पर ही] वह अधिक प्रकाश करती है।

अभिप्राय यह है कि संसार में शूरवीरों के सिरों की ही क़ीमत है जो किसी महान् उद्देश्य के लिए कटवा दिये जाते हैं। जो कायर छुपछुप कर अपनी खोपड़ी की रक्षा करते हैं, उनकी खोपड़ी कोई न कोई फोड़ जायगा या वे काल के ग्रास तो होंगे ही।

४०. सन्तन·········तजन्त॥

परिचय—इस दोहे में कबीर बताते हैं कि दुष्टों के दुष्टता करने पर भी सज्जन अपना स्वभाव नहीं छोड़ते।

शब्दार्थ—संतई=सन्तपना, साधुता। कोटिक=करोड़। असन्त=दुष्ट। मलय=चन्दन। भुजंगहिं=सर्प को। तजन्त= छोड़ता है।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि] चाहे करोड़ों दुर्जन इकट्ठे होकर आ जायें पर साधु अपने साधुता के स्वभाव को नहीं छोड़ता। चन्दन

कि वृक्ष में सर्प विंधे (घुसे) रहते हैं पर (चन्दन पर उनका कोई असर नहीं होता) वह अपनी शीतलता की प्रवृत्ति (स्वभाव) को नहीं छोड़ता । यहां कबीर ने सन्त और चन्दन में अपना स्वभाव न छोड़ने की समता दिखाई है । साधु को भी ऐसा ही होना चाहिए ।

४१. दुर्लभ········लागे डार ॥

परिचय—इस दोहे मे कबीर मानव शरीर की दुर्लभता को बताते हैं ।

शब्दार्थ—दुर्लभ=मुश्किल से मिलने वाला । तरवर=वृक्ष । बहुरि=फिर ।

अर्थ—(कबीर कहते हैं कि) मनुष्य का यह जन्म उसे बार २ नहीं मिलता, जैसे एक बार पत्ते सूख कर झड़ जाने के पश्चात् वृक्ष में फिर टहनियां नहीं आती । अभिप्राय यह है कि इस दुर्लभ मानव जन्म का दुरुपयोगन न करके किसी अच्छे काम मे इसको लगाओ ।

४२. इक दिन·········नारी जाहि ॥

परिचय—इस पद्य में कबीर बताते हैं कि अन्त समय मे कोई साथ नहीं देता ।

शब्दार्थ—कोऊ=कोई । काहू का=किसी का । नारी=पत्नी और नब्ज, नाड़ी ।

अर्थ—(कबीर कहते हैं कि) एक दिन ऐसा आयेगा (अर्थात् मरण काल) जब कोई किसी का नहीं होगा । अपने घर की नारी (गृहिणी) की तो बात ही क्या अपने शरीर की नारी [नाड़ी—नब्ज़] भी छोड़ जायेगी ।

अभिप्राय यह है कि मृत्युकाल में स्वयं अपना शरीर भी छूट जाता है, अन्य सगे सम्बन्धियों की तो बात ही क्या ? इसलिए संसार में किसी का मोह न करना ही अच्छा है । यहां नारी शब्द श्लेष से दो अर्थ—स्त्री और नाड़ी—लिए गए हैं, व्यंग्य भी सुन्दर बन पड़ता है।

४३.—कबिरा············दुख होय ।।

परिचय—इस दोहे में कबीर किसी का नुकसान न कर आप नुकसान उठा लेने की साधु भावना की प्रशंसा करते हैं।

शब्दार्थ—ठगाइये=धोखा खा लीजिये, ठगे जाइये। कोय=किसी को।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि अपने आप तो चाहे ठगे जाओ पर किसी दूसरे को न ठगो। क्योंकि आप ठगे जाने पर सुख [सन्तोष] की भावना प्रबल होती है और दूसरों को ठगने पर आत्मा को सन्ताप होता है। कबीर साधु के स्वभाव कावर्णन कर रहे हैं कि सच्चे साधु को दूसरे को धोखा देकर मानसिक कष्ट होगा, पर अपना नुकसान होने पर वह सन्तोष कर सुख प्राप्त करेगा।

४४. मांगन मरन··· ····· ··गुरु की सीख ।।

परिचय—इस पद्य में कबीर मांगने की निन्दा करते हैं।

शब्दार्थ—मांगन=मांगना। मति=मत। ते=से।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि] मांगना मरने के समान है, बल्कि मरने से भी बद तर है, इस लिए कोई भी भीख न मांगे, ऐसी हमारे सतगुरु की शिक्षा है। क्योंकि मांगने से मनुष्य का सन्मान घट जाता है।

४५ .पढ़ि पढ़ि के········· ··न ईंट ।।

परिचय—इस पद्य में कबीर ऐसे पुरुषों की निन्दा करते हैं जो पढ़े लिखे तो खूब हैं पर जिनके हृदय में प्रेम का अंश नहीं है।

पढ़ि पढ़ि=पढ़ पढ़ कर। लिखि लिखि=लिख लिख कर। अन्तर=हृदय में।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि] वे लोग पढ़ पढ़ के पत्थर [मूर्ख] ही रहे और लिख लिख कर ईंट [मूढ़] ही बने जिनके हृदय में प्रेम का अंकुर उत्पन्न नहीं हुआ। अर्थात कोरे शास्त्र पढ़ लेने से ही या

लिख लिख कर कागज़ भर लेने से ही मनुष्य जन्म सफल नहीं हो जाता, यदि उसके हृदय में प्रेम का स्पर्श नहीं हुआ है। ऐसे व्यक्ति पद लिख कर भी मूर्ख [पत्थर के समान जड़] ही कहे जाते हैं।

४६. न्हाये धोये············न जाय

परिचय—इस दोहे में कबीर मन को निर्मल किये बिना बाहर की सफाई को निष्फल बताते हैं।

शब्दार्थ—मीन=मछली। बास=सुगन्ध।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि] नहाने धोने से क्या लाभ जब तक कि मन का मैल [खोट] दूर नहीं हुआ [इसी को मछली के उदाहरण से समझाते हैं।] मछली सदैव जल में घूमती रहती है, पर धोने से भी उसके शरीर के अन्दर की दुर्गन्ध नहीं जाती। इसी लिए जब तक अन्दर की दुर्गन्ध [मन का मैल] दूर न करली जाय तब तक बाहर स्नान आदि की सफाई से कोई लाभ नहीं।

४७. काम क्रोध ············एक समान॥

परिचय—इस पद्य में कबीर कहते है कि यदि मन के काम क्रोध आदि बुरे भाव नहीं दूर हुए तो चाहे कोई पण्डित हो और चाहे मूर्ख, दोनो एक जैसे हैं।

शब्दार्थ—घट में=शरीर में, मन में। कहँ=क्या। खाना=खज़ाना।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि] जब तक मन मे काम क्रोध लोभ मोह जैसे बुरे भाव विद्यमान हैं [उन्हे जीता नहीं गया] तब तक क्या पण्डित और क्या मूर्ख दोनों एक जैसे हैं। क्योंकि, मूर्ख तो अज्ञान वश इन पर काबू नहीं पा सकता, अतः वह पशु जैसा है, पर पढ़ लिखकर ज्ञानी बनकर भी जिसने इन बुरे भावों पर विजय नहीं पाई वह भी मूर्ख या पशु के समान है।

४८. माया छाया············भागै सोय।

परिचय—इस पद्य में कबीर माया और छाया के स्वभाव को बताते हैं कि ये दोनों, इन से डर कर भागने वाले के पीछे भागती हैं और जो इनका सामना करले तो ये आगे आगे भागती हैं।

शब्दार्थ—भगताँ=भागते हुए और भक्तों। सनमुख=सामने।

अर्थ—[कबीर कहते हैं कि] माया [धन दौलत मोह ममता की माया] और छाया का स्वभाव एक सा है। इसका भेद किसी किसी को ही ज्ञात है। ये दोनों ही भगतों [छाया की तरफ पीठ करके भागने वालों और भक्तों] का पीछा करती हैं पर इन दोनों का सामना करने पर ये ,डर कर] आगे आगे भागती हैं।

विशेष—माया डरे हुए कमजोर भक्तो का पीछा करती है पर किसी प्रबल के सामना करने पर उसके आगे आगे भाग पड़ती है। छाया भी अपनी ओर पीठ करके भागने वाले के पीछा और अपनी ओर मुंह करके भागने वाले के आगे आगे भागा करती हैं, जो कि अनुभव सिद्ध है।

४६. माया के झक·········आगि॥

परिचय—इस में कबीर माया की सब को वशीभूत करने वाली शक्ति और मनुष्य की अशक्तता का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—माया=धन दौलत। कनक=सोना। कामिनी= सुन्दरी, स्त्री। कस=कैसे। बांचि है=बचेगा। झक=धुन।

अर्थ—रमणी और धन वैभव में लगकर संसार माया की अग्नि में जल रहा है। कबीर कहते हैं, रूई में लिपटी हुई आग है, उस से मनुष्य कैसे बच सकेगा।

अभिप्राय यह है कि मनुष्य धन और स्त्री के लोभ में लग कर दिन रात जलता है। यह माया ही है जो सोने और कामिनी का आकर्षक रूप धारण कर उसके सामने आती है, जैसे आग रूई में लिपटी हुई हो। मनुष्य का इससे बचना मुश्किल है।

धीरे धीरे··············फल होय॥

परिचय—इस पद्य में कबीर सब्र और संतोष की प्रशंसा करते हैं।

शब्दार्थ—हे मना=हे मन। ऋतु=मौसम।

अर्थ—[कबीर कहते हैं] हे मन! सब्र और सन्तोष से काम लो, सब कुछ धीरे धीरे हुआ करता है। माली [फल की आशा में] सैंकड़ों पानी के घड़ों से वृक्ष को सींचता है, पर फल उसको [उस फल की] मौसम आने पर ही प्राप्त होता है, पहिले नहीं। इसलिए यदि वह सन्तोष छोड़कर अधीर हो जाय तो काम न चले।

शब्दावली

पृष्ठ ८

इस प्रकरण में कबीर ने गाने के योग्य, संगीत के आरोह, अवरोह ध्वनि, ताल, लय और राग-रागनियों के आधार पर पद लिखे हैं, जिनमें विभिन्न विषयों का वर्णन है। इन पदों में कबीर ने नाम, रूप, ब्रह्म, जीव, स्वार्थ, परमार्थ और जगत आदि विषयों का वर्णन किया है। सूरदास के पदों की तरह कबीर के ये सबद भी गाने की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध है। इन पदों की रचना प्रधानतया संगीत के आधार पर हुई है, काव्यगत छन्दों के आधार पर नहीं।

१. राम गुण न्यारो न्यारो.........कबीर पुकारे।

परिचय—इस पद में कबीर राम के अवर्ण्य और अकथनीय रूप की चर्चा करते हैं कि उसे आज तक बड़े २ तपस्वी और अवतार भी नहीं समझ पाये। कबीर भगवान के राम और कृष्ण आदि सगुण रूपों के उपासक नहीं थे, अतएव उन्होंने उनको [राम को] ब्रह्म के ढूंढने वालों मेंस्थान दिया है। कबीर इन सबसे अतीत निर्गुण अलक्ष्य रूप के उपासक थे। अतएव वे अज्ञानी संसार पर तरस खाते हैं।

शब्दार्थ—न्यारो न्यारो=विलक्षण। अबुझा=मूर्ख। बूझै= समझै। बूझन हार=जानने वाला, ज्ञानी। लौं=तक। केति=

कितने। बिरमाया=भ्रमण किया। तिन भी=उन्होंने भी। मच्छ, कच्छ, वराह, वामन=भगवान् के अवतार शरीरों (रूपों का नाम, मत्स्यावतार, कच्छपावतार, वराहावतार, सूअर और वामनावतार। बौध=बुद्धावतार। निकलंकी=कल्कि अवतार। केतिक=कितने एक। सिध=सिद्ध। साधक=प्रारंभिक साधन करने वाला। गोरख=गुरु गोरख नाथ। ब्रह्मै=ब्रह्म ने। सनकादिक=सनक, सनन्दादि मुनि गण। तासे=उसके। पैहो=पायेगा।

अर्थ—कबीर पुकार-पुकार के [ऊँचे स्वर में] कहते हैं कि राम [ब्रह्म] का गुण पृथक है [भिन्न है, विलक्षण है]। लोग मूर्ख [अबुझा] हैं, समझाने वाला [बूझन हार] बेचारा कहां तक समझावे। कितने रामचन्द्र जैसे लोग हुए जिन्होंने इस जगत मे विचरण किया और कितने ही वंशी बजाने वाले कृष्ण हुए, उनको भी [राम रूप का] अन्त नहीं मिला। कितने, मत्स्य, कच्छप, वराह [शूकर] वामन आदि नाम वाले कितने बौद्ध और कितने कल्कि [नाम वाले] हुए, पर किसी को भी उसका [राम का] पार नहीं मिला। कितने ही सिद्ध साधक तपस्वी हुए जो जंगलों में जाकर रहे और कितने ही गोरख नाथ जैसे योगी हुए, पर राम का रहस्य नही मिला। [कबीर कहते हैं कि] जिसका रहस्य ब्रह्मा को भी नहीं मिला और जिसको पाने में शंकर, सनक, सनंदन आदि ऋषि हार गये, उसके गुणों को भला मनुष्य कैसे प्राप्त कर सकता है? अर्थात्, भगवान् का रूप न्यारा है, विलक्षण है। उसका किसी भी प्रकार वर्णन नही हो सकता। उसका भेद बड़े २ अवतारों और सिद्ध साधक तपस्वियों को भी नहीं मिला, मनुष्य तो बेचारा कैसे पा सकता है।

२. नाम उतरै ना भाई।............करै बड़ाई॥

परिचय—इस पद में कबीर राम नाम के आनन्द [नशे] का वर्णन करते हैं कि वह कैसा है।

शब्दार्थ—अमल=नशा। छिन छिन=पल पल। चढ़ि=चढ़ाकर दिन=दिनों दिन। सवाई=सवाया। हिय-हृदय में। लागै-लगता है। देत घुमाई-घुमा देता है, मनुष्य भूम जाता है। दुचिताई-बेचैनी। चाखा-स्वाद लिया। गनका-एक वेश्या जो राम नाम से तर गई थी। सदना-एक कसाई जो राम का प्रसिद्ध भक्त हुआ है। जन=आदमी। रसना=जिह्वा। का-क्या।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि राम नाम का नशा [बड़ा गहरा होता है] उतरता ही नहीं। और जितने भी नशे हैं वे थोड़ी देर में चढ़कर उतर जाते हैं पर रामनाम का नशा दिनों-दिन सवाया बढ़ता जाता है। [नाम या भक्त को] देखते ही चढ़ जाता है, सुनने मात्र से हृदय में असर कर जाता है और [नाम का] ध्यान करते ही शरीर को चक्कर दे देता है। ध्यान रहे, और सब नशे खाने से ही असर करते हैं, देखने सुनने और उनका ध्यान करने मात्र से नहीं चढ़ते। किन्तु राम नाम का नशा उन सबसे विलक्षण है। प्याला पीते ही पीने वाला मस्त हो जाता है, उसे नाम [राम नाम] मिल जाता है और उसके हृदय की अशान्ति [उचाट] दूर हो जाती है। जिन लोगों ने नाम के आनन्द का स्वाद लिया है वे तर गये, जैसे गणि-का और सदना कसाई। अन्त में कबीर कहते हैं कि इस नाम का आनंद वर्णन की शक्ति से बाहर है, उसका वर्णन नहीं हो सकता, जैसे गूंगा गुड़ खाकर उसके स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि उसके जबान नहीं होती अतएव उसका वर्णन उसकी शक्ति के बाहर है।

३. पण्डित सोधि कहहु…………पद तहां समाई।

परिचय—इस पद में कबीर ज्योतिषी आदि की खिल्ली उड़ाकर ईश्वर की सर्व व्यापकता बताते हैं और नर्क-स्वर्ग आदि की कल्पना को वृथा बताकर ज्ञान को ही सर्वोपरि कहते हैं।

शब्दार्थ—सोधि=विचार कर, देखभाल कर। कहहु=कहो। आवागमन=जगत मे आने जाने का बन्धन। नसाई=नष्ट हो। औ=और। बस=बसते हैं। सरग=स्वर्ग। कतहूँ=कहीं भी। अन जाने=अज्ञानी। हरि जाने=भगवान को जानने वाले। जेहि=जिसके। पुन्न=पुण्य। संका=शङ्का, भय। पद= स्थान।

अर्थ—(कबीर पण्डित ज्योतिषी की हंसी उड़ाते हुए पूछते हैं कि, हे ज्योतिषी महाराज (पण्डित !) सोच विचार कर, समझाकर बताओ कि जन्म मरण का बन्धन किस विधि से कटेगा और धर्म अर्थ काम मोक्ष आदि चारों पदार्थ किधर, कौनसी दिशा में रहते हैं। उत्तर, दक्षिण, पूर्व पश्चिम, स्वर्ग और पाताल, कोई भी स्थान ऐसा नहीं जो गोपाल (ईश्वर) के बिना हो फिर नरक में कैसे जाते हैं। नर्क और स्वर्ग अज्ञानी के लिए हैं, भगवान को जानने वाले (भक्त) के लिए नहीं। जिसके (पाप पुण्य, नर्क स्वर्ग के) भय से लोग डरते हैं, मुझे उस से कोई डर नहीं है। हमारे मन में न तो पाप पुण्य का भय है और न हम नर्क स्वर्ग में ही जायेंगे। कबीर कहते हैं सुनो भाई सन्तो ! हम तो वहीं जायेंगे जहां पद हैं (भगवानके चरण हैं)

विशेष—कबीर ज्ञानी भक्त थे, शास्त्रीय अन्धविश्वासों से दूर। वे न शास्त्र में विश्वास करते थे और न नर्क स्वर्ग में। वे तो भगवद्भक्त ज्ञानी सन्त थे जो जन्म मरण की चिन्ताओं से दूर थे। वही उपदेश उन्होंने इस पद में दिया है।

४. तो को देव मिलेंगे घूंघट का पट खोल री।...... ...

परिचय—इस पद में कबीर रूपक के द्वारा अपनी आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति का रहस्यवाद के रूप में वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ-तो को=तुझे। देव=प्रियतम। घूंघट=स्त्रियों का पर्दा, अज्ञान का पर्दा। कटुक=कड़ुआ। पचरंग=पांच रंगों

(तत्वों)का। चोल=चोला, शरीर। सुन्न महल=शून्य महल, ब्रह्मरंध्र ध्यान शून्य में ही—जहां कुछ नहीं होता—लगाया जाता है, निर्विकल्प समधि दशा। दियरा=दीपक (ज्ञान का) जुगत सों=युक्ति पूर्वक। अनहद=एक विलक्षण नाद, जो समाधि दशा में योगी को सुनाई पड़ता है।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि हे प्राणी! तू अपने घूंघट [अज्ञान] का पर्दा दूर कर तो तुझे प्रियतम [राम] के दर्शन होंगे। वह स्वामी प्रत्येक प्राणी के हृदय में विद्यमान है, किसी को कड़ुवा बोल न बोल, धन और यौवन का कोई अहकर न कर, यह रंग विरंगा सुन्दर मनुष्य-शरीर झूठा है। शून्य (ब्रह्मरंध्र) मन्दिर में ज्ञान का दीपक जला ले और झूठी आशा के चंगुल में पड़कर विचलित न हो। कबीर कहते हैं कि रंग महल में युक्ति पूर्वक (योग वर्णित युक्तियों से) जाग कर (चैतन्य प्राप्त करके) हमने अपने अमूल्य प्रियतम को पा लिया है अब आनन्द का मधुर अनहद ढोल बज रहा है।

विशेष—अनहद नाद योग मार्ग में प्रसिद्ध अलौकिक शब्द है जो योगी को समाधि की अखण्ड आनन्द की दशा में सुनाई पड़ता है। यहां निर्विकल्प समाधि का वर्णन है, जिसमें अन्य विषय का स्पर्श ज्ञान नहीं रहता।

५. अपने करम न मेटो जाई।.........

परिचय—इस पद में कबीर कर्म बन्धन की सर्व प्रबलता का गान करते हैं कि यह बन्धन अकाट्य है। इसके चक्र में बड़े-बड़े अवतारी पुरुषों को भी पड़ना पड़ा है।

शब्दार्थ—करम—कर्म या उनका संस्कार। जुग—युग। कोटि—करोड़। सिराई=व्यतीत हो जायं। बिआही=ब्याही। संच—सुख आराम। लगन=मुहूर्त। बदन—मुख। उनहूं—उनकी। बरि—बल के। निआरी—अलग, विलक्षण। सुधाई—विचार।

अर्थ-कबीर कहते हैं कि अपने कर्मों का संस्कार नहीं मेटा जा सकता। चाहे करोड़ों युग बीत जायें, तो भी अपने कर्म में [भाग्य में] लिखा क्योंकर मेटा जा सकता है? गुरु वशिष्ठ ने जिसके विवाह का मुहूर्त विचार कर निश्चित किया, जिसको सूर्य ने मंगल मंत्र [जिसके जाप से दुःख कष्ट दूर होते हैं—भूख प्यास नहीं व्यापती—तेज दुर्द्धर्ष [जिसका कोई सामना न कर सके] होता है। इसी मंत्र के बल पर सीता, कहते हैं इतने दिन रावण के यहां निराहार रही थी।] दिया था और जो रामचन्द्र जी [जैसे सामर्थ्य वान] से ब्याही थी, ऐसी सीता ने [कर्म संस्कार के कारण] पल भर भी सुख-चैन नहीं पाया है। (कर्मों के ही संस्कार के कारण) नारद मुनि को बन्दर के रूप में बनना पड़ा था पौराणिक कथा के आधार पर एक बार नारद जी विष्णु के पास गये। उस समय किसी देव कन्या या राज कन्या का कहीं स्वयंवर हो रहा था। नारद ने भगवान से प्रार्थना की, भगवान उसे इतना सुन्दर रूप दे दें कि जिससे वह कन्या नारद के ही गले में वरमाला डाल दे। भगवान ने मुनि के चित्त की दशा समझकर उसे ठीक मार्ग पर लाने के लिए, उन्हें बन्दर का रूप दे दिया। नारद जी चाव चाव में स्वयंवर में गये पर वहां उनके गले में वरमाला डालने के बजाय उनकी हंसी उड़ी। (वे कारण नहीं समझ पाये और उठकर चले आये। रास्ते में किसी सरोवर के स्वच्छ जल में जब उन्होंने अपना मर्कट रूप देखा तो आग बबूला होकर वैकुण्ठ पहुंचे और जाकर विष्णु को श्राप दिया कि जिस प्रकार उन्हें स्त्री के कारण कष्ट भोगना और हंसी उड़वानी पड़ी है, इसी प्रकार वे (विष्णु) भी स्त्री के लिए भटकें। भगवान ने हंसकर उन्हें उनका रूप दिया और पश्चात भगवान राम रूप ले सीता के वियोग में भटके।) वैसे भगवान तीन लोकों के कर्ता कहे जाते हैं। पर उन्होंने सैंकड़ों बहाने बना कर मानुष स्वरूप धारण करके शिशुपाल

की भुजा उखाड़ी (उसे मारा) और बाली को जबरन (छुपकर) मारा। काल पाकर एक समय ऐसा आया कि उन पर (तीनों लोकों के कर्ता पर) भी ऐसी बन आई अर्थात ऐसी मुसीबत आई। (कृष्ण ने शिशुपाल की माँ से प्रतिज्ञा की थी कि वे शिशुपाल के सौ अपराध तो क्षमा कर देंगे। पर एक सौ एक वाँ अपराध करने पर प्राण से मार देंगे। सो भगवान् उसके अपराध क्षमा करते रहे, पर अन्त में पाण्डवों के राज सूय यज्ञ के समय मण्डप में जब शिशुपाल कृष्ण को गालियाँ देने लगा तो भगवान गिनने लगे और निर्धारित की हुई सौ अपराधों की सीमा पार करते ही उसे भुजा (जो उन्हें मारने को उठी थी) उखाड़ कर मार दिया, उसके लिये उन्हें बड़े संतोष से काम लेना पड़ा, वे सब अपमान सहने पड़े, यह सब कर्म संस्कार के कारण ही करना पड़ा। भगवान राम की बाली को छुपकर मारने की घटना सर्व प्रसिद्ध है।)। (यदि कर्म-दोष न होता तो आज) शंकर को भिखारी न कहते और [जगन्माता] पार्वती को लोग बाँझ [निःसन्तान] न कहते [शंकर विश्व को ऐश्वर्य देते हैं, पर कर्म के कारण भिखारी वंश में से हैं, पार्वती विश्व की जननी हैं, पर उनके शरीर से कोई सन्तान नहीं हुई—गणेश आदि पैर के मैल से उत्पन्न हुए थे।] इसलिए, कबीर कहते हैं, ये सब कर्ता की बातें हैं, कर्म-चाल विलक्षण है, उसे कोई नहीं जान सकता। [यह तो कर्ता [ईश्वर] के हाथ की बातें है—और इन्हे कोई नहीं समझ सकता]।

६. तोरी गठरी में लागे चोर.......... ....कीजै मोर।

परिचय—इस पद में कबीर बटोही उसकी गठरी और चोरों के रूपक [Allagary] द्वारा आध्यात्मिक काम-क्रोध आदि शत्रुओं का वर्णन करते हैं। और जीव को सर्वदा सजग [जागते] रहने का उपदेश देते हैं।

शब्दार्थ-तोरी=तेरी। गठरी=माल की पोट और ज्ञान

रूपी जो दाग़ हैं वे भगवान के अपनाये बिना नहीं छूट सकते।

शब्दार्थ—चुनरी=ओढ़ने का वस्त्र और देह। दाग=धब्बा और कर्म-संस्कार। पिया=प्यारा और ईश्वर। पांच तत्व= पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश सौरह से बन्द=सोलह सो टांके, और योग वर्णित सोलह सौं नाड़ियाँ या उनके चक्र (संयोग)। मैं केते=माय (माता) के से और मां के उदर से। ससुरे में=ससुराल में और जगत व्यवहार में। मलि-मलि= मल मलकर। साहब=स्वामी, पति।

अर्थ—(कबीर एक बधु का रूपक बनाकर अपनी बात कहते हैं।) मेरी ओढनी में दाग़ पड गया है। यह ओढ़नी पांच तत्वों से बनी है और इसमें सोलहसो टांके हैं। यह चूनरी मेरे (बधु के) माय के से आई थी। सुसराल मे आकर इसने मन खो दिया। चुनरी को ज्ञान का साबुन लगाकर मल मल के धोया पर तब भी इसका मैल नहीं छूटा कबीर दास कहते हैं कि इसका मल तो तभी उतरेगा जब स्वामी मुझे (बधु को) स्वीकार कर लेगें।

कविका भाव यह यह है कि हमारी इस पांच तत्व से बनी देह में जो हमे मां से मिली और जिसमें सोलहसौ नाड़ी चक्र हैं, में हमारे मन के जगत व्यवहार में भटक जाने से कुसंस्कारों के दाग पड़ गये हैं। कबीर कहते हैं कि ज्ञान के द्वारा उनको दूर करने की बहुत कोशिश की पर वे दूर नहीं हुए। कबीर कहते हैं कि वे तो उसी दिन दूर होंगे जब भगवान अपना लेंगे, स्वीकार कर लेंगे।

८. सोच समझ अभिमानी............नहीं आनी।

परिचय—इस पद मे कबीर शरीर की अनित्यता और दुर्लभता का वर्णन कर जीव को जागने का उपदेश देते हैं।

शब्दार्थ—चादर=चार और देह। एहि=इसको। ओढ़त= ओढ़ते हुए। राखु=राखो।

अर्थ—(झूठे अहंकार में गाफिल [भूले हुए] जीव को सावधान करते हुए कबीर कहते हैं कि) हे अहंकारी [जीव !] तुम्हारी यह चादर [देह] पुरानी हो गई है, स्थान-स्थान पर होशियारी से [युक्ति पूर्वक] टुकड़े २ जोड़कर (सी कर) यह शरीर पर लपेटी है [शरीर की आन्तरिक बनावट से अभि प्राय है। अनेक छोटे मोटे टुकड़ों को जोड़ कर सम्पूर्ण देह बनी होती है।] किन्तु तुमने इसे लोभ मोह आदि के कीच में सान कर और पापों में पड़कर मैली करदी है [अर्थात् तुमने इस देह से पाप करके और इसे लोभ आदि के कीच में सान कर गन्दी कर दी है।] न कभी इसे ज्ञानका साबुन लगाकर मलकर धोया [ज्ञान की उपासना द्वारा इसके बुरे संस्कार मिटाये] और नाही स्वच्छ पानी से ही कभी साफ किया [बाह्य स्नान आदि की स्वच्छता ही रखी] सारी उम्र तुम्हें इसे ओढ़ते हुए बीत गई, तुमने अभी तक इसकी भलाई-बुराई नहीं पहिचानी ? कबीर इस अज्ञानी जीव को समझाते हुये कहते हैं कि भाई ! इसे संभाल कर हिफाज़त से रखो, यह फिर हाथ नहीं लगेगी [मनुष्य देह कठिनता से मिलती है इसलिए इसका उचित उपयोग करो, आत्म कल्याण करो]।

६. करम गति टारे नाहि टरे।·· ···

परिचय—इस पद में कबीर जी भावी होनहार या भाग्य की आवश्यम्भाविता या प्रबलता का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ--करम = अच्छा बुरा कर्म (भाग्य)। गति=चाल। टारे=हटाने पर। फन्द=फन्दा (षड्यन्त्र)। पारिधि=शिकारी। परी=पड़ा। लैगो=लेगया। सुवरन=स्वर्ण। धरी=पहुंचा। पुन्न= पुण्य। जोनी = योनि, जन्म। नृप=एक नृग नामक राजा जो प्रति दिन एक करोड़ गऊएँ दान करता था पर एक बार भूलकर पहिले से दान की हुई गऊ का फिर दान कर देने पाप कर्म

के बन्धन में पड़ कर गिरगिट की योनि में पड़ा था। औ=और। विधि=भाग्य। होनी=भावी।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि हे भाई सन्तो! सुनो, कर्म की रेखा (भाग्य का लिखा) नही मेटी जा सकती। देखो, मुनि वशिष्ठ जैसे ज्ञानी पण्डित ने तो विचार करके (राम विवाह का) मुहूर्त्त रखा, पर (भाग्य के आगे वश नहीं चला) दशरथ के (राम के विरह में) प्राण गये, वन में (सीता-राम आदि पर) आपदाएं आईं और सीता का हरण हुआ। (यह सब भाग्य का खेल नहीं तो और क्या है? (नही तो) कहाँ वह फन्दा (षड्यन्त्र) और कहां वह (राम के समान) शिकारी और कहां वह माया का मृग (मारीच) (उधर) रावण सीता को उठा ले गया, जिससे सोने की लंका के जलने की नौबत आई (यह सब कर्मों का ही फल है।) इसी प्रकार राजा नृग प्रति दिन एक करोड गउएं दान करता था। पर उसे (दी हुई गऊ का फिर दान करने रूपी पाप के फल स्वरूप) गिरगिट की योनि में पड़ना पड़ा। हरिश्चन्द्र को चाण्डाल के हाथ बिकना पड़ा और राजा बलि का पाताल भागना पड़ा (हरिश्चन्द्र को अपने सत्य रक्षण और दक्षिणा) के लिए चाण्डाल की दासता करनी पड़ी थी जो प्रसिद्ध है। राजा बलि से जब भगवान् ने वामन रूप मे सारी पृथ्वी दान के बहाने हथियाली थी तो उसके लिए पाताल के सिवा और कोई जगह नही रही थी, वह वहीं गया था।) भगवान् कृष्ण जिन के स्वयं रथवान् थे (रथ हांकते थे) उन पाण्डुओं पर विपत्तियां पड़ीं [कर्म गति के आगे कृष्ण भी कुछ नहीं कर सके।] स्वयं [कृष्ण के वंश] यदु वंश का भी [पाप वश] नाश हुआ [भागवत के आधार पर एक बार यदु वंशियो ने अपनी शक्ति और शराब के मद में चूर होकर दुर्वासा ऋषि का अपमान किया था। उनके शाप से वे सब आपस मे ही लड़कर मर गये थे।] इतने शक्ति शाली सम्राट

दुर्योधन का अभिमान भी टूट गया उसकी पराजय हुई। राहु केतु और सूर्य चन्द्रमा का भी भाग्य के फेर से संयोग पड़ता है। [एक पौराणिक विश्वास है कि राहु केतु ग्रहण के समय चन्द्रमा और सूर्य को ग्रस लेते हैं।] इसलिए कबीर कहते है कि होने वाली बात हो कर टलती है, [उसे कोई नहीं रोक सकता।]

१०. मुखड़ा क्या देखे दरपन में······रन में।

परिचय—इस पद में कबीर सांसारिक मोहमाया और विषय वासना में लुब्ध जीव को ताड़ना करते हैं।

शब्दार्थ—दरपन=शीशा। सुवना=तोता। फक्कड़=मस्त फकीर। ऐंठा=बांधो। दारा=बुरे विचारोंके संस्कार रूपी धब्बे। पाथर=पत्थर। छन=क्षण, पल।

अर्थ—[किसी विषयासक्त प्राणी को उद्देश्य बना कर कबीर बतलाते हैं कि] अरे मुख को क्या बार बार शीशे में देख रहे हो, तुम्हरे मन में दया धर्म तो है नहीं। [सब अपनी अपनी रुचि के अनुसार चलते हैं।] आम की डाल पर कोयल बोलती है और तोता बन में बोलता है, गृहिणी अपने घर में ही परम प्रसन्न रहती है, पर फक्कड़ साधु को जङ्गल में ही आनंद आता है [जिसका जहां मन लगे वह वहीं रमता है।] तुम भी ऐसे ही हर रोज धोती बांधी, जुल्फों मे तेल डाला, सर पर पगड़ी लपेटी और निकल गये गली-गली मे नयी छबीलियों से प्रेम करने तथा अपनी देह को पाप कर्म से गन्दी बनाने। कबीर कहते है कि जो व्यक्ति पत्थर की नाव बनाकर क्षण में पार उतर ने का स्वप्न देखता हो। [इतना अज्ञानी हो] भला वह क्या युद्ध मे लड़ेगा [क्या वीरता का कार्य करेगा ?]

११ झीनी झीनी बीनी चदरिया।······

परिचय—इस पद में कबीर चुनरिया [ओढ़नी] के रूपक मे योग वर्णित तत्वों के आधार पर देह का वर्णन करते हैं और अपनी

देह की निर्मलता और निष्पापता का प्रति पादन करते हैं।

शब्दार्थ—झीनी झीनी=सघन नहीं, छीदी, झिनझिनी। बीनी=बुनी। काहे कै=किस चीज़ का। भरनी=बुनने का साधन एक छोटी सी लकड़ी जिसके द्वारा कपड़ा बुना जाता है। इड़ा, पिंगला, सुषमना=ईड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नामक योग में वर्णित शरीर की तीन सर्व प्रमुख नाड़ियां। आठ कंवल दल=योग वर्णित अष्ट दल चक्र या कमल। चरखा=देह का चक्र। पाँचतत्त=पृथिवी, जल आदि। तीनीगुन=सत, रज, तम तीन गुण। जतन=यत्न।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि यह चादर (देह) बड़ी झीनी २ बुनी गई है। इसका ताना (धागों का तनाव, फैलाव) किस चीज़ का है, इसकी बुननी [बुनने की नली क्या है] और किस तार से यह बुनी गई है? (कबीर स्वयं उत्तर देते हैं) इस चादर (शरीर) का ताना और बुननी इड़ा और पिंगला नामक नाड़ियां हैं और सुषुम्ना (योग में यह नाड़ी विशेषतम मानी गई है—यह नाड़ी सारे शरीर में व्याप्त है।) के तार से यह चादर बुनी गई है। शरीर का यह चक्र (मशीनरी) अष्ट दल चक्रों (योग के अनुसार शरीर में अष्ट दल, शत दल, सहस्र दल आदि अनेक कमल या चक्र माने गये हैं, जिनके बल पर यह शरीर चलता है) के बल पर चलता है) जिस पर तार काता है), इस चादर (देह) के पांच तत्व (पृथ्वी जल तेज आदि) हैं और तीन गुण (सत रज और तम तीन प्राकृति के गुण हैं) जिन से यह बुनी गई है। स्वामी (बुनने वाले) ने दस महीने में (दस महीने के बाद बच्चे का जन्म होता है) खूब ठोक ठोक कर (जमा कर) इसे बुना है। इस चादर को असंख्य देवता मनुष्य ऋषि मुनियों आदि ने आज तक ओढ़ा है और ओढ़ कर मैली (मोह माया पाप आदि से गन्दी) करली, पर कबीर कहते हैं कि हमने तो इसे ऐसे

यत्न से ओढ़ा है कि जैसी की तैसी उतार कर रखदी (ज़रा भी मैल नहीं लगने दी। कबीर का चरित्र बड़ा पवित्र निर्मल और तपस्यामय था। अतएव उन्हों ने यह कहने का साहस किया कि उन्होंने मनुष्य देह को दाग़ नहीं लगने दिया)।

भाव यह है कि चादर की तरह शरीर भी ईड़ा-पिंगला आदि नाड़ियो, पांच तत्वो और तीन गुणों से बना है और योग चक्रों के बल पर चलता है। बड़ी मुश्किल से १० महीने तक अत्यन्त कष्ट पाकर इस शरीर का निर्माण होता है। अतः इसकी हिफाज़त करनी चाहिये। जगत् की विषय वासना मे पड कर इसे गन्दा (मल युक्त) नहीं करना चाहिये। कबीर कहते हैं—उन्होंने अपने जन्म में कोई खोटे संस्कार का दाग़ नही आने दिया। उन्हो ने जैसे शुद्ध स्वच्छ बचपन मे देह पाई थी अन्त काल में वैसी ही शुद्ध निष्कलंक उतार कर रखदी (अर्थात् निष्पाप देहत्याग किया।)

गोस्वामी तुलसी दास

नीचे के ये सारे प्रसग तुलसी दास के राम चरित मानस अर्थात् रामायण से लिये गये हैं रामायण उनका जगत् प्रसिद्ध महा काव्य है, जिसमें उन्हों ने भिन्न भिन्न काण्डों (अध्यायों) में विभक्त करके रामावतार की आदि अन्त समस्त कथा प्रधानतया दोहा चौपाइयों मे और बीच २ मे महा काव्य के नियमों के अनुसार अन्य छन्दों में वर्णन की है। यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की अमूल्यनिधि है, जो भारत के लिये ही नहीं बल्कि संसार के लिए भी एकान्त आदर और श्रद्धा की वस्तु है, क्योंकि इसमे एक ऐसे आदर्श लौकिक जीवन का चित्रण किया गया है कि जो वस्तुतः विश्व के लिए भी अनुकरणीय है। इस महा काव्य का प्रधान रस भक्ति है, बीच २ में प्रसंग वश अनेक रस भी यथोचित प्रसंगों में आये हैं, पर वे सब भक्ति

के सहायक के नाते, न कि प्रधान रूप में। इसकी भाषा परिमार्जित अवधी भाषा है।

प्रसंग—जब पिता की आज्ञा से राम बन को जाने लगे तो सुमित्रा लक्ष्मण को राम के साथ जाने का और वहाँ उनके साथ "कैसे" रहने का बड़ा सारगर्भित उपदेश देती है, जिससे उसकी गम्भीरता, ममता, दूरदर्शिता और नीति कुशलता का पता लगता है।

धीरज धरेउ कुअवसर.........जीवन जाहु॥

शब्दार्थ—सुमित्रा–लक्ष्मण की माता और राम की विमाता। धरेउ–धारण किया। जानी–जानकर। मृदु–कोमल। निवासू–निवास। प्रकासू–प्रकाश। काजु–काम। प्रानु–प्राण। सेइअहिं–सेवा की जाती है। सकल–सब। नाईं–तरह। मानिअहिं–मानने चाहियें। जियं=हृदय में। लाहू–लाभ। जाहु–जाओ। लेहु–लेओ। तात–आदर और प्रेम सूचक सम्बोधन।

अर्थ—(सुमित्रा ने) बुरा अवसर (विपत्ति काल) जान कर धैर्य धारण किया और वह लक्ष्मण को सम्बोधित कर कोमल (स्नेह-ममता सूचक) वाणी में बोली, हे तात ! [पुत्र] तुम्हारी माता [आज से वैदेही [सीता] है और पिता राम हैं, जो सब प्रकार से तुम्हें स्नेह करते हैं। तुम्हारे लिए अवधपुरी [राज्य भवन] वहीं है जहां राम का निवास हो, जैसे दिन वहीं होता है जहां सूर्य का प्रकाश होता है। यदि [सचमुच] राम और सीता बन को जाते हैं, तो तुम्हारा यहां अवध में कोई काम नहीं [तुम भी वन मे साथ जाओ]। हे सुत ! [बेटा !] गुरु, पिता, माता, भाई और स्वामी, इन सब की प्राण के समान सेवा की जाती है [अर्थात् जैसे प्राणी अपने प्राण को सेवा करता है, इसी प्रकार प्राणपन से।] राम रूपी प्राण वाला जीवन व्यतीत करते हुए [अर्थात् राम जिसके जीवन के लिए ऐसे हैं जैसे प्राण, जो अपने को सर्वात्मना राम के अर्पण करदे।] निःस्वार्थ भाव

से सब के मित्र बन कर रहो। दुनियां में जितने भी प्रिय-प्रियतम या पूजनीय लोग हैं, उन सबको राम के सम्बन्ध से मानना चाहिए (अर्थात् राम का स्नेही तुम्हारा स्नेही और राम का शत्रु तुम्हारा शत्रु, इस भाव से, चाहे वह कोई भी हो।) हे तात ! इस प्रकार अपने हृदय में अच्छी प्रकार समझ कर राम के साथ मे वन को जाओ (जाहु) और संसार में जीवन का लाभ [लाहू] प्राप्त करो (अर्थात् कर्तव्य पालन कर जीवन सफल करो)।

भूरि भाग भाजनु भयहु··· ·····राम पद ठाऊं ॥

परिचय—यह दोहा छन्द है और इससे ऊपर का छन्द चौपाई है। दोहे का प्रयोग काव्य रचना के पण्डित महाकवि तुलसीदास ने कथा प्रबन्ध के नियम के अनुसार बीच २ में बन्द (जोड़) के रूप में किया है। इस दोहे में सुमित्रा लक्ष्मण को राम-भक्ति का उपदेश देती है।

शब्दार्थ—भूरि–बहुत। भाजुन–भाजन, पात्र । भयहु–हुए हो। छांड़ि–छोड़कर। ठाऊ–स्थान। कीन्ह–कर लिया।

अर्थ—[सुमित्रा लक्ष्मण से कहती है हे पुत्र !] यदि तुम्हारे मन ने छल [कपट] छोड कर राम के पदों [चरणों] में सच्चा स्थान बना लिया है तो समझ लो तुम बडे भाग्यशाली हो, मैं तुम पर उस समय सारी की सारी [पूर्णतया] न्यौछावर हो जाऊंगी।

पुत्रवती जुवती·········इहइ उपदेसू॥

परिचय—इन चौपाइयों में सुमित्रा राम भक्ति का गुण गान कर उसका महत्व लक्ष्मण को समझाती है, उसको कर्तव्य का उपदेश देती है।

शब्दार्थ—जुवती–युवती, यौवनवती। जासु–जिसका। नतरु–अन्यथा, नहीं तो। बादि–व्यर्थ। बिआनो–बच्चा देना, संतान उत्पन्न करना। दूसर–दूसरा। राग–प्रेम। रोष–क्रोध।

इरिषा–ईर्षा । मद–अहंकार । मोह–आसक्तता, ममता । जनि–मत । बिहाई–छोड़ दो, या छोड़कर । क्रम–कर्म, काम । करेहु–करो । जहिं–जिससे । लहहिं–प्राप्त करे । कलेसू–क्लेश, दुःख । इहहि–यही । उपदेसू–उपदेश । सहज–स्वाभाविक । (सहम पाठ नहीं चाहिये) कर–का ।

अर्थ—(ऊपर आये प्रसंग में ही लक्ष्मण को सुमित्रा आगे कहती हैः) संसार में वस्तुतः [सच्चे अर्थों में] पुत्रवती वही युवती (स्त्री) है जिसका पुत्र राम का भक्त हो । नहीं तो, जो [स्त्रियां] राम से विमुख [राम विरोधी] पुत्र से सुख (हित) की कामना करती हों उनका सन्तान उत्पन्न करना ही व्यर्थ है, ऐसी स्त्रियां तो बांझ [निःसन्तान] ही बनी रहे तो अच्छा है ।

[हे पुत्र ! यह समझो] तुम्हारे ही सौभाग्य से राम बन को जा रहे हैं, तथा और दूसरा कोई कारण नहीं है । राम और सीता के चरणों में स्वाभाविक प्रेम होना, समस्त पुण्यों का सबसे बड़ा फल है [अर्थात् राम-पद प्रेम बड़े पुण्य से मिलता है] । [हे पुत्र !] राग [प्रेम], क्रोध, ईर्षा अहंकार और ममता के वश से कभी स्वप्न में भी न होना (इन पर अधिकार रखना) । समस्त विकारों (राग द्वेष आदि कृत दुर्विचारों) को छोड़ कर मन से, कर्म से और वचन से (वाणी से) राम की सेवा करना । (अन्त में सुमित्रा कहती है) हे पुत्र ! जिससे राम बन में कष्ट न पायें वह काम करना, मेरा तो बस यही उपदेश है ।

उपदेसु यह·········बिसरावहिं ॥

परिचय—इस दोहे में सुमित्रा अपने उपदेश का निष्कर्ष देती है और उसे दृढ़ करती है ।

शब्दार्थ—उपदेसु–उपदेश । जेहिं–जिससे । पुर–नगर । सुरति–याद ।

अर्थ—[सुमित्रा अपने उपदेश का सारांश कहती है कि] हे तात! [पुत्र!] तुम वह काम करना [यह क्रियार्थ ऊपर की चौपाई से प्राप्त होता है] जिससे तुम्हारे प्यारे राम सुख पावें और माता पिता प्रियजनों परिवार और नगर [अयोध्या] को बन में याद न करें। अर्थात् तुम्हारी सेवा से उन्हें इतना सुख मिले कि वे माता-पिता आदि की याद और अयोध्या के सुख को वन में भूले रहें।

स्त्री धर्म

प्रसंग—यह प्रकरण भी रामायण या राम चरित मानस से ही लिया गया है। वनवास के समय राम के साथ जब सीता अत्रिऋषि के आश्रम में पहुंची थीं तो ऋषि पत्नी अनुसूया ने उन्हे पातिव्रत धर्म की और साधारणतया स्त्री धर्म की जो शिक्षा दी थी, वही इस प्रकरण में आई है।

मातु पिता······ ···तुलसि का हरिहि प्रिय॥

परिचय—इस प्रकरण में स्त्री के विविध कर्तव्य और गुण बताकर पातिव्रत धर्म का उपदेश और उसकी व्याख्या की गई है।

शब्दार्थ—मितप्रद-मितदायी, परिमित देने वाले। सुनु-सुनो। अमित-सीमा रहित। दानि-दानी। वैदेही-विदेह [जनक] पुत्री, सीता। तेहि-उसको। परिखअहिं-परीक्षा की जाती है। बधिर-बहरा। कर-का। पाव-पाती है। बिधि-प्रकार। अस-ऐसे। आन-अन्य, दूसरा। देखई-देखती हैं। त्रिय-स्त्री। निकृष्ट-नीची श्रेणी की। जोई-जो। अपावनि-अपवित्र। लहइ-प्राप्त करती है। जसु-यश, प्रशंसा। श्रुति-वेद। अजहुँ-आज तक। तुलसि का-तुलसी का पौदा और तुलसी नामक भगवद् भक्त स्त्री, जो अन्त में भगवान् की पत्नी बनी।

अर्थ—[अत्रि पत्नी सीता से कहती है] हे राजकुमारी [सीता]!

ध्यान से सुनो। मां बाप भाई सब भला करने वाले [हितू] अवश्य हैं, पर वे जो कुछ देते हैं वह सीमित ही होता है [वे हमेशा ही देते नहीं रह सकते] लेकिन हे जनक नन्दिनी ? पति के देने की सीमा नहीं होती (वह तो आयु भर देता है) इसलिए उस नारी को अधम [नीच] समझो जो उसकी सेवा नहीं करती। धैर्य, धर्म, मित्र और पत्नी इन चारों की पहिचान विपत्ति पड़ने पर ही हुआ करती है। बूढ़े, बीमार, मूर्ख, ग़रीब, अन्धे, बहरे, क्रोधी या अत्यन्त दीन पति का भी अपमान करने वाली स्त्री यमपुरी [नर्क] में असंख्य यातनाएं झेलेगी। पतिव्रता स्त्री का एक ही धर्म और एक ही नियम होता है कि शरीर मन और वचन से बस पति के चरण कमलों में प्रेम हो। संसार में पतिव्रता स्त्रियां चार प्रकार की वेद, पुराण और साधु सन्तों ने बताई हैं। एक उत्तम, जिनका अपने मन पर इतना वश होता है कि उनके लिए संसार मे पति के अतिरिक्त स्वप्न में भी अन्य पुरुष की सत्ता नहीं रहती (वह जानती ही नहीं कि उसके अतिरिक्त अन्य पुरुष भी दुनियां में रहते हैं)। दूसरी मध्यम होती हैं, जो पर पुरुष का दर्शन तो करती हैं पर उनको पिता, भाई, पुत्र के भाव से देखती हैं। तीसरी प्रकार की पतिव्रता ऐसी होती हैं जो धर्म और कुल के विचार से घर में टिकी रहती हैं, किन्तु वास्तव में उनका मन पर अधिकार नहीं होता, उनका मन चंचल रहता है।) इस श्रेणी की स्त्रियों को वेद ने निम्न कोटि का स्थान दिया है। और चौथी जो ऐसी पतिव्रता नारी हैं, जो मौका न होने पर और भय से पर पुरुष के संग से बची रहती हैं। ऐसी स्त्रियों को तुम संसार में सब से अधम समझो। स्त्री की देह स्वभाव से अपवित्र है। पति की सेवा करती हुई ही वह वस्तुतः शुभ गति को प्राप्त होती है। देखो, (पतिव्रताओं की शिरोमणि) तुलसी महारानी का यश चारों वेद गाते हैं और वह आज भी भगवान (उसके पति) को प्यारी है (ठाकुरजी पर तुलसी चढ़ाना प्रसिद्ध है)।

मित्र की परख

परिचय—यह प्रसंग भी रामायण का ही है। इस में तुलसीदास ने सच्चे सत मित्र की और कपटी मित्र की पहिचान बताई है या उन दोनों का वर्णन किया है।

जे न मित्र दुःख········परिहरेहि भलाई।

शब्दार्थ—जे = जो। होहिं=हों। दुखारी = दुखित। तिन्हहिं =उनको। निज=अपना। गिरि=पर्वत। सम = बराबर। रज=धूल मित्र क = मित्र का। मेरु=सुमेरु पर्वत। जिन्ह के=जिनकी। असिमति=ऐसी बुद्धि। शठ=धूर्त। कम = कैसे। मिताई=मित्रता कुपथ = बुरा मार्ग। दुरावा = छुपाने। सङ्क = शङ्का, संकोच। धरई=धरे, रखे। बल अनुमान=शक्तिभर, यथाशक्ति। सतगुन= सौगुना। नेहा=प्रेम। एहा=येहैं। अनहित=बुराई। अहिगति= सांप की चाल (टेढ़ी)। परिहरेहिं=छोडने मे।

अर्थ—जो मित्र के दुख में दुखी नही होते ऐसे (झूठे) मित्रों को देखने से भी भारी पाप लगता है। जो (समय पड़ने पर) अपने पहाड़ जैसे बड़े भारी कष्ट को भी धूलि के समान और मित्र के धूलि समान छोटे से दुख को भी सुमेरु पहाड़ जैसा महान् नही समझते, जिन के हृदय में ऐसे विचार नहीं हैं। वे धूर्त किस बिरते पर मित्रता करने का दम भरते हैं? वेद ने बताया है कि एक सज्जन मित्र के ये गुण हैं—वह मित्र को बुरे मार्ग से बचाये और सुमार्ग में चलाये, जो मित्र के गुणों का बखान करे और अवगुणों को छुपाये, देते-लेते मन में शंका या सन्देह न करे और सदैव यथा शक्ति मित्र का उपकार करे और विपत्ति के समय मित्र से सौ गुना अधिक प्रेम करे। इसके विपरीत जो मित्र के सामने बना कर (कृत्रिम) मीठे शब्द बोले और पीठ पीछे बुराई करे जिसके मन में कुटिलता (कपट) हो तथा जिसके मन की

चाल सर्प की चाल के समान टेढ़ी हो। ' जो सर्प के समान कुटिल चाल चलता हो,) ऐसे दुष्ट मित्र के तो त्यागने में ही कल्याण है।

राम राज्य महिमा

प्रसंग—यह प्रसंग भी रामायण का है। इसमें काकभुशुण्डीजी गरुड़ को राम राज्य की महिमा सुनाते हैं।

बरनाश्रम निज निज······काहुहि नाहिं।

परिचय—इस प्रकरण में काक राज भुशुण्डी पक्षिराज गरुड़ को राम राज्य की महिमा और पवित्रता का वर्णन सुनाते हैं कि वहां सर्वत्र सुख, चैन. धर्म और व्यवस्था है।

शब्दार्थ—बरनाश्रम = ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार वर्णों की व्यवस्था। निरत=लगे हुए। पथ-रास्ता। दैहिक-देह सम्बन्धी। भौतिक-दुनियावी, लौकिक। काहहु-किसी को। धर्म के चार चरण—यज्ञ, दान, तपस्या और जप, चार स्वरूप। बिरुज-निरोग।

अर्थ—राम के राज्य मे सब लोग वैदिक (वेद में बताये गए धर्म के अनुयायी हैं। अपने वर्ण (जाति) और आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्यास) के धर्मों में निरत रहते हुए जीवन बिताते हैं और सुख प्राप्त करते हैं। उन्हें न कोई भय है न शोक है और न कोई रोग है (वे सर्वथा सुखी हैं।)

शारीरिक,देवता सम्बन्धी या भौतिक इनमें से कोई भी ताप दुख) राम राज्य में किसी को नहीं व्यापत होता। समस्त नर परस्पर प्रेम करते हैं और अपने-अपने धर्म में नियत रह कर वेद मार्ग के अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं। संसार में धर्म अपने चारों (यज्ञ, दान तपस्या और जप) अंगों से प्रतिष्ठित हो रहा है, कहीं अधर्म नाम को भी (सपने में भी) नहीं है। सब नर नारियां राम की अगाध

भक्ति में डूबे हुये हैं और इसी लिए परम गति (मोक्षपद) के अधिकारी हैं (अर्थात् मुक्ति प्राप्त करेंगे)। वहां (राम राज्य में) अल्प आयु में किसी की मृत्यु नहीं होती (या मृत्यु बहुत कम होती हैं, जन्म अधिक होते हैं) किसी को कोई पीड़ा नहीं है, सब लोग सुन्दर और नीरोग शरीर वाले (स्वस्थ) हैं। वहां कोई दीन दुखी या दरिद्र (निर्धन) नहीं है और न कोई मूर्ख या लक्षण हीन (जिसके लक्षण अच्छे नहीं) ही है। राम राज्य के समस्त नर और नारी, अभिमान शून्य (निर्दंभ) धर्म में लगे हुए, गुणी, चतुर, गुणज्ञ (गुणों की क़द्र करने वाले ज्ञानी और कृतज्ञ (उपकार को मानने वाले,) हैं, इन में कोई भी कपटी और धोखे बाज नहीं है।

(भुशुण्डी काका राज कहते हैं।) हे पक्षिराज (खगेश) ! सुनो; राम के राज्य में, चराचर (जड़चेतन) जगत में काल और कर्म अपने स्वाभाविक रूप में हैं, कहीं किसी को दुख नहीं है (या काल और कर्म के स्वभाव के कारण किसी प्राणी को दुःख नहीं भोगना पड़ता है (कभी कभी काल कर्म के प्रभाव से निरपराध प्राणी को भी दुःख उठाना पड़ता—जैसे की वर्तमान उथल-पुथल में पञ्जाब में असंख्य निरीह प्राणियों को उठाना पड़ा है, किन्तु राम राज्य में ऐसा नहीं था)।

फूलहिं फलहिं·········रामचन्द्र के राज।

परिचय—इस प्रकरण में राम राज्य के प्राकृतिक वैभव का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि प्रकृति परम प्रसन्न होकर समय पर वर्षा धूप आदि उचित मात्रा में प्रदान करती है तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का कुछ ठिकाना नहीं है।

शब्दार्थ—फूलहिं फलहिं–फूलते फलते हैं। तरु–वृक्ष। कानन–वन। गज–हाथी। पञ्चानन–सिंह, शेर। खग–पक्षी। बयरु –वैर, शत्रुता। वृन्दा–समूह। अभय–निर्भय। अनंदा–आनन्द।

मंदा--हलकी। अलि-भ्रमर। लै-लेकर। मकरन्दा-पुष्परस या मधु। विटप-वृक्ष, पौधे। चवहि-चवाते हैं, देते हैं। धेनु-गाय पय-दूध। सस-सम्पन्न-शस्य, खेती से युक्त। धरनी-पृथ्वी। त्रेता-रामावतार का युग। कृतयुग-सत्य युग। कै-की। गिरिन्ह -पहाड़ों ने। मनि खानीं-रत्न जवाहरातों की कानें। जगदात्मा --जगत् की आत्मा। भूप-राजा। सकल-सब। बर बारी-सुन्दर जल। तटन्हि-तटों पर। सरसिज-कमल। संकुल-भरे हुए। तड़ागा-तालाब। दसा-दिशा। मयूखन्हि-किरणों से। जेतनेहि जितना। बारिद-मेघ।

अर्थ--(इस से पहिले आये राम राज्य के प्रसंग में रामराज्य की लौकिक धन, जन, सम्पत्ति का वर्णन कर अब आगे राम राज्य की प्राकृतिक शोभा और समृद्धि का वर्णन कवि ने यहाँ किया है। राम के राज्य में वनों में वृक्ष सदैव फलते फूलते हैं, सिंह और हाथी एक ही स्थान पर निवास करते हैं। पशुओं और पक्षियों में पारस्परिक स्वाभाविक (जातिगत) वैर नष्ट हो गया है तथा आपसी प्रेम बढ़ा हुआ है। या पशु पक्षियो ने आपसी स्वाभाविक वैर को भुला कर आपसी प्रेम को बढ़ाया हुआ है।) बन में स्थान-स्थान पर पक्षी कूजते (क्रीड़ा) करते हैं, और हिरन (मृग) निर्भय विचरण करते हुए आनन्द करते हैं। शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु बहती है, पुष्प रस (मधु) लेकर जाते हुए भ्रमर मधुर गुंजार करते हैं। लतायें और वृक्ष मांगने पर मधु मीठे फल टपका देते हैं और गायें मन चाहा दूध देती हैं पृथ्वी सर्वदा शस्य श्यामल (हरियाली वाली, कृषि सम्पन्न) रहती है और त्रेतायुग में भी सत्ययुग का सा व्यवहार हो रहा है (अर्थात् रामयुग (त्रेतायुग) सत्ययुग से पीछे का (अवनयति का) काल होने पर भी उस में हालात या परिस्थितियाँ सब सतयुग जैसी हैं।) पर्वतों ने अनेक मणि माणिक्यों की कानें उद्घाटित करदी (खोलदीं) हैं और जगत [सब

लोग](भूप) राजाको संसारकी आत्मा के समान मानते हैं, सारी नदियां शीतल, स्वच्छ, मधुर, सुखद और सुन्दर जल प्रवाहित करती हैं। समुद्र अपनी मर्यादा (सीमा) में रहते हैं (देशों को गर्क नहीं करते) और तटों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें लोग ले जाते हैं। सभी तालाब कमलों से भरे हैं और दसों दिशाएं साफ और स्वच्छ हैं।

राम राज्य में चन्द्रमा भूमि को किरणों के प्रकाश से भर देता है (अर्थात् रात्रि में चन्द्रमा भूमि पर प्रकाश करता है।) और सूर्य आवश्यकता के अनुरूप तेज (गर्मी) प्रदान करता है। मांगने पर (अर्थात आवश्यकता होने पर, समय पर) बादल पानी बरसाते हैं।

भरत जी प्रयाग में

परिचय—इस प्रकरण में तुलसीदासजी ने भरत के त्रिवेणी स्थान का वर्णन किया है जो उन्होंने राम को मिलने के लिए जाते समय मार्ग में (इलाहाबाद में) किया था। इसमें भरत के स्नान, दान, दक्षिणा, त्रिवेणी तीर्थराज के प्रति उनकी प्रार्थना और त्रिवेणी से उठी दिव्य-वाणी का वर्णन हुआ है।

शब्दार्थ—कहूं=को। कीन्ह=किया। कहत=कहते हुए। झलका=फफोला, छाला। पंकज=कमल। कोष=मध्यभाग। पयादे=पैदल। आजू=आज। त्रिवेणी=तीर्थ राज प्रयाग, जहां यमुना गंगा सरस्वती का संगम होता है और जल नीले सफेद वर्ण का दिखाई देता है। सबीधि=विधि सहित। सितासित=काला और सफेद। महिसुर=ब्राह्मण। सनमाने=सम्मान किया। धवल=सफेद। कामप्रद=कामना पूरी करने वाले। तीरथराऊ= तीर्थ राज। प्रभाव=प्रभाव। याचक=मांगने वाला। चहौं= चाहता हूं। निर्वान=मोक्ष। रति=प्रेम। आन=अन्य, और।

अर्थ—भरत दिन के तीसरे पहर के समय प्रेम की उमंग में सीता राम २ कहते हुए प्रयाग में प्रविष्ट हुए (पहुंचे)। उनके पैरों में

(पैदल चलने से पड़े हुए) छाले ऐसे झलक रहे थे जैसे कमल के कोष (अन्तर्भाग) पर ओस की बूंदें चमकर ही हों । भरत को आज पैदल आये हुए देख समस्त ऋषि-मुनियों का समाज बड़ा दुखित हुआ। कुशल समाचार पूछने के पश्चात सब लोग नहाये और नमस्कार करने के हेतु त्रिवेणी पर आये। काले और श्वेत वर्ण के जल में स्नान करके दान दक्षिणा आदि के द्वारा ब्राह्मणों का सम्मान किया। श्वेत और काले रंग की जल की हिलोरों (तरंगों) को देख कर भरत का शरीर पुलकित हो गया और वे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगे कि हे तीर्थराज ! तुम सबकी कामना को पूरा करने वाले हो, तुम्हारी महिमा वेद और लोक दोनों में प्रसिद्ध है ऐसा हृदय में जानकर हे महादानी और ज्ञानी तीर्थराज ! तुम संसार में मुझे याचक (भिखारी) की वाणी को (प्रार्थना को) सफल करो (या, अपने जी में तुम्हें ऐसा सुजान और सुदानी समझ कर जगत तुम्हारे सामने याचक की तरह प्रार्थना करता है ।) ।

मैं तो (भरत कहते हैं) न अर्थ (ऐश्वर्य) चाहता हूँ, न धर्म और न काम और नाहीं मोक्ष चाहता हूँ, मैं तो केवल एक वरदान चाहता हूँ, और वह यही, कि जन्म जन्मान्तरों तक मेरा राम के चरणों में अखण्ड प्रेम बना रहे ।

जानहिं राम कुटिल······ ······हर्षितव र्षहिं फूल ॥

परिचय—इसमें भरत अपने मन की ग्लानि का वर्णन करते हैं कि दुनियां उनके विषय में सन्देह कर के उन्हें भ्रातृ-द्रोही समझती है ।

शब्दार्थ—कुटिल करि=कुटिल के रूप में। अनुदिन=प्रति दिन। जलदु = बादल। भरि = भर, तक। पवि=वज्र (बिजली)। पाहन=पत्थर, ओले। रटनि=रट, एक बात को बार बार दोह राना। कनकहिं=सोने का बान=चमक। दाहे=जलाने पर। माँझ=

मध्य मे। अगाधू=अगाध, अपार। बादि=मत, व्यर्थ। हिय= हृदय। हृषि=प्रसन्न होकर। वेनि=त्रिवेणीतीर्थ।

अर्थ—(भरत जी अपने मन की ग्लानि (दुःख) व्यक्त करते हैं कि) राम मुझे कुटिल करके जानेंगे (समझेंगे या समझते हैं), लोग गुरू जनों और स्वामी (राजा) का द्रोही कहते है, पर हे तीर्थराज! तुम्हारी अनुकम्पा (दया) से मेरी बुद्धि सदैव राम चरणो में लगी रहे। बादल जन्म भर (चातक की) सुधि नहीं लेता और जल मांगने पर भी बिजली और ओले डालता है, परन्तु चातक की रटना तो (प्यास के कारण कमजोर हो जाने से) भले ही कम हो जाय, किन्तु उसका अपने प्रिय के प्रति प्रेम प्रति पल बढ़ता ही जाता है। अपने प्रिय के प्रेम को वह ऐसे निबाहता है जैसे सोना ज्यों ज्यों तपता है उसकी चमक बढ़ती जाती है। (अर्थात इसी प्रकार प्रेम भी विरहाग्नि मे तप कर अधिक चमक उठता है जैसे कि सोना आग में तपने पर) त्रिवेणी के मध्य में भरत के ऐसे वचन सुनकर वहां मंगल देने वाली यह कोमल वाणी उद्भूत [प्रकट] हुई कि, 'हे पुत्र भरत ! तुम सब प्रकार से सज्जन हो, तुम्हारा राम के चरणों में अपार प्रेम है, तुम अपने मन मे ग्लानि [अपने प्रति घृणा] न करो, तुम्हारे समान राम को और कोई भी प्यारा नहीं है।

भरत जी त्रिवेणी का अपने [मन के] अनुकूल यह वचन सुन कर मन में प्रसन्न हुए, उनके शरीर में रोमांच हो आया और देवता लोग प्रसन्न होकर भरत को धन्य धन्य कहते हुए पुष्प वर्षा करने लगे।

गीतावली से

गीतावली में तुलसीदास जी ने विभिन्न राग रागनियों के स्वरों के अनुकूल पदों में रामायण के विभिन्न स्वतंत्र प्रसगों का वर्णन

किया है। इसकी भाषा ब्रज है। पद गाने में बहुत मधुर हैं और सूर आदि के पदों के समान ही गायकों द्वारा गाये जाते हैं।

१. सुभग सेज............पायो न पिगे।

परिचय—इस बिलावल नामक राग में तुलसीदासजी ने राम के शैशव का वर्णन किया है कि कौशल्या उन्हें प्रेम में शैय्यापर कैसे लिये बैठी है।

शब्दार्थ—सुभग-सुन्दर। रुचिर-मनोहर। सिशु-शिशु, बच्चा। बिधु-चन्द्र। बदन-मुख। चारु-मनोहर। पौढ़ि-(लिटकर) लाइ-लगाकर। पयपान-दुग्धपान। पियूष—अमृत सिहात—ईर्षा करते हैं, ललचाते हैं। पिये-पायेगा।

अर्थ—[तुलसीदास वर्णन करते हैं कि] मनोहर राम शिशु को गोद में लिए शैय्या पर बैठी हुई कौशल्या शोभित हो रही है। अपने सुन्दर नेत्रों को चकोर बनाये हुए वह बार बार (राम के) चन्द्रमुख को देखती है। कभी शैया पर लेटकर दूध पिलाती है और कभी छाती से लगा लेती है। मातृ-प्रेम का अमृत पीकर पुलकित (परम प्रसन्न) बनी हुई वात्सल्य की मधुरता में वह कभी बाल क्रीड़ायें गाती है और कभी प्यार में भर कर रामको सहलाती है [लहराती है] ब्रह्म, शिव, देवता मुनि आदि सब आकाश की ओट में खड़े हुए देखते हैं और [कौशल्या के भाग्य की] सराहना करते हुए ललचाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि राम के पास का ऐसा सुख न किसी ने आज तक पाया है और न पायेगा।

२. राजन! राम लखन जौ दीजै।...........

परिचय—यह गीत नट नामक राग में बांध कर लिखा गया है। इस पद में तुलसी दास जी ने उस प्रसंग का वर्णन किया है जब विश्वामित्र जी यज्ञ रक्षार्थ दशरथ से राम लक्ष्मण को मांगने आते हैं।

शब्दार्थ—जौ–को। जस–यश। रावरो–आपका। ढोटनिहुं–बच्चों को। सोचें–चिन्ता करें। बूझिय–पूछ लो। पुनि–फिर। मख–यज्ञ। अलप–अल्प, थोडा। ऐहैं–आ जायेंगे। रिपु–शत्रु। गैहैं–जायेंगे।

अर्थ—[विश्वामित्र दशरथ से राम-लक्ष्मण को मांगते हैं।] हे राजन! राम और लक्ष्मण को हमें दे दीजिये। इसमें आप का भी यश है और बालकों का भी लाभ है, आप सब मुनियों को सनाथ कीजिये (अर्थात सब मुनियों की रक्षा कीजिए-एक रक्षक देकर। मुझे डर लगता है कि कहीं आप अपने पुत्रों के प्रभाव [महिमा] को न जानने के कारण स्नेह के वश में होकर चिन्ता में न पड़ जायें। आप वामदेव जी (राजवंश के उपाध्याय ऋषि) और कुलगुरू [वशिष्ठ जी] से पूछ लीजिये कि इन बालकों का कैसा प्रभाव है? और फिर आप स्वयं भी स्याने [समझदार] हैं। शत्रु सेना का संहार कर के और यज्ञ की रक्षा करके, बड़ी कुशलता पूर्वक थोड़े दिनों में ही ये वापिस आ जायेंगे तुलसी दास जी कहते हैं कि उस समय रघुकुलराज श्री राम का कविलोग गुणगान करेंगे। अर्थात कवियों द्वारा इनके यश का गान किया जायेगा।

मुनि के संग विराजत वीर।...........

परिचय–इस गीत की रचना कल्याण राग के अनुसार हुई है। इसमें तुलसीदास विश्वामित्र के साथ वन में जाते हुए राम-लक्ष्मण के सुन्दर वीर रूप का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—बिराजित–शोभित। काक पच्छ–जुल्फ (कुंतल) धारण करने वाले। कोदंड–धनुष। तूनीर, तरकश। कटि–कमर। अंबरूह–कमल अवलोकि–देख कर। अमित–असीम। भीर–संचय भीड़। करित–करते हुए। मग–मार्ग। कौतुक–खेल। विलंबत–ठहरते हैं। सरसीरूह–कमल। सिलानि–

शिलाओं के। विटपनि–वृक्षों के। तर–तले। नत=नाचते हुए। मधुप=भौंरा। कीर=तोता। खग=पक्षी। सुरभी=गाया।

अर्थ—'तुलसीदास कहते हैं कि मुनि के साथ जाते हुये दोनों वीर कुमार खूब शोभित हो रहे हैं। उनके सिर पर बालों की जुलफें हैं (बाल दो हिस्सों में मांग काढ़कर बाहे हुए हैं), हाथ में धनुष और बाण हैं, कंधे पर सुन्दर पीले रंग का पटुका (कन्धों का वस्त्र) है और कमर पर तरकश कसा हुआ है, चन्द्र के समान उनका मुख है, कमल के समान आंखें हैं, श्याम और गौर वर्ण का उनका शरीर मनोहर शोभा की खान है। ऋषि मुनि लोग उनकी इस असीम शोभा को देख कर पुलकित (रोमांचित, परम प्रसन्न) होते हैं, उनके प्रेम का प्रवाह (संसार) हृदय में नहीं समाता। दोनों वीर बालक रास्ते में खेलते हुए, तमाशा करते हुए चलते हैं, और नदी या तालाब को पाकर वहीं ठहर जाते हैं। रास्ते में लताओ के पुष्पों और कमलों को तोड़ते हैं तथा अमृत जैसे स्वच्छ और शीतल जल का पान करते हैं। नाचते हुए मोरों, मधुर राग गाते हुए भ्रमरों, हंसों, कोयल की पक्तियो और तोतों को देखते हैं। पशु, पक्षी, गाय अहीर और उनकी स्त्रियां राम को देख देख कर आंखों के होने का लाभ प्राप्त करती हैं। तुलसी दास कहतेहै कि सब लोग अपने-अपने जीमें रामको आसन देतेहैं अर्थात सब लोग अपने अपने मन मे राम की मूर्ति को प्रतिष्ठित करते हैं।

४. सजनी है कोउ राज कुमार।............

परिचय—यह पद आसावरी राग में बांधा गया है। इसमें कवि ने राम को वन जाते हुए देख कर आश्चर्य और प्रेम में गद्‌गद्‌ हुई ग्रामीण युवतियों का वर्णन किया है जो उन्हें देख कर मुग्ध हुई उनके रूप की प्रशंसा करती हैं।

शब्दार्थ—सजनी=सखी। कोउ=कोई। शील=अच्छा स्वभाव। आगार=घर। राजिव=कमल। स्याम तनु=श्यामल शरीर

अंगनी=अंगों। सत=शत, सौ। मार=कामदेव। हरन=हरने, दूर करने के लिए। छितिभार=पृथ्वी का बोझ। युगुल=जोड़ा। राजति=शोभा पाती है। हाटक=सोना। मुकुता=मोती। जनु=मानो। भरि=भर के। जनि=मत। कहँ=कहाँ। चितय=देख कर। हित कै=हित कर के, प्रेम कर के। सबन्हि=सब के। संभार=होश। उदार=लम्बा चौड़ा, खुला।

अर्थ—(वन की युवतियां राम लक्ष्मण को जाते देख परस्पर बातें करती हैं कि हे सखी हैं ये कोई राज कुमार। सौन्दय और सुन्दर स्वभाव की खान ये दोनों कोमल चरणों से मार्ग में चल रहे हैं। आगे आगे कमल जैसे नैनों वाला श्याम वर्ण का कुमार है, जिसकी शोभा का कोई पार नहीं, इसके अंग अंग पर मैं सैंकड़ों कामदेवों को वार कर फेंक दूं। (अर्थात। इसकी शोभा सैंकड़ों (करोड़ों) कामदेवों से भी अधिक है।, पीछे आयत (दीर्घ) नेत्र और बलि शरीर वाला मनोहर गौरवपूर्ण का कुमार है। ये कमर पर तरकश और हाथ में धनुष और बाण लिये हैं, जैसे पृथ्वी का भार हलका करने चले हों। इस जोड़े (युगल) के मध्य में एक सुकुमारी (कोमल) नारी है, जो बिना श्रृङ्गार के ही ऐसी सोभायमान हो रही है मानो नीलमणि, सोना, मोती, जवाहरात और मणियों के हार पहिने हुए हो। इसलिए हे सखियो! नेत्र भर कर देख लो, व्याकुल मत बनो, विचार से काम लो। फिर यह शोभा, ये नेत्र और यह शरीर संसार में कहां देखने को मिलेंगे? ये प्यारे वचन सुनकर दया और आनन्द के समुद्र भगवान राम ने उनकी ओर प्रेम से देख कर सब के मन अपने वश में कर लिए, तथा उन्हें (वन युवतियों) को अपने शरीर की भी सुधि न रही।

५. कोसिल पुरी············मन विषय नि हरै॥ १॥

परिचय—इन पद्यों की रचना सूहोराग के आधार पर हुई है। इनमें कवि ने अयोध्या की वर्षा ऋतु का वर्णन हुआ है।

शब्दार्थ—कोसिल पुरी=अयोध्या । पुरी=नगरी । सरि=नदी भूपावली–राजाओंकी पंक्ति । निपुन-निपुण, कुशल । उर–हृदय । जलजात–कमल । अविरल–निरन्तर । सुक–शुकदेव ऋषि । रंक–भिखारी । नाकेस–नाक [स्वर्ग] का स्वामी ईश इन्द्र ।

अर्थ—[कवि कौशल पुरी [अयोध्या] का वर्णन करता है] सरयू नदी के तट पर बसी हुई कौशल नगरी [अयोध्या] बडी सुन्दर है, जहां राजाओ के मुकुट की मणिरूप [सब राजाओं में श्रेष्ट] श्री रामचन्द्र राजा हैं । नगर के सब नर और नारी बड़े कुशल हैं तथा धर्म और नीति में लगे हुए हैं । स्वाभाविक रूप से सब के मन में राम चरणों का प्रेम बसा हुआ है । जिसके लिए सुकदेव, शंकर, ब्रह्म, सनक आदि मुनिगण तरसते हैं । राम के चरण कमलों की वह प्रीति [प्रेम] सब के मन में बसी हुई है । सब के घर और आंगन सुन्दर हैं, राजा और रंक का भेद दिखाई नहीं पडता । जो भोग(ऐश्वर्य,भोग) इन्द्रके लिए भी दुर्लभ है (उसे भी नहीं मिलता) अयोध्या के लोग उसका उपभोग करते हैं, पर उनका मन विषयों के वश में नहीं होता [वे सब विषय भक्त नहीं, राम भक्त हैं ।

सब ऋतु सुखप्रद............मुनि मन मोहहिं ॥ २ ॥

परिचय—यह पद भी सूहोराग में है । इसमें कवि ने अयोध्या की वर्षा ऋतु का वर्णन किया है ।

शब्दार्थ—सुखप्रद–सुख देने वाली । सो–उस । पावस–बरसात । कमनीय–सुन्दर । निरखत–देखते हुए । हरित– हरे रंग की । अवनि–भूमि । बीर बहूटी–इन्द्र गो [बरसात में होने वाले लाल मखमल के रङ्ग जैसे छोटे जीव जो भूमि पर रेंगते हैं । दादुर–मेंढक । गरज–गर्ज कर । पारावत–कबूतर । विपुल–बहुत । बालकनि–बालकों द्वारा । राजि–पंक्ति । हरिधनु–इन्द्र धनुष । तड़ित–बिजली । दिशि–दिशा में । अतुल–जिसकी तुलना न हो सके ।

अर्थ—[कवि वर्षा ऋतु का वर्णन करता है) वैसे तो उस नगरी में सभी ऋतुएं सुख देने वाली हैं, पर बरसात बहुत मनोहर है। हरियाली से ढकी हुई भूमि देखते ही हठात् [जबरदस्ती] मन को हर लेती है। बीर बहूटी [इन्द्रगौ] शोभा पा रही हैं और चारों ओर मेंढकों की ध्वनि भरी हुई है। बादल मीठी [मन्द] गर्जना के साथ पानी बरसाते हैं, जिसे सुन कर मोर नाच उठते हैं। मोर, चकुआ, कोयल, कबूतर आदि बोल रहे हैं, और अन्य पक्षी जिनको बालकों ने पाल रखा है कूजते [क्रीडा करते हुये] और आकाश मे उड़ते हुए बहुत भले लगते हैं। आकाश में बगुलों की पंक्ति शोभित हो रही है और दिशाओं मे इन्द्र धनुष और बिजली की शोभा छिटकी हुई है। आकाश और नगर की शोभा अतुलनीय है, जिसको देख कर मुनियों का मन भी लुब्ध हो जाता है।

गृह गृह रचे⋯ ⋯ ⋯मधुकरा॥ ४॥

परिचय—इस पद में कवि अयोध्या के भवनों और उनमें बनाये हुए हिंडोलों की शोभा का वर्णन करता है।

शब्दार्थ—गृह गृह-प्रत्येक घर। हिंडोलना-हिंडोले, झूलने। सुढार-अच्छी तरह ढले हुए। विचित्र-अनेक रंग के। फटिक-स्फटिक, सफेद पत्थर। पगार चारदिवारी। विद्रुम-मूंगा। पाटि-देहली। पुरट-स्वर्ण, सोना। मरकत-एक नील मणि। डांडि-डंडी, शाखा। दुति-कान्ति, चमक। पटुली-चतुर कुशल। वितान-चन्दोआ, सामियाना। लसत शोभा पाते हैं। मुकुता-मोती। दाम-डोरी, झालर। लोभे-लुभाये हुए। मंजु-मनोहर। मधुकरा-भौंरे।

अर्थ—(तुलसीदास जी अयोध्याके घरोंका वर्णन करते हैं) वहां घर २ में मणियों के और कांच को ढाल कर बनाये हुए हिंडोले (पालने या झूले) शोभा पा रहे हैं। चारों तरफ अनेक रंगों के और नाना चित्र वाले

Vishva Bharati

परदे टंगे हुए हैं और स्फटिक के पत्थर की चार दिवारी हैं। सीधे भारी और मजबूत (सुजोर) मूंगे (रत्न) के बने हुए खम्भे लगे हुए हैं। दर्वाजों की मनोहर आकर्षक रचनाओं से बनी हुई स्वर्ण की पाटियों (झालरों)में नीली मणियों के बने हुए भ्रमर झलक रहे हैं। रत्न जटित सुवर्ण की डंडी (शलाका) है, उस पर नीली मणि के बने भ्रमर हैं, जिसकी कान्ति चमक रही है। इस समस्त रचना को देख कर यह भान होता है मानों ब्रह्मा ने अपनी सारी निर्माण कला का यहीं प्रदर्शन किया हुआ है। मोतियों की लड़ियों से युक्त विविध वर्णों के चन्दोवे (सिर के ऊपर टंका (जडा) हुआ मंगल वस्त्र या शामियाने मनोहर रूप में तने हुए हैं। चारों ओर हर प्रकार के पुष्पों से बनाई हुई मालाओं की सुगन्धि में मस्त हुए भौंरे मधुर गुंजार कर रहे हैं ऐसी कौशल पुरी के भवनों की शोभा है जिसमें ग़रीब अमीर का भेद ज्ञात नहीं होता।)

४. झुण्ड झुण्ड झूलन चली............सखी झुला वहीं॥

परिचय—इस के आगे के दो पदों मे कवि वर्षा काल मे झूलने जाती हुई अयोध्या पुरी की युवतियो का वर्णन करता है।

शब्दार्थ—गज गामिनी=हाथी जैसी मस्त चाल वाली स्त्री। बर=श्रेष्ठ। कुसुम्भी=लाल रंग का पुष्प जिसके रंग मे पहिले समय में कपड़े रंगे जाते थे। तनु=शरीर। सँवारि=सजा कर। पिक बयनी=कोकिल जैसे कण्ठ वाली। सारद=शरत् काल का। ससि=चन्द्रमा। सम=समान। तुण्ड=मुख मण्डल। सुजस=सुयश सु सुर=अच्छे स्वर में। सुसारंग=अच्छा सारंग राग। गुंड=एक राजा। सारंग, गुंड, मलार, सोरठ, सुहवय, सूहो=भिन्न भिन्न राग रागनियों के नाम जो प्रायः बरसात में गाई जाती हैं। सुघरनो=सुन्दरी गृहिणियां। बाजहीं=बजाती हैं। तान=स्वर बिस्तार। अति मचल=अधिक मचलने या क्रीड़ा खेल कूद।

कुटिल कच=घुंघराले केश। खसत=खिसक जाते हैं। अपर=दूसरी।

अर्थ—अनेक सुन्दर और हाथीकी सी मस्त चालवाली नारियां झुंड के झुंड बना कर झूलने के लिए चलीं जाती हैं। उनके शरीर पर लाल रंग (कुसुम्भी रंग) में रगे सुन्दर वस्त्र शोभा दे रहें हैं तथा उन्होंने सुन्दर २ आभूषण सजाये हुए हैं। वे सब कोकिल कण्ठी, मृग नयनी और शरद काल के चन्द्र के समान मुख वाली सुन्दर स्त्रियां सारंग गुंड आदि विविध रागों में राम का यश गा रही हैं और व कला में निपुण वे सब गृहणियां सारंग, गुंड, मलार, सोरठ, सूहो आदि बरसाती राग बड़ी निपुणता से बजा रही हैं, जिनकी विविध लय, ध्वनि, ताल आदि को सुनकर गंधर्व, किन्नर, देव (गायक नर्त्तक जाति) आदि लज्जित होते हैं (अर्थात् वे उनसे भी अच्छा गाती बजाती हैं)। ज्यादा मचलने (हिलने चलने) से उन सुन्दरियों के घुंघराले बाल बिखरते हैं, शरीर पर से वस्त्र बार २ उड़ते हैं और सखियां हंस हंस कर उन्हें झुलाती हैं, जिस से उन सबकी शोभा सुन्दरता सौ गुनी अधिक हो जाती है।

५.—फिरि फिरि झूलहिं..........तुलसी भाव हीं॥

शब्दार्थ—फिरि फिरि=बार बार। बार=बारी (Turn) विबुध=देव गण। बरषि=वर्षा करके। गुन-गाथ=गुण गाथाएं, गुणों के वर्णन। हरषहिं=प्रसन्न होते हैं। प्रससहिं=प्रशंसा करते हैं। सकल=सारे। लोक मलापहा=(लोक+मल+अपहा) विश्व के मल (पाप) को दूर करने वाले। सुर वधु=देव स्त्रियां। अघौघ=अघ (पाप)+ओघ (समूह) (पापों का समूह) पापों के ढेर। नवल=अभिनवा। गावहीं=गाती हैं। पावस=वर्षा ऋतु।

अर्थ—वे सब रमणियां बार बार अपनी अपनी बारी से झूलती हैं, जिनकी शोभा और अपार चरित्र देखते देखते आकाश में विमानों में बैठे हुए देवता लोग थक गये (उनका जी नहीं भरता था)। देवता लोग पुष्प बरसाकर मनमें प्रसन्न होते हैं और हरि गुणों की कथाओं का वर्णन करते हैं, बार २ प्रेम की प्रशंसा और स्तुति करते हैं। हे जानकी नाथ ! तुम्हारी जय हो ! हे जानकी पति ! तुम्हारा निर्मल यश सब लोकों (सृष्टियों) के पाप को (मल को) धो देने वाला है।" देव पत्नियां आशीर्वाद देती हैं, हे राम ! तुम चिरंजीव हो, अगाध सुख और सम्पत्ति के भाजन बनो।" (बरसात के इस वर्णन के अन्तिम भाग में इसके श्रवण की महिमा बताते हुए तुलसी दास कहते हैं कि) श्रवण के इस थोड़े से वर्णन का बहुत महत्त्व है, इसको सुनने से असंख्य पापों का नाश होता है, पर वे कहते हैं कि तुलसी दास (मैं तो) तो नित्य ही राम के नये से नये गुण गाते हैं (मेरे तो पापों का अवश्य ही नाश होना चाहिये, यह भाव व्यंग्य से) निकलता है।

दोहावली—

परिचय—दोहावली गोस्वामी जी के दोहों संग्रह ग्रन्थ है। इसमें गोस्वामी जी ने धर्म, नीति, भक्ति और राज्य आदि विषयों पर मुक्तक रूप में दोहे लिखे हैं।

१. निगम अगम··············जग माह ॥

परिचय—इस दोहे में गोस्वामी जी ने ब्रह्म की सर्व व्यापकता का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—निगम=वेद शास्त्र आदि। अगम=अज्ञेय। सुगम =सुज्ञेय, सुबोध। सांचिली=सच्ची। चाह=इच्छा। अंबु=जल। असनि=पत्थर ! [आसन के स्थान पर असनि पाठ ठीक है] अवलोकिअत=दिखाई देता है।

अर्थ—(तुलसी दास जी कहते हैं कि) वेद शास्त्रों ने भी जिनका भेद नहीं पाया (उनके लिये भी जो अगम (अज्ञेय बने रहे) ऐसे साहब (स्वामी राम) बड़ी आसानी से ज्ञात हो सकते हैं [सुगम [सुबोध] हो सकते हैं] । वे जल, में पत्थर में भी दिखाई देते हैं और संसार में सर्वत्र सुगमता से मिल सकते हैं, लेकिन हृदय में वस्तुत: सच्ची इच्छा [लगन] चाहिये अर्थात् राम सच्ची चाह वाले के लिए सर्वत्र सुगम और सुलभ हैं।

२. सनमुख आवत··········त्योंही तुलसी राम ॥

परिचय—इस दोहे में तुलसी दास जी यह बताते हैं कि हम प्रभु को जैसे भजते हैं वह वैसा ही हमारे लिए हो जाता है ।

शब्दार्थ—सन्मुख–सामने । पथिक–मुसाफिर । बाम–बांया तैसोहि–वैसा ही ।

अर्थ—तुलसी दास जी कहते हैं कि सामने से आते हुए किसी पथिक (व्यक्ति) को हम अपने दायें या बांयें जिस ओर भी जाने का स्थान देते हैं वह भी उसी ओर ही हो जाता है अर्थात् उसी ओर को होकर हमारे पास से निकलजाता है । इसी तरह से प्रभु को भी हम जिस रूप में भजेंगे वह वैसा ही हमारे लिए हो जाएगा ।

३. राम प्रेम पद········दीठि ।

परिचय—इस दोहे में गोस्वामी जी ने बताया है कि किस प्रकार राम के पदों में ध्यान लगाना चाहिये, जिससे ज्ञान दृष्टि मिल सके ।

शब्दार्थ—तन–ओर, से । पीठि–पीठ (करके) । केंचुरी–सांप की केंचुली । दीठि–दृष्टि । हू–को या के । पेखिये–देखिए ।

अर्थ—विषयों की ओर से मुंह मोड़ कर (विषयों का मोह छोड़ कर) ही राम के प्रेम का मार्ग देखना चाहिये (राम का भजन करना चाहिए ।) सांप को अपनी केंचुली उतार देने पर ही दृष्टि मिलती है,

[कहते हैं सांप को एक बीमारी होती है जब वह अन्धा हो जाता है, लेकिन जब अपनी केंचुली उतार फेंकता है तो उसे फिर दीखने लगता है], इससे पहिले नहीं।

भाव यह है कि जब तक विषयों को नहीं छोड़ा जायेगा तब तक राम के प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती, उनको छोड़ने पर ही हो सकती है। जैसे सांप को केंचुली छोड़ ने पर हीं दृष्टि मिलती है।

४. तुलसी जौं लौं·········सुठी सीठी।

परिचय—इस दोहे में तुलसी दास जी रामभक्ति या उसकी मधुर मस्ती का वर्णन ही करते हैं।

शब्दार्थ—जौलौं–जब तक। सुधासहस्रसम–हजार अमृतों जैसी। तौं लौं–तब तक। सुठि–बिल्कुल। सीठी–फीकी, नीरस।

अर्थ—[तुलसी दास कहते हैं कि जब तक विषयों की सुधा मनुष्य को मीठी लगती है। [जब तक मनुष्य विषयों में लिप्त है] तब तक उसे हज़ार अमृतों [सुधाओं] जैसी सुन्दर और मीठी राम की भक्ति बिल्कुल नीरस लगती हैं। भाव यह है कि विषयों में जो आनन्द है, राम भक्ति में उस से सहस्र गुना अधिक आनंद है। किन्तु अज्ञान वश मनुष्य को विषय ही अधिक प्रिय लगते हैं।

जैसौ तैसो रावरो······तिहुँ काल।

परिचय – इस दोहे में गोस्वामी जी भगवान् से अपने को अपनाने की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि इसी में मेरा मंगल है।

शब्दार्थ—जैसो तैसो–जैसा भीहूं वैसाही। रावरो–आपका। तिहुँ–तीनों। तौ–तो।

अर्थ – तुलसी दास जी कहते हैं, हे भगवान् राम! कौशलाधीश! यदि केवल आप मुझे अपनालें [मुझे अपना समझलें] तो मेरा तीनों लोकों [भू, देव और वैकुण्ठ लोक] तथा तीनों कालों [भूत, भविष्य, वर्तमान] में मंगल है, अन्यथा नहीं [अर्थात् आपके

अपनाने पर ही मेरी त्रिलोक और त्रिकाल में गति है, अन्यथा नहीं।

६. है तुलसी में·········जोग।

परिचय– इस दोहे में गोस्वामी जी अपने को अवगुणों की खान बताकर भगवान् से अनुकम्पा [दया] मांगते हैं।

शब्दार्थ—कै-केपास। निधि–खजाना। भरोसो-भरोसा, आधार।

अर्थ—तुलसी दास जी कहते हैं कि लोग मुझे अवगुणों [बुराइयों] की खान कहते हैं, पर मेरे में एक गुण अवश्य है कि मुझे केवल आप में ही अगाध विश्वास है [मुझे केवल आपकाही दृढ़ भरोसा है।] इसलिए हे राम मैं आपकी प्रसन्नता और दया का पात्र हूँ [आपकी आदत है कि आप एक गुण वाले पर भी प्रसन्न हो जाते हैं।]

७. प्रीति रामसों·········की रीति।

परिचय—इस दोहे में तुलसीदास भक्त के आचरण और अनुष्ठान का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—नीति पथ–नीति का मार्ग। चलिय–चलिये या चले। राग–मोह। रिस्रि-क्रोध। इहै–यही। मतै–मत में। जीति–जीत कर।

अर्थ—तुलसी दास जी कहते हैं कि मोह और क्रोध को जीत कर [अपने वश में करके] नीति [न्याय, सज्जनता] के मार्ग मे चले और राम के चरणों मे प्रेम [भक्ति] रखे, सन्तो के मत में भक्ति की रीति बस यही है। अर्थात् भक्त वह है जो क्रोध मोह आदि के वश में न हो कर न्याय पूर्वक जीवन यापन करता हुआ राम के पद में अनुराग रखे।

८. सत्य वचन·······धूर्त।

परिचय – इस दोहे में गोस्वामी जी ने राम के सच्चे सेवक का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—विमल–निर्मल । करतूत–कार्य, व्यवहार । सेवकहि–सेवक को । धूत–विचलित करना, फंसाना, ठगना ।

अर्थ—तुलसी दास जी कहते हैं कि राम के सच्चे सेवक की वाणी सत्य होती [वह झूठ नहीं बोलता] उसका हृदय निर्मल [स्वच्छ] होता है और उस का व्यवहार निष्कपट होता है। उस को कलियुग [का प्रभाव] अपने पथ से विचलित नहीं कर सकता [अर्थात् संसार की मोह माया उस पर प्रभाव नहीं डाल सकती]

६. तुलसी सुखी''' '''कलि धूत ।

परिचय—इस दोहे में तुलसी दास जी बताते हैं कि भगवान् की कृपा से सुख और अपने दुष्कृत्यों (कुकर्मों) से दुख मिलता है।

शब्दार्थ—रामसों–राम से, राम की कृपा के कारण। करनूति–काम । जेहि–जिनके । तेहि–तिनको । कलि–कलियुग । धूति–फंसाना, ठगना ।

अर्थ—तुलसी दास कहते हैं कि जो सुखी हैं वे राम के कारण से हैं [राम भक्ति के प्रताप से वे सुखी हैं] और जो दुखी हैं, वे अपने कार्यों (कर्मों) के कारण से हैं [अपने कर्म ऐसे खोटे हैं जिनका परिणाम दुख है] जिन का कर्म (काम) वचन [बात] और मन एक है [जिन का आन्तरिक और बाह्य व्यवहार सच्चा है, एक है ? ऐसा नहीं कि अन्दर कुछ बाहर कुछ] उनको कलियुग का प्रभाव उनके मार्ग से विचलित नही कर सकता, अर्थात् उनको संसार की मोह, माया नहीं व्याप सकती ।

१०. नातो नाते''''''''सिव देहु ।

परिचय—इस दोहे में गोस्वामी जी शंकर से राम की अनन्य भक्ति का वरदान मांगते हैं ।

शब्दार्थ—नातो–रिश्ता । सनेह–स्नेही । सनेहु–स्नेह । जोरि–जोड़ कर । सिव–शिव । देहु–दो ।

अर्थ—तुलसी शिव [शंकर] से हाथ जोड़ कर वरदान मांगते हैं कि हे शिव ! मुझे यह वरदान दो कि मेरा रिश्ता [सम्बन्ध] जिससे हो वह राम के नाते [सम्बन्ध से] हो और जिससे प्रेम हो वह भी राम के प्रेम से हो। भाव यह है कि मेरे [तुलसी के] तमाम नाते रिश्तेदार राम के भक्त होने चाहियें, जिसे राम प्यारा है वह मेरा भी प्यारा हो और जो राम का द्रोही है उससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।

११. सब साधन को······· धनु बान।

परिचय—इस दोहे में तुलसी अपनी अनन्य भक्ति का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—जानो-जानना हो। जान-जान ले। त्यों त्यों-उसी तरह से। धरे-पकड़े हुए। धनु-धनुष।

अर्थ—तुलसीजी कहते हैं कि मैं तो सब साधनों [भौतिक साधनों] का एक ही फल चाहता हूँ कि बस मेरे मन के मन्दिर में हाथ में धनुष बाण धारण किये हुए श्रीराम निवास करें अर्थात् मेरे लिए तो दुनियां के सब साधनों का एक ही फल है कि मेरे मन मन्दिर में राम का निवास हो।

१२ जो जगदीस·············अनुराग।

परिचय—इस दोहे में तुलसीदास कहते हैं कि उनके राम चाहे भगवान हों और चाहे राजा हों—उनको तो उनके चरणों में अनुराग है।

शब्दार्थ—भलो-अच्छा है। महीस-राजा। तौ-भाग।

अर्थ—तुलसी कहते हैं कि अगर मेरे राम ईश्वर हैं तब तो बहुत ही अच्छा है, और यदि राजा हैं तो भी हमारे सौभाग्य हैं, पर (वे चाहे जो भी हों) मुझे तो आजन्म राम वचन (राम नाम) में प्रेम चाहिये (वचन की बजाय यहां चरन पाठ होना चाहिये)।

१३ परौ नरक··········· ···ाउ।

परिचय—इस दोहे में तुलसी अपने प्रेम की विशुद्धता और निष्कामता का प्रतिपादन करते हैं।

शब्दार्थ—परौं-पड़ूँ। फल चारि–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। सिसु-सन्तान, बच्चे। मीच–मृत्यु। खाउ-खा जाय। जरि जाउ–जल जाय।

अर्थ— तुलसी दास कहते हैं, चाहे मै नर्क में पड़ूं, चाहे चारों फल [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी शिशुओ को मृत्यु रूपी डायनी [राक्षसी] खा जाय, चाहे राम के प्रेम का और भी जो फल हो वह भी जल जाए [किन्तु मेरा सच्चा स्नेह उनके प्रति सदा बना ही रहेगा]।

भाव यह है कि तुलसीदास का प्रेम निश्छल और निःस्वार्थ है। वे उसके प्रति दान में कुछ नहीं चाहते। उनका तो राम के चरणों में स्वाभाविक अनुराग है, किसी कामना को लेकर नहीं। इसी लिए वे कहते हैं कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पारलौकिक फल और अन्य लौकिक फल जो भी राम नाम के प्रभाव से होते है उन्हें उनकी ज़रूरत नहीं, वे नर्क में जाने को तैयार हैं, पर अपनी भक्ति के प्रतिदान मे वे कोई फल नहीं चाहते, वे तो केवल अविचल भक्ति चाहते हैं।

१४ हित सौं हित··········सहज सुभाउ।

परिचय—इस दोहे में गोस्वामी जी अपने वैरहीन सरल स्वभाव का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—हित सौं हित–हितू से हित, प्रेमी के साथ प्रेम। रति-प्रीति। निहाउ–छोड़कर। उदासीन–तटस्थ [Neutral] सुभाउ-स्वभाव।

अर्थ—तुलसी कहते हैं कि (भाई !) हमारा तो स्वभाव ऐसा स्वाभाविक और सरल है कि हितू (प्रेमी) से हित [स्नेह] करते हैं

और राम से प्रेम रखते हैं [और किसी से नहीं], शत्रु से वैर नहीं करते और अन्य समस्त जनों से तटस्थ रहते हैं (अर्थात किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रखते।)।

सूरदास

परिचय—इनका बृहद् संग्रह ग्रन्थ सूर सागर प्रसिद्ध है। उसमें अनेक विषयों के पद हैं। इस कविता संग्रहमें ऐसे पद लिये गये हैं जिन में प्रधान रस या भाव भक्ति है। सूर शुद्ध ब्रज भाषा के कवि माने जाते हैं।

१, कब तक मोसों पतित उधारो।............

परिचय—इस पद में सूर पतित के लिए भगवान के नाम के सिवा और कोई आसरा न बताते हुए भगवान से अपने उद्धार की प्रार्थना करते हैं। सूर के पद गाने वालों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं।

शब्दार्थ—मोसों-मेरे जैसे। उधारो-उद्धार करो। पावन-पवित्र। पासंग हूं-पासंग भी, अकिंचन। अजमिल—अजामिल नामक एक चाण्डाल जातिका भक्त जो भगवान का नाम लेकर तर गया था। भाजे—भागता है। जमनि—यम राजने। हठा-जबरदस्ती। तारि—तारो, पार करो। जियजु—मन में। जाने—मत। गारो-गर्व। ठोर-स्थान।

अर्थ—सूर कहते हैं कि हे भगवान। मेरे जैसे पतित को कब तक पार लगाओगे [संसार से उद्धार करोगे?]। मैं पापियों में प्रसिद्ध पापी हूँ [मुख्य पापियों में हूँ] और तुम्हारा नाम पतित पावन—[पतितों को पवित्र करने वाला] है। बड़े-बड़े पापी भी मेरी बराबरी में कुछ नहीं [पासंग में भी नहीं] अजामिल जैसा पापी मेरे सामने क्या है? [अजामिल भी मेरे सामने कुछ नहीं ठहरता] मेरे नाम से तो नर्क भी घबराता है (उसमें मेरे जैसे पापी के

लिये कोई उचित प्रबन्ध नहीं, मेरे से छोटे पापियों के लिए है], यमराज ने वहां भी मुझे टिकने नहीं दिया और जबर्दस्ती से ताले लगवा दिये अर्थात मुझे नर्क में आने से रोक दिया। हे लक्ष्मी पति! छोटे २ पापियों का उद्धार करके अपने आप को बड़ा नहीं समझो [जब मेरे जैसे पापी का उद्धार करोगे तब समझूंगा] सूरदास कहते हैं कि मुझ पापी के लिए और कहीं भी स्थान नहीं है। हे प्रभु! केवल तुम्हारे ही नाम का सहारा है।

२. सोई रसना जो हरिगुण गावै।...........

परिचय—इस पद में सूर बताते हैं कि इन्द्रियों का फल केवल भगवद् दर्शन या उसका अर्चन ही है। इन्द्रियां तभी सार्थक हैं जब वे भगवान के अर्पण रहें।

शब्दार्थ—रसना—जिव्हा। गावै—गाती है। यहै—यही। मुकंद—श्री कृष्ण। धावै—भागती है। जिहिं—जिसको। स्रवननि—कानों की। अधिकाई—विशेषता। प्यावै—पिलाता है। तेई-वेही। सेवैं-सेवा करें। चलि—चलकर। जेये—जाइये।

अर्थ—सूरदास कहते हैं कि जिव्हा वस्तुतः वही सार्थक (काम की) है जो भगवान का गुण गाये। आंखों की शोभा यही है कि वे श्री कृष्ण के सौन्दर्य के मधु या माधुर्य का पान करने में चतुर हों, [उसके लिए लोभी हों] 'शुद्ध स्वच्छ और सच्चा हृदय वही है जिसे श्री कृष्ण के सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगता'। कानों की विशेषता [मूल्य] यही है कि वे भगवान के चरित्र को आनन्द सुधा का पान करते हों। (कानों का मूल्य इसी में है कि हम उनके द्वारा भगवान की कथा सुनें)। हाथ सार्थक [सफल] वेही हैं जो भगवान की सेवा [अर्चना] में लगे हों और चरण [पैर] वे ही सफल हैं जो चलकर वृन्दा वन पहुंचे [हाथों का प्रयोजन केवल भगवत

पूजा है और चरणों का वृन्दावन की यात्रा]। [सूर कहते हैं कि] जो प्रभु से प्रेम बढ़ाता हो उस पर न्यौछावर हो जाना चाहिये अर्थात कृष्ण के प्रेमी का आदर करना चाहिए।

३. सरन गये को न उबार्यो।..........…

परिचय—इस पद में सूर भगवान के भक्तोद्धार के कार्यों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आपत्ति में पुकारने पर कृष्ण के सिवा और कौन सहायक हो सकता है ?

शब्दार्थ-कौन-किसने। उबार्यो-उद्धार किया। अम्बरीष-प्रसिद्ध राजकुमार भक्त, जिसने दुर्वासा ऋषि के क्रोधित हो जाने पर भगवान को पुकारा था और भगवान ने आकर दुर्वासा का कोप शान्त करके अम्बरीष की रक्षा की थी। हेत=लिए। गोवर्धन=वृन्दावन के एक पर्वत का नाम जो कृष्ण ने इन्द्र कोप के समय लोगों की रक्षा के लिए अपने हाथ पर उठाया था। फाड़ि=फाड़ कर। नरहरि=नृसिंह रूप, (जिस रूप को धारण कर के भगवान् ने हिरनाकश्यप को मार कर उसके भक्त पुत्र प्रल्हाद की रक्षा की थी—इस रूप का ऊपर का भाग पुरुष और नीचे का सिंह का था)। भीर=आपत्ति। महा प्रसाद=बड़ी प्रसन्नता। करुनाकर=दया के सागर। छिनक=क्षण में, पल भर। उर=सीना, छाती। बिदार्यो-फाड़ दिया। ग्राह-मगरमच्छ, एक हिंसक बड़ा भारी जलचर जीव, जो बड़े बड़े जानवरों[हाथियों तक] को अपने जाल में फंसा लेता है और जान लिये बिना नहीं छोड़ता, पानी में खींच ले जाता है।] गज-पुराण प्रसिद्ध भक्त हाथी, जिसे ग्राह ने पकड़ लिया था और जिसने डूबते हुए भगवान को पुकारा था। भगवान् ने तत्काल आ कर अपने सुदर्शन चक्र से ग्राह के पंजे या जाल काट कर हाथी को छुड़ाया था। रंग भूमि-अखाड़ा।

अर्थ—सूरदास कहते हैं कि हे कृष्ण! तुम्हारे सिवा शरण में आये हुए की और कौन रक्षा कर सकता है? जब जब भी भक्तों पर आपत्ति आई तुमने अपना सुदर्शन चक्र संभाला [उनकी रक्षा को भागे और की] तुमने दुर्वासा [प्रसिद्ध क्रोधी तपस्वी] का क्रोध शान्त कर के अम्बरीष की रक्षा की [अम्बरीष को अत्यन्त सुख [महा प्रसाद] प्राप्त हुआ ग्वालों की रक्षार्थ तुमने अपने हाथ पर गोवर्द्धन पर्वत उठाया और इन्द्र का अहंकार दूर किया [भागवत की प्रसिद्ध कथा है, कि एक बार ग्वालों द्वारा पूजा न होने पर इन्द्र ने घोर प्रलय वर्षा कर के गोकुल बहा देना चाहा था, तब लोगों के जीवनको संकटमें देखकर कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को हाथ पर उठा लिया और सब लोगों ने उसके नीचे खड़े होकर वर्षा से अपनी रक्षा की, इस प्रकार इन्द्र का अहंकार भंग हुआ और उसने कृष्ण से क्षमा मांगी। तुमने भक्तराज प्रल्हाद पर प्रसन्न हो कर नृसिंह रूप धारण किया, खंभा फाड़ कर उसमें से तुम निकले, क्षण भर में अपने तेज़ नाखूनों से हिरना कश्यप की छाती को फाड़ दिया और उस अत्याचारी को मार दिया [भक्त प्रल्हाद की कथा प्रसिद्ध है। जब उसने पिता के अत्याचार से पीड़ित हो भगवान को पुकारा तो उन्होंने खम्भ से प्रकट हो कर सभा में बैठे हिरना कश्यप [प्रल्हाद के पिता] की छाती चीर कर मार दिया था]। जब ग्राह के जाल (मुख) में फंसकर डूबते समय अति दीन स्वर में गज [हाथी] ने तुम्हारा नाम लिया तो तुम फौरन ही भागे और जाकर उसकी विपत्ति दूर की। तुमने भरे अखाड़े में कंस को भूमि पर पटक कर मार डाला [सो हे कृष्ण! तुम्हारे सिवा और कौन है [किसमें इतनी सामर्थ्य है] जो शरणागत की रक्षा करे ?]।

४ प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो।............

परिचय—इस पद में भी सूर कृष्ण से उद्धारणार्थ [संसार से

पार करने के लिए] प्रार्थना करते हैं कि हे कृष्ण ! तुम समदर्शी हो, मेरे में भेद नहीं देखो और जल्दी मेरा बेड़ा पार लगाओ।

शब्दार्थ—औगुन–अवगुन, बुराइयां। समदरसी–सब में समान दृष्टि रखने वाला। अपने पनहीं–अपने पन (प्रण) के अनुसार, अपने स्वभाव के अनुसार। बधिक–कसाई। परो–पड़ा। पारस–एक पत्थर जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह लोहे को छूकर सोना बना देता है [Gold stone]। खरौ–खरा, खालिस। नदिया–नदी। नार–नाला, छोटा प्रवाह। झगरौ–झगड़ा। बेर–बार। पन–प्रतिज्ञा।

अर्थ—(सूर प्रभु श्री कृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि) हे स्वामी! मेरे अवगुणो को अपने चित्त में न रखो (उनका ख्याल न करो]। आप तो समदर्शी हैं (आप की दृष्टि में सब प्राणी समान हैं], आप अपने स्वभाव के अनुसार ही कार्य करिये [अपना समदर्शी स्वभाव नहीं बदलिये]। एक लोहा वह है जो पूजा के साधनों में स्थान प्राप्त करता है (लोहे के बर्तन भी पूजा के साधनो मे होते हैं] और दूसरा लोहा वह है जो कसाई के घर मे होता है [जहां वह पशुओं का गला काटने के काम आता है] पर पारस उन दोनों में भेद भाव नहीं समझता, वह दोनों को ही अपने स्पर्श से खरा सोना [कंचन] बना देता है [इसलिए पारस रूप भगवान् को भी लोहा रूप पापियों में कोई भेद नहीं देखना चाहिए, सब पर समान कृपा करनी चाहिए]। एक नदी है और दूसरी छोटी सी नाली है जिसमें गन्दा पानी भरा है, पर जब वे मिल कर एक स्वरूप हो जाती हैं तो उनका [दोनों का] नाम सुरसरि [गंगा] हो जाता है, (अर्थात् पहिले नदी का नाम ही सुरसरि था, नाली अलग बहती थी, पर जब दोनो मिल कर एक रंग हो गई तो नाली का भी नाम गंगा हो गया—इस प्रकार दोनों का

एक रूप हो गया।] एक [सूरदास] जीव है और दूसरा [श्री कृष्ण] ब्रह्म है, इन दोनों के बीच का [अर्थात् आत्मा और परमात्मा के बीच का] झगड़ा है [इस झगड़े को मिटा दीजिये, दोनों में कोई भेद नहीं रहता [जैसे दो नदियों के मिलने पर बीच का झगड़ा या अन्तर मिटा देने पर दोनों के जलों में कोई भेद नहीं रहता], सो सूरदास कहते हैं कि प्रभु ! अब की बार आप मुझे अवश्य पार उतार दीजिये नहीं तो आप की प्रतिज्ञा [जब जब भीर परे सन्तन पे तब तब होऊं सहाई] झूठी हो जाये गी।

५. जापै दीनानाथ ढरैं।............

परिचय—इस पद में सूर कहते हैं कि संसार में बड़ा या सुखी केवल वही है जिस पर श्री कृष्ण [भगवान्] प्रसन्न हैं, नहीं तो बड़ों-बड़ों का भी गर्व भंग होकर विनाश हो जाता है।

शब्दार्थ—जापर-जिस पर। दीनानाथ-श्री कृष्ण [दीनों के स्वामी]। ढरैं-द्रवित हों, करुणा करें। बड़ो-बड़ा। गरैं-गल गये, नष्ट हो गये। रंक-गरीब, बेचारा। निसिचर-राक्षस। जम-यमराज। वहँ-वहां। रिक्त-रोगा। भ्रमेउ-घूमता हुआ। तहं-वहां। कुबिजा-कुब्जा नाम की एक कंस की दासी जो कृष्ण के रूप पर मुग्ध होकर उनकी अनन्य भक्त बन गई थी। कृष्ण ने प्रसन्न हो कर उसे अपनी पत्नी बनाया था और उसकी कुरूपता (कमर का टेढ़ा होना आदि] दूर करदी थी। तरे-तर गई। पाइ=पाकर। भरा=पाया, सहन किया। जरे=जलाया। कंहि=किस। रस=भाव। रसिक=रस लेने वाला (भगवान्)। ढरे=प्रसन्न हो, द्रवित होकर। फिरि फिरि=बार बार। जठर जरै=पेट [जठर] में आकर [गर्भ में आकर जीव] उसकी गर्मी में पकता है।

अर्थ—[सूर दास कहते हैं कि] जिस पर भगवान द्रवित होकर दया करें, संसार में वस्तुतः वही [सब कुछ है] कुलीन [खान

आकर] जठर की आग [गर्मी] मे जलता है या पकता है [अर्थात् बार २ संसार में आने का कष्ट उठाता है]।

६. छांड़ि मन हरि विमुखन को संग।.............

परिचय—इस पद में सूर कुसंग का निषेध करके बताते हैं कि दुष्ट पुरुष पर सत् संगति या उपदेश का कोई प्रभाव नहीं होता वह अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता।

शब्दार्थ—छांड़ि=छोड़ दो। विमुखन=विमुखों, विरोधियों। परत=पड़ता है। उपजै=उत्पन्न होता है। कहा=क्या। पय पान–दुग्ध पान। भुजंग–सर्प। कागहिं–कागा को। स्वान–कुत्ता। गंग–गंगा। खर–गधा। अरगजा–चंदन आदि का उबटन। मरकट – बंदर। रीतो–खाली। निषंग–तुणीर, तरकश। खल–दुष्ट। कारि कामरि–काली कमली। दूजौ–दूसरा।

अर्थ—[सूरदास कहते हैं कि] हे मन ! हरि [भगवान्] के विरोधी लोगों का साथ छोड दे जिसके कारण बुरी मति उत्पन्न होती है और भजन में बाधा पड़ती है। सर्प को दुग्ध-पान कराने से क्या लाभ हो सकता है ? वह अपना विष नहीं छोड़ेगा [इसी प्रकार दुष्ट पुरुष भी कैसे भी उपदेश से अपनी दुष्ट प्रकृति नहीं छोड़ेगा] वह [दुष्ट प्राणी] दिन रात काम, क्रोध, लोभ, मोह और विषय-वासना आदि की उमंग [चाव] में उछलता फिरता है [भगवान् के लिए उसके पास समय नहीं होता]। कौवे को कपूर खिलाने से या कुत्ते को गंगा स्नान कराने से क्या लाभ ? न कउवा श्वेत हो सकता है और न कुत्ता पवित्र हो सकता है) और इसी प्रकार गधे के उबटना लगाने से और बन्दर, के शरीर में आभूषण पहिनाने से भी क्या लाभ [इनमें से कोई भी अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ेगा—गधा ज़मीन में अवश्य लोटेगा और बन्दर अपनी चंचलता से आभूषणों को तोड़ देगा] सूरदास कहते हैं

कि इसी प्रकार दुष्ट प्रकृति मनुष्य को भी समझो, वह भी एक काली कमली है। जिस पर और कोई रंग नहीं चढ़ सकता है (दुष्ट की प्रकृति उपदेश से या सत्संग से नहीं बदलती)।

७. प्रभु हौं सब पतितन को राजा।.............

परिचय—इस पद में सूरदास अपने को पापियों का राजा बताकर अपने पाप के राजसी ऐश्वर्य का गढ आदि के रूपक द्वारा वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—हौं-हूं, मैं। पूरि रह्यो—भर रहा है। निशान—राजा के चिन्ह, झण्डा बाजा आदि। तृस्ना—तृष्णा, लालसा। देश—प्रदेश, मुल्क। रु—अरु का छोटा रूप, और। सुभट—योद्धा। दैबेको—देने को। कुमत—उल्टी सलाह। प्रतिहारे—द्वारपाल, चपरासी, पहरे दार। दिग्विजयी—चारों दिशाओं को जीतने की इच्छा वाला। मोह मदै—मोह और मद ही, ममता और अहंकार। वन्दी—वंदना करने वाले, स्तुति पाठक। मुहकम—दृढ़, पूरी तरह। लाई—लगाये हैं, या लगाकर। मागध—चारण।

अर्थ—[सूर कहते हैं कि] हे प्रभु ! मैं पतितों [पापियों] का राजा हूँ [इसके आगे सूरदास अपने पापी राज के एक २ करके राज्य-चिन्हों और साधनों का वर्णन करते हैं] मेरा मुख निन्दा चुगली से सर्वदा भरा रहता है, यही मान लीजिये मेरे पाप राज्य का हर दम डंका बजता है। मेरे राज्य का प्रदेश तृष्णा का है [जो दिनों दिन बढ़ रहा है, उन्नति शील है।] जहां मनोरथ [वासनाएं या इच्छायें मेरे योद्धा हैं, इन्द्रियाँ मेरी तलवारें हैं, कुमंत्रणा देने के लिए कामदेव मेरामंत्री है, क्रोध मेरा पहरे दार है [किसी को पास फटकने नहीं देता] संसार विजय की लालसा में अहंकार के हाथी पर मैं चढ़ा हुआ हूँ, और लोभ का छत्र [शाही छत्र] धारण किये हुए हूँ, मेरी सेना दुष्ट संग-

ति की है, मोह और गर्व रूपी स्तुति-पाठक [भाट] मेरा गुण गा रहे हैं [लोभी और लालची राजाओं के गुण गाया ही करते है] मेरे प्रशंसक अनेक दोष और बुराइयां हैं। इस प्रकार सूर कहते हैं, हे प्रभु! मैंने अपने पाप का गढ किला मज़बूत बना लिया है। जिसमें धर्म किसी रास्ते से घुस नहीं सकता।

भाव यह है कि भगवान् मैं बहुत बड़ा पापी हूँ, विषय, विकार, कुसंगति, काम क्रोध आदि अनेक दुर्व्यसनों में फसकर आप से विमुख हो रहा हूँ, मुझे शरण दो।

बाल्य क्रीड़ा विषयक पद

८ सिखवत चलन यशोदा मैया। ....

परिचय—इन पदो में सूरदास ने कृष्ण की बाल लीला का वर्णन किया है, जब यशोदा मां उन्हें पांव चलाना सिखा रही थी। कहना नहीं होगा वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक सुन्दर और मनोवैज्ञानिक है।

शब्दार्थ—सिखवत = सिखाती है। अरबराई=लड़खड़ा कर। पानि=हाथ। डगमगाई = डगमग होकर। पैया=छोटे छोटे पांव। कबहुंक=कभी। टेरि=पुकार कर। कुल देवता= कुल के इष्ट देव। चिरि=देर तक। नन्दरैया = नन्दराय, नन्दराज।

अर्थ—(सूरदास कहते हैं कि) यशोदा माता (बालक कृष्ण को) चलना सिखाती है। बालक (कृष्ण) डगमगा कर ज़मीन पर पांव रखता है और फिर लड़खड़ा कर अपना हाथ (मां को) पकड़ाता है। यशोदा कभी बालक कृष्ण का सुन्दर मुख निहारती है और आनन्द की उमंग में उसकी बलाएं लेती है, कभी बलराम को पुकार कर बुलाती है कि यहां आकर (अपने आंगन में) दोनों भाई मिल कर खेलो और कभी

अपने कुल के इष्ट देवों की प्रार्थना करती है (उन्हें मनाती है) कि उसका बालक कृष्ण चिरंजीव हो। सूर कहते हैं कि नन्दराज के पुत्र श्री कृष्ण बड़े प्रतापी और सब को सुख देने वाले हैं।

खेलत नंद-आंगन गोविन्द।............

परिचय—इस पद मे सूरदास जी ने नंद के आंगन में खेलते हुए कृष्ण के बालरूप का मनोहर वर्णन किया है जो स्वाभाविता के कारण अत्यन्त सजीव (Life Like) है।

शब्दार्थ—निरखि=देखकर। जसुमति=यशोदा। कटि=कमर। किंकनी=तगड़ी। सुदेश=सुन्दर स्थल। केहरि नख=सिंह का नख। परवाल=मूंगा। करनि=हाथों में। पैंजनियां=पांव का बजने वाला आभूषण, पौंहटा)। रज-धूल, मिट्टी। घुटुरनि = घुटनों के बल। अजिर = आंगन। मण्डित = मडे हुए, लिपटे हुए। नवनीत= मक्खन। बानिक=रूप। जोग = योग। बिरति=वृत्ति, ध्यान। बिसरावैं=भूल जाते हैं।

अथ—नन्द जी के आंगन में बालककृष्ण खेल रहे हैं। उनका मुखचन्द्र देख २ कर यशोदा हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हो रही है। उनकी कमर में किंकणी। (तगडी) है, गले में नीलम की द्युति की (शोभा व्याप रही) है, घुंघराले बालों में मोतियों और मणियों की मालायें गूंथी हुई हैं, परम सुन्दर छाती पर सिंहनख लटक रहा है, उनके बीच बीच में व्रजभूमि के मूंगे (रक्त प्रवाल) पहिन रखे हैं; हाथों में पहुंचियां, पांवों में पैंजनियां (पैर के घुंघरूदार भूषण) हैं, पीला वस्त्र धूल में रंगा हुआ है; घुटनों के बल घिसटते (खिसकते) आंगन में खेलते हैं, मुख मक्खन से भरा हुआ है, सूरदास कहते हैं कि बालक कृष्ण का विचित्र रूप बना हुआ है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी इस बाललीला को देख कर ऋषि लोग अपनी योग ध्यान की सुधि भूल जाते हैं (मोहे से ठगे से खड़े रह जाते हैं)।

विशेष—भाव यह है कि सैंकड़ों कल्प (लाखों वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन) के जीवन में भी वह और इतना आनन्द नहीं प्राप्त हो-सकता जो कृष्ण के इस बालरूप के दर्शन के एक क्षण में होता है। सूर ने इस पद मे विविध सुन्दर स्वाभाविक रूपकों का रंग देकर कृष्ण के मधुर बालदृश्य का चित्र खींचा है।

१२. खेलन दूर जात कित कान्हा।............

परिचय—इस पद में सूर ने बालक कृष्ण के एक अन्य मधुर रूप का चित्र खीचा है। मां यशोदा बालकृष्ण को हउवे का डर दिखा कर दूर न खेलने जाने से रोककर घर खेलने की प्रेरणा कर रही है।

शब्दार्थ—कित=कहां। आजु=आज। हाऊ=हउवा। नान्हा=बच्चा। लरिका=लड़का। भजि=भग कर। बोलि=यहां बुला कर। बुझावहुँ=पुछवाती हूं। तोरि=तोड़। जाहि जिसे। बेगी=शीघ्रता से। सबैं=सब जन। धाम=स्थान, घर।

अर्थ—(यशोदा कृष्ण को डराती है) कान्हा ! दूर खेलने नहीं जाना। तुम बच्चे हो तुम्हें मालूम नहीं, आज सुना है वन में कोई हाऊ आया हुआ है। एक लड़का भाग कर अभी आया है, तुझे उसे बुलाकर पुछवाती हूँ, वह हाऊ जिन्हें लड़का (बच्चा) देखता है। इन सब के कान काट लेता है। इसलिए चलो जल्दी जल्दी सबसे पहले अपने २ घर को भाग चलो सूर कहते हैं—यह बात सुनकर कृष्ण ने झट से बल राम (अपने बड़े भाई) को भी बुला लिया (और घर चलने को तैयार हो गये)।

विशेष—बाल दशा का यह कितना स्वाभाविक और कितना हृदय-स्पर्शी वर्णन है। कृष्ण के मन पर भय छा जाता है (उस कृष्ण पर जिनका अवतार ही पृथ्वी पर से कंस जैसे दुष्ट का भार उतारने

का मन भी ललचा उठता है [या इस सुख के लिए पागल हो जाता है।

विशेष—यशोदा की किसी पहले जन्म की भक्ति का ही यह फल था कि भगवान ने आकर उसकी डांट डपट सुनी और उसे वात्सल्य का अलौकिक आनन्द प्रदान किया। शिव-ब्रह्मा तो रात-दिन उनका ध्यान करते हैं तो भी दर्शन सुख से वंचित रहते हैं।

१४. सुत मुख देखि यशोदा फूली।............

परिचय—इस पद मे भी कृष्ण के शैशव का ही वर्णन है। उनके सर्व प्रथम दूध की छोटी २ दन्तुलियां दिखाई दी हैं, उस पर यशोदा और नन्द प्रसन्नता मे फूल रहे हैं।

शब्दार्थ–फूली=परम प्रसन्न हुई। हरषित=प्रसन्न। देखि= देखकर। दंतुली=दन्तियां, दांत। मगन=मग्न, डूबा हुआ। देखो धौं=देखो तो जरा। तनक=जरासी। महर=पतिदेव, नन्द। चितवत=देखते हुए। किलकत=किलकारी मारते वक्त। द्विज= दांत। बिज्जू=बिजली। जमाई=बिठाई हों।

अर्थ—पुत्र का मुंह देखकर यशोदा फूली नहीं समाती। दूध की छोटी छोटी दतियों को देखकर मन में परम प्रसन्न हो कर वह शरीर की सुधि भूल गई। याहर से [घर के बाहर से] नन्द को बुलाने भेजा कि वे भी आकर दूध की छोटी छोटी सुन्दर और सुख-दायक दन्तुलियों को देखकर अपने नेत्रों को सफल करें। तब हर्ष के साथ नन्द अन्दर आये और पुत्र के मुख को देख-देख कर आंखों को तृप्त करने लगे। सूर कहते हैं कि जब कृष्ण ने किलकारी मारी तो दोनो दांत दिखाई दिये, जो ऐसे लग रहे थे मानों कमल पर दो बिजलियां बिठाई हुई हों [सजाई गई हों।]

भाव यह है कि भगवान का मुख कमल जैसा है। मुख में दोनों ओर निकली छोटी-छोटी श्वेत दूध की दन्तियां ऐसी चमकती हैं जैसे

[बिजली] वृष के दांत निकलने पर अत्यन्त प्रसन्नता होना सर्वत्र प्रसिद्ध है।

श्यामरूप-वर्णन

१४. देखो माई सुन्दरता को सागर।......

परिचय—प्रस्तुत पद्य में सूर ने भगवान के किशोर या नव स्वरूप का चित्र खींचा है। उन्होंने कृष्ण के श्याम शरीर को यौवन और सौन्दर्य का समुद्र बनाया है और उसी रूप को अंत तक निभाया है।

शब्दार्थ-देखो=देखा। को=का। नागर=चतुर, नागरिक। अम्बु निधि=समुद्र। पतंग=महीन वस्त्र, सूर्य। चितवत=देखने पर। चलत=चलते हुए। उपजत=उत्पन्न होती है। अंग-प्रत्यंग=प्रत्येक अंग में। भवर=आवर्त, नदी के गहरे जल में गोल चक्कर। मकराकृत=मकर (मगरमच्छ) के समान आकृति [आकार वाले]। भुजदण्ड=डोले, भुजदण्ड। भुजंग=सर्प, अनन्त नामक। गोल सर्पाकार भुजदंड में पहिनने का एक आभूषण। मुकत माल=मोतियों की माला। सुरसरि=गंगा। द्वै=दो। नखचन्द=नखरूपी चन्द्र, नख जिस पर रंगों से चांद के चिन्ह बने हुए थे। किंकनी=किंकिणी, मेखला। मनु=मानो। अडोल=निश्चल, शान्त। बारिधि=वारिधि, समुद्र। बिबिधित=अति बिम्बित। राका=पूनम की रजनी। उडगन=उडुगण, तारे। वृन्द=समूह। जनु=जैसे। मथि=मथ कर। ससि=चन्द्र। औ=उदमो। प्रेम पचि=प्रेम में पककर।

अर्थ—[एक गोपी कह रही है] माई! हमने तो आज सौन्दर्य का एक सागर देखा। उसका ज्ञान और विवेक से कोई पार नहीं पाता, इसलिये चतुर मन [वाले] उसमें अवगाहन कर [गोता लगा

कर] ही उसका आनन्द लेते हैं। गंभीर समुद्र जैसा श्याम शरीर है और कमर पर पीले रंग का महीन वस्त्र है [जो मानो उसकी तरंगे हैं]। चलते समय देखना और भी अधिक सुन्दर लगता है, अंग-अंग में भंवर पड़ते हैं, जैसे जल में पड़ा करते हैं। नेत्र मछलियां हैं और मगरमच्छ की शक्ल के कानों के कुण्डल हैं और भुजदण्डों मे भुजंग [अनन्त भूषण] पहिने हैं [समुद्र में सर्व, मछलियां और मगरमच्छ होते हैं] वक्षस्थल पर तीन लड़ियों का शुभ्र मोतियों का हार झूल रहा है, जो ऐसा लगता है मानो दो अन्य नदियों को साथ लिए गङ्गा समुद्र में मिल रही हो। मोर पुच्छ के चन्दोवे का मुकुट, मनिगणों के आभूषण, कमर में पहिन हुई मेखला और नखरूपी चन्द्र (या नखो पर बने चन्द्र चिन्ह), ये सब ऐसे लगते हैं, मानो शान्त निश्चल समुद्र में चन्द्र और तारो के साथ रात्रि प्रतिबिम्बित हो रही हो। मुख चन्द्र की शोभा ऐसी शुभ्र और सुखद छिटक रही है कि ऐसा मालूम होता है जैसे कि उस [यौवन और सौन्दर्य के]समुद्रमें से मथ कर अभी २ लक्ष्मी और अमृत के सहित चंद्रमा निकाला गया हो (समुद्र मथ कर जब देव और राक्षसों ने चन्द्रमा को निकाला था तो उसकी लक्ष्मी (शोभा) और अमृत को विष्णु ले उड़ा था। फलतः चन्द्र के पास थोड़ी सी लक्ष्मी और अमृत बचा। किन्तु कृष्ण का मुख चन्द्र ऐसा है जो अभी अभी निकाला गया है, जिसके साथ अभी लक्ष्मी और अमृत विद्यमान है, अर्थात यह लौकिक चन्द्र से कहीं अधिक शोभा और अमृत का आगार है] सूर कहते हैं कि देख देखकर समस्त गोपियां मोहित सी, ठगी सी खड़ी रह गईं, उन्हें उनके सौन्दर्य और यौवन के समुद्र का पार नहीं मिला और वे बेचारी प्रेम में जलने लगीं।

भाव यह है कि भगवान का रूप अपार सुन्दर है। ज्ञान और वैराग्य से उसका पार पाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। उसके तो रूप

माधुर्य में डूब कर ही जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त किया जा सकता है, जैसे गोपियां खड़ी खड़ी देखकर उसमें अपनी सुधबुध खो गईं। भगवान का स्वरूप अनन्त सौन्दर्य का समुद्र है जिस में तैरने का, स्नान करने का आनन्द लिया जा सकता है, उसके पार नहीं जाया जा सकता। यह एक गाने का पद है जो वस्तुतः कृष्ण के एक मधुर रूप का ध्यान है।

१५ नटवर वेष काछे स्याम। ·· ·······

परिचय—इस पद में भी भगवान के नट वर (नर्तक) रूप का वर्णन है सूर ने विविध रूपकों के द्वारा कदम्ब के नीचे स्थित भगवान मधुर सुन्दर रूप में रंग भरे हैं है।

शब्दार्थ—नटवर=नर्तकवर। काछे=कसे, बनाये हुए। इन्दु=चन्द्रमा। पूरन काम=कामना पूर्ण करने वाला। जान=जानु, घुटना। जंघ=जंघा। सुघर=सुन्दरता, सुगठन। निकाई=सुन्दरता। रंभा=केले का वृक्ष। तून=बराबर। मानहु=मानो। जलज=कमल। केसरि=केशर, कमल के अन्दर के पीले बौर। छुद्रवली=घण्टियों दार तगड़ी। झूलत रहे हैं। पगति=पंक्ति, श्रेनी। भीर=बीच में। मनहुँ=मानो। रसाल=आम। हृद=झील, तालाब। रोमावली=रोमपंक्ति। ग्रीव=गले में, ग्रीवा में। मोतिन=मोतियों का। रेन=रेत, सेकत। सुखदेन=सुखदायक। चिबुक=ठोड़ी। दसनदुति=दशनद्युति, दन्तकान्ति। बिम्बबीज=बिम्ब-नामक लाल फल का बीज, (जिसके साथ कवि लोग अधर की लालिमा की उपमा दिया करते हैं)। खञ्जन=एक छोटा सा चंचल पक्षी; जिससे चंचल आंखों की उपमा दी जाती है। सरमाई=शर्म करता है। स्रवन=श्रवण, कान। कोदण्ड=धनुष। नीप=कदम्ब। तर=तले सोखंड मोर पङ्ख, चन्दन।

अर्थ—भगवान् कृष्ण नटवर वेश बनाये हुए हैं। उनके चरण के नख रूपी चन्द्र की शोभा का ध्यान अब मनोरथों को पूरा करने वाला है। उनके जानुओं और जांघों की गठन और सुन्दरता की केला भी तुलना नहीं कर सकता। (सुन्दर, पुष्ट और चिकनी जांघों की केले से तुलना की जाती है)। पीला पट का और कछनी कमल के कोमल पीले केसर की शोभा देख रहे हैं (ऐसे लगते हैं जैसे कमल के पीले केशर हों)। कटिप्रदेश और नाभि के बीच में सुवर्ण की मेखला (तरागड़ी) है, जो ऐसी प्रतीत होरही है मानो झील के किनारे आमों और हंसों की श्रेणी हो (नाभि गहरी झील है, मेखला की सुवर्ण की जंजीर आमों की पीले बौर वाली पंक्ति है, मेखला में चांदी की श्वेत घटियां हैं जो हंस पंक्ति है)। हृदयतल पर रोम पंक्तियों के बीच मे गले मे पड़ी मोतियों की माला शोभा पारही है, जो ऐसे लगती है मानो गंगा की धार यमुना की धारा में मिलकर बह रही हो। (रोमों की काली पंक्तयां जमुना की नीली धारा जैसी हैं और मोतियों श्वेत लड़ी गंगा के श्वेतजल की धार है)। दोनों विशाल भुजाएं इस गंगा यमुना की धारा के दोनों किनारे हैं, जिनके दोनों ओर खड़ी व्रज की सुखद युवतियां तट के वृक्षों और वनों की अनेक चित्र विचित्र पुष्पों से युक्त श्रेणियां जैसी लगती हैं (कृष्ण के दोनों ओर खड़ी व्रजयुवतियां तट की वृक्ष पंक्तियां जैसी लगती थीं)। ठोड़ी पर पड़ती हुई दान्तों की कान्ति बिम्बबीज की कान्ति को भी शर्मा रही हैं। नाक की तोते से, और आंखों की खञ्जन से उपमा देता हुआ कवि शर्माता है (वे उनसे कहीं सुन्दर हैं)। कानों में पड़े हुए कुण्डलों की चमक करोड़ सूर्यों की चमक जैसी है और भवों की छवि काम के धनुष को तुलना कर रही है (तिरछी भवों की धनुष से उपमा दी जाती है)। सूर कहते हैं कि सिर पर चन्दन लगाये हुए भगवान् यह रूप बनाये हुए करुणा के

ओर छिटके हुए हैं, जिससे ऐसा लगता है, मानों सिर पर जटाओं की शोभा धारण कर शंकर का रूप बनाये हों। मस्तक पर मनोहर तिलक में केशर की बिन्दी लगी हुई है, जो ऐसी लगती है मानो इस अग्नि रेखा (तृतीयनेत्र) से शंकर अपने शत्रु कामदेव को जला रहे हैं। (देवताओं के कहने से शिव के हृदय में बाण मार कर उनके मस्तक की अग्नि में स्वयं जल गया था। कृष्ण का कुंकुमी पीला तिलक और उसके बीच में केशरी बिन्दी शंकर की उस मस्तकाग्नि की रक्त रेखा (या नेत्र) जैसी लगती है)। गले में नीलम का कण्ठा है और हृदय पर कमलो की माला लटक रही है, जिस से ऐसा लगता है मानो गले में विष की श्यामता (काला रङ्ग) हो और कपालों की माला धारण की हुई हो। (शिव के गले में विष और कपालो की माला होती है। कृष्ण का नीलम का नीला कण्ठा विष की नीलता की शोभा दे रहा है और लाल कमलों की माला मुण्ड माला जैसी लगती है) और इस प्रकार शंकर का रूप बनाये हुये हो। नारियां कृष्ण के गले में पड़े हुए तिरछे सिंहनख को प्रसन्नता से देख रही हैं, वह ऐसी शोभा पा रहा है, मानों शकर ने अपने मस्तक पर से तिरछी चन्द्रकला को उतार कर लटकाया हुआ हो। अंगों पर आंगन की लगी हुई धूल ऐसी सुन्दर प्रतीत हो रही हैं, मानों शंकर की भस्म का भी गर्व हरने वाली विभूति (भस्म) लगी हो। (धूल इतनी सुन्दर है कि उसकी तुलना में शंकर की भस्म भी कुछ नहीं)। सूर कहते हैं कि जिन का नाम ब्रह्माजी सदैव अपने चारों मुखों से जपते हैं, और जो इन्द्र के बज्र से भी अधिक कठोर हैं, ऐसे भगवान् कृष्ण अपनी जननी से मचल रहे हैं, उससे हठ कर रहे हैं।

सूर ने एक और बाल स्वरूप का स्पष्ट चित्र उपस्थित किया है जिसमें त्रिविध रूपकों और द्व्यर्थक (श्लिष्ट) शब्दों के द्वारा उन्हों ने उन्हें शंकर का रूप दे दिया है। वर्णन स्पष्ट है। शंकर के त्रिविध

पदार्थों का कृष्ण में होना बताया गया है। अन्त में सूर की अविचल भक्ति व्यंग्य रहती है। कृष्ण का गाने लायक पद में बांधा गया एक मधुर ध्यान है।

उद्धव सन्देश

परिचय—उद्धव कृष्ण के परम अन्तरङ्ग सखा थे, जो कृष्ण द्वारा मथुरा जाने के पश्चात् गोपियों की सुधि लेने और उन्हें ज्ञान योग की शिक्षा द्वारा शान्ति देने के लिए दूत बनाकर भेजे गये थे। भाग्य से या दुर्भाग्य से उनका भी रङ्ग कृष्ण जैसा ही काला था। सो गोपियों ने उन्हें कृष्ण का रूप और गुणवाला मान कर खूब खरी खरी सुनाई ? उसे उन्होंने अधिकतर भ्रमर के नाम से संबोधित किया है—यह साम्य कुटिलता और काले रङ्ग के कारण है। गोपियों और उद्धव का यह उत्तर-प्रत्युत्तर सूर सागर का निचोड़ माना जाता है जिसमें सूर का कवित्व और भाव (भक्ति) पूर्ण प्रस्फुटित हुए हैं। यह संवाद "भ्रमर गीत" के नाम से प्रसिद्ध है। नीचे के पद उसी प्रकरण के है।

१७. ऊधो अंखियां अतिअनुरागी।..........

परिचय—इस पद में गोपियां कृष्ण के अनन्य प्रेम में सनी हुई उद्धव के ज्ञानोपदेश का तिरस्कार करके, उसी से पूछती हैं कि श्याम कैसे मिलेंगे।

शब्दार्थ—ऊधो=उद्धव। अनुरागी=प्रेम में रङ्गी हुई। मग=मार्ग। जोवति=निहारती हैं। अरु=और। हूं=से। लागी=लगती है। बिन पावस=वर्षाकाल से पहिले ही। बिदमान=विद्यमान, प्रत्यक्ष। अबधों=अब और। कहा=क्या। छाँड़हू=छोड़ा। सकल=समस्त। उपाव=उपाय।

अर्थ—ऊधो ! आंखें उनके प्रेम में गहरी रङ्गी हुई हैं, ये उनकी प्रतीक्षा करती हैं, रोती हैं ! और रात को भूल कर भी पलक नहीं

लगातीं (नींद नहीं आती)। तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो, बिना वर्षाकाल के ही वर्षाऋतु आई हुई है (आंखों से निरन्तर जल बरस रहा है), अब और क्या करना चाहते हो ? छोड़ो इस ज्ञान के चक्कर को । सुनो, तुम कृष्ण के अन्तरंग सखा हो, उनके स्वभाव से खूब परिचित हो, तुम हमें ऐसा कोई उपाय बताओ जिससे श्याम मिल सकें।

विशेष—इस पद में गोपियों की निरन्तर ध्यान या समाधि-दशा सूचित होती है। वे प्रेम योगनियां थीं। उद्धव उन्हें ज्ञान शिक्षा देने गये थे, जिसका उत्तर वे अपनी एकनिष्ठ दशा बताकर और कृष्ण के मिलने का उपाय पूछकर देती हैं।

१६, ऊधो यह हरि कहा कर्यो।............

परिचय—इस पद में गोपियां उद्धव से कृष्ण की शिकायत करती हैं और उन्हें देने के लिए अपना संदेश देती हैं।

शब्दार्थ—कहा=क्या। जौ लौं=जब तक। तौ लौं=तब तक। घोष=ग्वाले। सन्तत=लगातार। बारक=बार एक, एक बार। उलूखल=ऊखल। जिय=जी में, दिल में। मानिलिया=मानलिया, बुरामानलिया। नायक=सर्दार। बहुतै=बहुत सी। तऊ=तोभी। कहूं=कहां। गोधन=गौओं का धन, गायें। गोप=ग्वाले। गोरस=दूध दही आदि गऊ से उत्पन्न होने वाले पदार्थ। खैबो=खाना। जिहि=जिससे। ऐबै=आगमन। करो=ब्याहलो।

अर्थ—ऊधो ! सांवरे कृष्ण ने यह क्या किया कि राज काज में अपना मन लगा लिया और गोकुल को बिलकुल भुला दिया ? जब तक वे ग्वाले रहे हमने सदैव सेवा की, एकाध बार कभी लाड से दंगा करते ऊखल से बांध दिया था, क्या उसी का जी में मानता किया ? (उन से कह देना) हे ब्रज-राज ! जो तुम करोड़ों राज कन्याओं को भी बर लोगे तोभी तुम्हें नन्द बाबा कहां मिलेंगे, माता

यशोदा कहां से लाओगे, कहां तुम्हें यह गौयें मिलेंगी, कहां यह ग्वाले और दूध दही खाने को मिलेगा ? सूरदास कहते हैं, अब वैसा उपाय करो जिससे श्याम का गोकुल में फिर से आना हो।

विरह की कितनी करुण उक्ति है ! गोपियों की कृष्ण परवाह नहीं करेंगे। हजारों राज कन्याएं ले आयेंगे, वे यह जानती हैं, पर वे कहती हैं, नन्द, यशोदा, गाय, गोप कहां से लाओगे ? कितनी भोली, स्त्री-सुलभ, मिलने की दूर की आशा लिये विरहोक्ति हैं ! ज्ञान देने वाले से ही वे कृष्ण के आने का उपाय पूछती हैं।

१६ निर्गुन कौन देसको बासी।........

परिचय--इस पद में गोपियां उद्धव के भगवान् के सगुण रूप के खण्डन के उत्तर मे उसी की तरह की युक्तिया देती हैं जिन में उसे बेवकूफ बनाने की भावना है।

शब्दार्थ—बासी=वासी, रहने वाला । मधुकर=भ्रमर, उद्धव। हसि=हंस कर। बूझति=पूछती है। जनक=पिता। कहियत=कही जाती है। बरन=वर्ण, रङ्ग। केहि=किस। अभिलासी=पसन्द करने वाला। पुनि=फिर। जोरे=यदि तुम। गांसी=तीखी बात। नासी=नष्ट हो गई।

अर्थ—गोपियां हंस हंस कर कसम दे कर पूछती हैं, मधुकर ! (उद्धव) सच बताओ, हंसी की बात नहीं है, तुम्हारा निर्गुण कौन से देश का रहने वाला है। समझाओ हमें। कौन उसका पिता है, कौन उसकी मां है, उसका कैसा रङ्ग है, कैसा वेश है और वह किस प्रकार की रुचि रखता है ? खबरदार ! अगर फिर तीखी बात कहेगा तो अपने किये का वैसा ही फल पायेगा (अर्थात् करारा ही उत्तर मिलेगा—Tit for tat)। सुन कर, सूर कहते हैं, उद्धव बेचारा चुप चाप ठगा सा खड़ा रह गया, उस की सारी अक्ल मारि गई।

उद्धव ने सगुण रूप का खण्डन करके गोपियों के हृदय में उस ओर से विरक्ति उत्पन्न करने की जो चेष्टा की थी, उसे मजाक की उक्तियों में उड़ा दिया जाता है और साथ ही उद्धव को डांट भी दिया जाता है कि मतलब की बात करे।

२०. अखियां हरि दरसन की प्यासी।..........

परिचय– इस पद में भी गोपियां अपने विरह की करुण दशा बता कर कृष्ण के मिलने का उपाय पूछती हैं।

शब्दार्थ––बतियां=बातें। रूखी=शुष्क ज्ञान की। अवधि=समय की सीमा, दिन। गनत=गिनते हुए। राती=रात। झूखी=झमकी, लगी। जोग=योग। दुखी=दुखी। फेरि=फिर। दुहिपय=दूध दुहकर। पतूखे=दोना। सिकत=सैकत, रेत। ये सरिता=ये नदियां, गोपियां।

अर्थ––(गोपियां व्याकुल हो कर कहती हैं) ऊधो रे! ये आंखें हरि दर्शनों की प्यासी हैं। कृष्ण के सुन्दर रूप और रस में रङ्गी हुई ये तुम्हारी सूखी बातों (ज्ञान की) से कैसे सन्तोष करें? ये तो दिन रात दिन गिनती रहती हैं (उन के आने के दिन गिनती हैं प्रतीक्षा में) एक टक राह तकती हैं और सारी रात नहीं लगतीं (नींद नहीं आती) और अब तुम्हारे इन योग के सन्देशों के कारण तो अत्यंत ही दुःखी हैं। गायों से दुह कर दोनों में डाल कर दूध पीता हुआ वह मधुर मुख एक बार फिर दिखा दो, (ज्ञान की चर्चा तो तुम्हारी फिजूल है)। तुमको रेत में नाव चलाना चाहते हो, क्योंकि इन नदियों में अब पानी नहीं रहा है (हमें ज्ञान देने का प्रयत्न तुम्हारा रेत में नाव चलाने के समान है)।

भाव यह है कि गोपियां कृष्ण के रङ्ग में इतनी रङ्गी हैं कि उन पर दूसरा रङ्ग नहीं चढ़ सकता। उनकी आंखें एकटक उन का मार्ग देखती हैं। नींद नहीं आती। यह सब प्रेम योग की अनन्य ध्यान

हुआ है। इसी लिए यह सब बता कर वे कहती हैं ऊधो ज्ञानोपदेश का तुम्हारा प्रयत्न व्यर्थ है।

२१. बिनु गुपाल बैरन भई कुंजैं।........

परिचय--इस पद में गोपियां अपनी विरह-दशा का सन्देशा देती हैं कि हमारे लिए दुनिया ही बदल गई है, जो वस्तुएं पहिले आनन्द का कारण थीं, वे अब दु:ख का कारण बनी हुई हैं।

शब्दार्थ---बिनु=बिना। बैरन=शत्रु। पुंजैं=समूह। बहति=बहती है। खग=पक्षी। अलि=भ्रमर। गुंजैं=गूंजते हैं। पानि=जल। घनसार=काफूर। सजीवन=सुखद, जीवन दायक। दधि सुत=चन्द्रमा। भान=सूर्य। भुजैं=भूनती हैं। माधव=कृष्ण। करद=आधीन, वश में। लुंजैं=प्रहार, चोटें। बरन=वर्ण, रङ्ग। गुंजैं=गुञ्जाफल, रत्तिया। करद=कर देने वाला, आधीन।

अर्थ--वे (गोपियां बता रही हैं) ये कुंजें कृष्ण के बिना अब दुखदायी बनी हुई हैं। ये लताएं पहिले बड़ी ठण्डी लगती थीं पर अब भयंकर विष की लपटें बनी हुई हैं। हमारे लिए यमुना वृथा बहती है, पक्षी व्यर्थ कूकते हैं। कमल निरर्थक फूलते हैं और भौंरे फिजूल गूंजते हैं, पवन, पानी, काफूर और चन्द्रमा जो पहिले सुखमय जीवन दायक लगते थे अब सूर्य की किरणों के समान तपाते हैं। हे उद्धव! कृष्ण से जाकर कहना कि वियोग हमें अपने आधीन कर के प्रहार कर रहा है (वे आकर हमारी रक्षा करें)। सूर वर्णन करते हैं, गोपियों की आंखें प्रभु का मार्ग देखते २ गुंजा के समान लाल हो गई हैं।

बिना कृष्ण के, सुख के कारण भी दुख के कारण बने हुए हैं। जिन वस्तुओं से पहिले आनन्द मिलता था, वे यमुना आदि अब व्यर्थ दिखाई देती हैं! आंखें मार्ग देखते देखते थक कर लाल हो गई हैं।

२२. नाहिन रह्यो मन में ठौर।........

परिचय—इस पद में भी गोपियां ऊधो से अपनी असमर्थता बताती हैं उसके उपदेश-ग्रहण में।

शब्दार्थ—नाहिंन=नहीं। ठौर=स्थान। अछत=होते हुए। आनिए=लायें। सपन=स्वप्न। राति=रात। छिन=क्षण। करौं=करूं। आनन=मुख। ललित=मधुर। मृदु=कोमल। कारन=लिए।

अर्थ—(गोपियां कहती हैं) ऊधो! मन में जगह ही नहीं है। मन में श्याम सुन्दर के होते हुए और किसी (निर्गुण) को कैसे हृदय मे लायें। दिन में, जागते, चलते, देखते और रात मे निद्रा और स्वप्न में किसी भी समय क्षण भर को भी वह मधुर श्याम-मूर्ति हृदय से कहीं नहीं जाती। तुम हमें अनेक कथाएं सुना कर लोक लाभ समझा रहे हो, पर हम क्या करें (तुम्हीं बताओ), हमारे छोटे से हृदय मे प्रेम का प्रवाह नहीं समाता, जैसे छोटे मे घड़े में समुद्र नहीं समाता (फिर ज्ञान के लिए कहां गुंजायश हो)। सूर कहते हैं, श्याम शरीर, कमल मुख और सुन्दर मधुर मुस्कान, ऐसे सुन्दर रूप के देखने के लिए आंखें तरस रही हैं।

अभिप्राय यह है कि गोपियों का प्रेम-समुद्र इतना उमड़ा हुआ है कि उसी के लिए उनके हृदय में पर्याप्त स्थान नहीं है, उद्धव के ज्ञान के लिए कहां से हो? उनके शरीर के रोम रोम में भगवान् कृष्ण व्याप्त हैं, फिर वे उद्धव के निर्गुण ब्रह्म को कहां स्थान दें?

२३. ऊधो मन नहीं हाथ रह्यो।·········

परिचय—यहां भी गोपियां अपनी विवशता दिखा ऊधो का मजाक उड़ाती हैं।

शब्दार्थ—चढ़ाय=सवार करा के। जबै=जब। सिधारे=पधारे। नातरु=अन्यथा। कहा=क्यों। कै=कर के। रुचि=चाह। झखती=रोती हैं। करनी=करतूत। पठाये=भेजा। अजहूं=

अब भी। होयते होय=होते होते। सपथ=कसम। कोरि=करोड़, कोटि। कहौ=कहोगे।

अर्थ—ऊधो! क्या करें, मन अपने हाथ में नहीं रहा। उसे तो जब भगवान् मथुरा गये, तभी साथ रथ में सवार कराके ले गये। नहीं तो हम तुम्हारा योग क्यों छोड़ती, जिसे तुम इतनी चाह से लाये हो? हमें तो श्याम की करतूत पर रोना होता है, जिस ने हमारा हृदय चुरा कर बदले में योग भेजा है। हमें अब भी हमारा मन वापिस मिल जाय, तुम्हारे होते होते ही, तो हमें तुम्हारी करोड़ों कसम हैं, जो तुम कहोगे वही करेंगी।

गोपियों के मन हाथ में नहीं, कृष्ण के साथ गया। उनका मन अब भी उन्हें मिल जाय तो वे उद्धव के इतनी रुचि से लाये हुए योग को कभी न छोड़ें। कैसा मजाक उड़ाया जा रहा है उद्धव जैसे ज्ञानी सन्त का! कसमें भी उसी की खायी जा रही हैं। मन लादो, जो कहोगे करेंगी। कितनी कठिन शर्त है। सूर अपनी उपमा नहीं रखते।

२५. उपमा एक न नयन गही।·········

परिचय—इस पद में सूर ब्रजवासियों के कृष्ण की प्रतीक्षा में आतुर लोचनों का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि कवियों ने बहुत कोशिश की पर कोई उपमा ठीक बैठती ही नहीं है।

शब्दार्थ—गही=स्वीकार की, ग्रहण की। सुधि=समझ। बिनु-बिना। तहिं-वहां। चलि जात-चला जाता। बिछुरे तै-बिछुड़ने से। ठाले-निश्चल। जो पै-अगर। सतरात-अकुलाते। कबहूं-कभी। पसारि-फैला कर। समर=संकट का स्थान, युद्ध। बिकात-समाप्त हो जाते हैं। बधन-मारने। जौ-यदि। पलाय=भागते। देखत=देखते ही। घन=घने, बीहड़। कोऊ=

कोई। रोचन=प्रिय। बाढ़त=बढ़ता है। मीनता=मीनत्व, मछली का धर्म (गुण)। कछूइक=कुछ ऐसी एक, विलक्षण।

अर्थ—उपमा एक भी कहते नही बनी (या ब्रजवासियों के नयनोंने एक भी उपमा नहीं पायी)। कविगण कहते कहते चले आये, परन्तु समझ सोचकर उन्होंने कोई उपमा कही नहीं (ठीक नहीं समझी)। (ब्रजवासियों के लोचनों को) यदि चकोर कहें, तो वे कृष्ण के मुख चन्द्र के बिना कैसे जीवित हैं? वे भंवर हैं, तो वे वहीं क्यों नहीं उड़कर चले जाते, कृष्ण के मुख कमल से बिछुड़ने पर यहां ठाले (निठल्ले) क्यों पड़े हैं? ये सब के मन को प्रसन्न करने वाले और कभी न चिढ़ने वाले (या न अकुलाने वाले) खंजन भी नहीं है, क्यों कि ये उडने के लिए केवल पंख पसार कर ही रह जाते हैं, निश्चल बैठ जाते हैं और वहीं संकट में पड़े हुए ही समाप्त हुए जा रहे हैं (पक्षी होता तो संकट के स्थान से उड़कर अपनी जान बचाता)। ये मृग भी नहीं हैं (मृग से आंखों की उपमा होती है।), क्योंकि, जब इन्हें मारने के लिए तुम व्याध (शिकारी) रूप होकर, आये हो, तब ये अपने जीवन की रक्षा के लिए घने जंगल में नहीं भाग जाते, जहां कोई इनके साथ न जा सके (यहीं निश्चल खड़े हैं, अतः ये मृग नहीं)। सूर कहते हैं, बिना प्रिय के दर्शनों के ब्रज-वासियों के लोचन (आंखें) क्या लोचन हैं, उनमें, प्रतिदिन दुःख ही बढ़ रहा है। वे (आंखें) कुछ ऐसी मछलियां बनी हुई हैं, कि एक बार जल मिल जाने पर फिर उसका साथ ही छोड़ना नहीं जानतीं।

ब्रजवासियों के नयनों को इन सारी उपमाओं और रूपकों से केवल एक ही ध्वनि (व्यंग्य) निकलती है कि नेत्र खुले हुए, एकटक, सर्वदा पानी भरे कृष्ण की प्रतीक्षा में रत हैं। इसी अर्थ को सूरने अलंकारों की सहायता से व्यक्त किया है। ब्रजवासियों की आंखें यदि चकोर होतीं तो कृष्ण के मुख चन्द्र के बिना क्यों जीतीं? भ्रमर होतीं

तो मुख कमल के बिछुड़ने पर यहीं क्यों पड़ी रहतीं, उनके पास जातीं ? मृग होतीं तो उद्धव व्याध के सामने कैसे ठहरतीं ? भाग कर जंगल में छुपकर प्राण बचातीं। मछली पानी के बिना कुछ देर जीवित रह सकती है, पर ये पानी के बिना कभी नहीं रह सकतीं (इन में निरन्तर पानी भरा रहता है)।

२६ मधुकर मन तो एकै आहि।..............

परिचय—इस पद में गोपियां उद्धव को बेवकूफ तो बनाती ही हैं कि उसके ज्ञान के तर्क का मजाक से उत्तर देती हैं, पर साथ ही धैर्य खोकर उत्तेजना में उसे गालियां भी सुना देती हैं।

शब्दार्थ—एकै–एक ही। आहि–होता है। सो तो–उसे तो। काहि–किसको। सठ = धूर्त, धोखे बाज। कुटिल–कपटी। बचन रस–बातों का रस। लम्पट–विषयी, लालची। अबलन–अबलाओं के। चहि–प्रेम करके। लौन–लवण, नमक। अनल–अग्नि। दाहि–जलाकर। उपचार–चिकित्सा, इलाज। जाहि–जिसे। जाकौ—जिसको। राजरोग = जीर्ण ज्वर या राजयक्ष्मा। कफ = खांसी, बलगम। ताहि = उसको। पूरि रही = व्याप रही है। तजि=छोड़कर। अवगाहि=डूबना, स्नान करना, गाहना। सकै= सकता है। तन=तरफ।

अर्थ—हे भ्रमर! (उद्धव!) मन तो एक ही है, उसी को भगवान् कृष्ण मथुरा जाते समय साथ ले गये। अब तुम योग की शिक्षा किसे दे रहे हो (मन के बिना योग कैसे)? रे धूर्त, बातों के रस के लोभी! अबलाओं के (हमारे) प्रति एक बार प्रेम प्रकट करके (या हमारे शरीर का एक बार उपभोग करके) हृदय में विरह की अग्नि लगाकर, अब ऊपर से नमक क्यों लगा रहे हो? जिसे विरह की पीड़ हो रही है (विरह का रोग है) उसका इलाजतुम परमार्थ (ज्ञान योग के उपदेश) के द्वारा कर रहे हो, जिसे राजयक्ष्मा (T.B.) और खांसी

हो रही है, उसे तुम दही खिलाकर ठीक करना चाहते हो (अर्थात् हमारा उपचार तो कृष्ण के दर्शन ही हैं, तुम उल्टी बात कर रहे हो)। सूर कहते है, हमारे (गोपियों के) हृदय में तो श्याम की मधुर सुन्दर मूर्ति बसी हुई है, उसे छोड़ कर तुम्हारे (ऊधो के) निर्गुण ब्रह्म के समुद्र में (ब्रह्म ज्ञान समुद्र के समान ही अथाह होता है) कौन डुबकियां मारे ।

गोपियां अपनी सर्वथा असमर्थता दिखाती हुई, उधो को कहती हैं कि वह उनका रोग नहीं समझा, इसी लिए ज्ञान का उपचार गलत कर रहा है। उन्हे तो असल में विरहरोग है, जिसमें कृष्ण दर्शन से ही कुछ लाभ हो सकता है, ज्ञान या योग से नहीं। बातचीत के सिलसिले में ही वे उत्तेचित हो जाती हैं (जोकि उत्कट विरह का सूचक चिन्ह है) और धूर्त लम्पट आदि गालियां देने लगती हैं। यहां वस्तुत: वे उद्धव को रूप रंग और सखा होने के कारण कृष्ण के ही रूप में [विरहजन्य भ्रम मे] देखकर ऐसा करती हैं । यह सब उनकी आन्तरिक असह्य विरह दशा का सूचक हैं। वे कहती हैं इस सुन्दर मूर्ति के प्रेम (कृष्ण भक्ति) को छोड़ कर ज्ञान या योग के अथाह सागर में कौन गोते मारे (पता भी क्या लग सकता है) ?

२७ जा जारे भौंरे दूर दूर।............

परिचय---इस गीत मे गोपियां भ्रमर के रूप में उद्धव और उद्धव के रूप में कृष्ण का तिरस्कार करती हैं। कहती हैं तुम बड़े मतलबी हो।

शब्दार्थ---अरु-और । देखो-देखलिया हमने। जौं लौं-जब तक। तौ लौं-तब तक। सर-सरने पर, निकलने पर। गरजन को-गरजों के, स्वार्थी। कलियन-कलियों का। घूर घूर-रुआबसे।

अर्थ—जा जारे भौंरे, दूर भाग जा। तुम्हारी भी शकल सूरत रंग सब वैसे ही हैं, देखा है हमने, हमारे हृदय का चूर्ण कर दिया उसने (तुम भी वैसे ही हो)। जब तक उन्हें हमसे मतलब था, हमारे पास रहे, और जब वह मतलब पूरा हो गया, तो अब दूर दूर रहते हैं। सूर कहते हैं, कृष्ण अपने मतलब के यार हैं, कलियों का रस बड़ा घूर घूर कर (रोब दिखाकर) लिया करते थे।

अन्त में गोपियां इतनी खिजला उठती हैं कि उद्धव से कहती हैं, तू भाग जा, यहां तेरा कोई काम नहीं। हमने देख लिया, तेरी भी शकल उसी जैसी है, जिसने हमारा दिल तोड़ दिया। तू भी वैसा ही स्वार्थी होगा जैसा वह था। अपने स्वार्थ को हमारे पास रहा और अब स्वार्थ पूरा होने पर जाकर हम से दूर रहता है। अपना स्वार्थ तो (कलियों का रस लेना) बड़े रोबदाब से पूरा कर लेता था (और अब हमारे से क्या वास्ता?)। गोपियों की इस सारी उद्वेजना से उनका अनन्य प्रेम-विरह ही व्यक्त होता है।

मीरा

१. बसो मोरे नयनन में नन्दलाल।..........

परिचय—कबीर सूर और तुलसीदास जी की तरह मीरा ने भी अधिकतर गाने के उद्देश्य से ही कृष्ण प्रेम के पद लिखे हैं, जिनमें कृष्ण के विविध रूपों का सुन्दर चित्र हैं और मीरा की प्रेम तन्मयता व्यक्त होती है।

इस पद में मीरा ने कृष्ण के एक मधुर रूप का चित्र खींचा है।

शब्दार्थ—मोरे=मेरे। सांवरी=सुन्दर। बने=बने हुए। राजति=शोभा पाती है। उर=वक्ष पर। वैजन्ती माल=वैजयन्ती माला जो विष्णु के गले में होती है। क्षुद्र घंटिका=घंटियांदार

बजने वाली मेखला। नूपुर=बिछुआ, घुंघरू। सबद = शब्द। रसाल=रसालय, आनन्द का स्रोत। बछल = वत्सल।

अर्थ—हे नन्दलाल ! तुम मेरी आंखों में निवास करो। मोहिनी मूर्ति है, आमत (विशाल) नेत्र हैं, अधरों में अमृत और मुरली (बंसरी) शोभित होरही है, गले में बैजयन्ती माला है, कमर में सुन्दर मेखला है और घूंघरुओं (बिछुओं) का शब्द आनन्द का स्रोत है (आनन्द देने वाला है)। हे प्रभु ! तुम सन्तों को सुखदायक और भक्तों को प्यार करने वाले हो।

इसलिए मेरी भी प्रार्थना सुनो और अपने इस ऊपर वर्णित सुन्दर भक्त-वत्सल रूप में मेरे नयनों में बसो।

२. म्हानैं चाकर राखो जी............जमुना जी के तीरा॥

परिचय—इस पद में मीरा की अपने प्रिय के प्रति प्रार्थना, आत्मनिवेदन, उनका ध्यान और अनुभूति का वर्णन है। मीरा कहती हैं भगवान् ! मुझे नौकर रखलो —यह तनखाह लूंगी। अपने स्वप्न-दर्शन का वर्णन भी करती है।

शब्दार्थ—म्हानैं=हमें। चाकर=नौकर। राखो=रखलो। रहसूं=रहूँगी। लगासूं=लगाऊंगी। पासूं=पाऊंगी। गलिन में= गलियों में। गासूं=गाऊंगी। सुमिरन=स्मरण, भजन। खरची= जेबखर्च। जागीरी=जागीर। बाना=रूप। सरसी= सर जायगा, काम चलेगा। गल=गले में। धेनु=गाय। बारी=खिड़की। कुसुम्बी=लाल रंग की। सारी=साड़ी। कूं=को। गहिर=गहरे। हृदे=हृदय में। धीरा=धैर्यशाली, धीर। तीरा=तीर पर। नित= नित्य, प्रतिदिन।

अर्थ—हमें नौकर रखलो, हे गिरिधारी लाल जी ! (गिरिधर-लाल) ! हमें अपना नौकर रख लीजिये। मैं आप का नौकर बनूंगी, बाग लगाऊंगी, नित्य उठकर सवेरे दर्शन करूंगी और घूमघूम कर

जीवन की क्षणभंगुरता बता कर भगवद् भजन कर जीवन-सफल करने की प्रेरणा दे रही है।

कठिन शब्द—जनम=जन्म। का=क्या। प्रगटे=उदित मानुषावतार=मनुष्य जन्म। छिन छिन=पल पल। घटत-घटता है। वार=देर। बिरछ=वृक्ष। बहुरि=फिर। डार=डाली, शाखा। भौ=भव, संसार। औखी=मुश्किल तेज। वेड़ा=नाव। वेगि=शीघ्र। मंडि=सजा कर, लगा कर। चोहटे=मोहरे, या गोटें। सुरत=ध्यान। पासा=चौपड़ का पासा जो गेरा जाता है दांव पर। सार=संभाल। भावें=चाहे। जीवणा=जीना।

अर्थ—ऐसा जन्म बार बार नही मिलता। क्या जानूं, कौन से पुण्य उदित हुए कि मनुष्य का जन्म मिला। यह जीवन या जन्म क्षण क्षण में जैसे जैसे बढ़ता है वैसे ही वैसे घट भी रहा है (जीवन का प्रत्येक क्षण मृत्यु की ओर ले जाता है।) इसके नष्ट होते देर नहीं लगेगी, जैसे वृक्ष के पत्ते एक बार टूट कर फिर उसकी डालियों में नही लगते। संसार रूपी समुद्र बड़ा जोरदार है और उसमें भी विषयवासना की धारा बड़ी प्रबल है। इसलिये समझदार प्राणी राम के नाम की नाव बना कर शीघ्र ही उसके पार उतर जाय। ज्ञान की चौसर बिछा कर, उसपर गोटें सजाकर ध्यान का पासा पकड ले। ससार में चौपड़ की यह बाजी बिछी हुई है, इसपर चाहे जीत लेओ और चाहे हार ले लो। गिरिधर लाल की दासी मीरा कहती है कि बड़े २ साधु, सन्त, महात्मा ज्ञानी लोग यही कहते चले आये हैं कि जीवन दो दिन का है।

अर्थात् मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है। इसको भगवद्-भजन के द्वारा सफल करना चाहिये। यह मनुष्य-जीवन फिर नहीं मिलेगा, बड़े भाग्य से मिलता है। यह जितना पलपल में बढ़ता है, उतना ही आयु कम होने से, घटता है। संसार की मोह-माया और विषय-

वासना का जाल बड़ा बलवान् है, इससे राम नाम के सहारे से ही छूटा जा सकता है। संसार एक चौपड़ की बाजी है, जिसपर विचित्र रूपों की गोटें सजी हुई हैं, और इसे खेलने के लिए ध्यान का पासा फेंका जाता है, इसे चाहे हार लो, चाहे जीत लो। ध्यान को चाहे जिधर फेर लो। सुमार्ग में फेरोगे बाजी जीतोगे, कुमार्ग में ध्यान लगाओगे बाजी हारोगे (मनुष्य जन्म को व्यर्थ करोगे)। बड़े बड़े महात्मा कह गये हैं, जीवन चार दिन का है, जो हो सके करलो।

४. मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।............

परिचय--इसमें मीरा अपने एकनिष्ठ प्रेम को व्यक्त करती है। वह कहती है, अब मैं लोक-लाज, घर-बार छोड़ कर भगवान् की दासी हो चुकी हूँ। मुझे दुनियां की क्या परवाह ?

शब्दार्थ—जाके=जिस के। मेरो=मेरा। तात-पिता। दयो=दी। छांड-छोड़। कान-मर्यादा। करिहै-करेगा। ढिग=पास। लीन्ह-ली। पोइ-पिरोली, गूथी। असुवन-आंसुओं के। वेलि-बेल। पियै=पिये। देख-देखे। मोहि-भूल गई। मोहो-मुझे।

अर्थ—मेरे तो गिरधर गोपाल (सम्बन्धी) हैं, और कोई नहीं। जिनके सिर पर मोरपुच्छ का मुकुट है, मेरे पति (प्रिय स्वामी) तो वे ही हैं। उनके अतिरिक्त पिता माता भाई बन्धु और कोई (मेरा) नहीं है। मैं तो अब कुल की मर्यादा ही छोड़ आई हूँ, मेरा अब कोई क्या करेगा ? सन्तों के पास बैठ बैठ कर मैंने लोक लज्जा सब छोड़ दी। चुनड़ी को फाड़ कर उसके स्थान पर लोई ओढ़ ली है। मोती मूंगे (रत्न जवाहरात) छोड़ दिये हैं और उनके स्थान में वन्यपुष्पों की मालायें गूंथ ली है (पहिन ली हैं)। आंसुओं के जल से सींच सींच कर प्रेम की बेल उत्पन्न की है। और अब तो यह बेल सर्वत्र फैल गई है, अब तो इसके आनन्द रूपी फल लगेंगे (प्रेम की बेल का फल आनन्द ही हो सकता है)। हमने तो

मथनियां डाल डाल कर बड़े प्रेम से दूध को बिलोया और जब मक्खन निकाल लिया तो छाछ को कोई भी पिये (हमारा क्या ?) मैं संसार में भक्ति के लिए आई थी, पर संसार को देख कर भ्रम में पड़ गई (मोही गई)। हे प्रभु ! मीरा तुम्हारी दासी है, उसे पार लगाओ।

मीरा कृष्ण में अनन्य भाव से अपनी पति रूप से भक्ति रखती थी। घर के लोग उसका विरोध करते थे। सो, वह खुले रूप में कहती है, मेरे पति तो मुकुट धारी कृष्ण ही हैं, और कोई नहीं। संसार के रिश्ते झूठे हैं। कुल और संसार की लज्जा मैं छोड़ चुकी, संसार छोड़ कर भक्तों का वेश बना लिया है और भगवान् से अगाध प्रेम बढ़ा लिया है, जिसका फल आनन्द अब मुझे मिलने वाला है। संसार रूपी दूध में से हमने प्यार की मथनियों से बिलोकर भगवत् प्रेम रूपी माखन निकाल कर मोह माया रूपी छाछ को छोड दिया है, जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। मीरा कहती है, भगवान् मैं संसार की माया में भटकी हुई हूँ, तुम्हारी दासी हूँ, मेरा उद्धार करो।

५. पायो जी मैंने नाम रतन धन पयो। ....

परिचय—इस पद में मीरा अपने गुरु की प्रशंसा करके, उस से दीक्षा में प्राप्त राम नाम की अमूल्यता का वर्णन करती है।

शब्दार्थ—रतन=रत्न। अमोलक=अमूल्य। करि=करके। खोवायो=खो दिया। खेवटिया=केवट, चलाने वाला। तरि=तैर कर।

अर्थ—मैंने हरि नाम रूपी रत्न का धन पा लिया। मेरे सद् गुरु ने कृपा करके मुझे अपना लिया और मुझे यह अमूल्य रत्न (हरि नाम का) प्रदान किया। हमने तो जन्म जन्मान्तरों की दौलत पाली और इस संसार का सब कुछ खो दिया। यह धन न खर्च हो सकता है और न (हरि नाम) चुराया ही जा सकता है और दिनों दिन सवाया बढ़ता है। सत्य की नाव है, सच्चा गुरु उसका केवट है, और इस प्रकार हम

संसार समुद्र को तैर कर आये हैं। मीरा कहती है, हमारे तो स्वामी चतुर गिरिधारी हैं, जिनका यश हमने परम प्रसन्न होकर गाया है।

मीरा कहती है, सत गुरु ने दया करके, हमें राम नाम का जैसा अमूल्य रत्न दिया है जो चुराया नहीं जा सकता, जो दिनों दिन सवाया होता है। दीक्षा में प्राप्त नाम का प्रेम सवाया बढ़ता है, इसमें से कुछ घटता नहीं। हम तो राम नाम की नाव में बैठ कर गुरु के संचालन में भव सागर तर आये। हमने जीवन भर अपने प्रभु के गुण खूब प्रसन्न होकर गाये, उसी की नाव बनाकर संसार तैर आये।

६. मनरे परसिहरि के चरण।..........

परिचय—मीरा भगवान् के चरणों की आराधना करने को कहती है।

शब्दार्थ—परसि=स्पर्श कर। सुभग=सुन्दर। कँवल कोमल=कमल से कोमल। त्रिविध=तीन प्रकार के, आध्यात्मिक, दैविक और भौतिक। परसे=छुआ। पदवी=पद, स्थान। धरण=धारण करने वाले। ध्रुव=प्रसिद्ध बालक भक्त, एक ध्रुव नामक तारा, जो अपनी जगह निश्चल रहता है। राखो=रख कर। तरी=मुक्त हो गई। भेंट्यो=नापा, माप लिया। नखसिखां=नखों के अग्र भाग। सिरि=श्री, शोभा। धरण=धर्ता। धरणु=धरनो, गृहिणी, अहल्या। गौतम=एक ऋषि (अहल्या के राम चन्द्र जी के द्वारा उद्धार को कथा प्रसिद्ध है)। कालि नाग=कालिय नामक यमुना में भयंकर सर्प, जिसके भगवान् कृष्ण ने नकेल डाली थी। नाथ्यो=नकेल डालना। करण=करने वाले। मदहरण=गर्व हरने वाले। अगम=दुर्गम, अज्ञेय। तारण तरण=पार उतारने को नौका। (तारण=तारना, तरण=तरणि, नौका)।

अर्थ—रे मन! हरि (कृष्ण) के चरणों का स्पर्श कर, जो कमल के समान सुन्दर और शीतल हैं और त्रिताप को हरने वाले हैं। उन

चरणों का स्पर्श करके प्रल्हाद ने इन्द्र का पद (स्वर्ग का राज्य) पाया। उन्हीं चरणों ने भक्त राज बालक ध्रुव को अपनी शरण में लेकर अटल कर दिया (ध्रुव तारा अटल रहता है अपने स्थान पर और ध्रुव भक्त को भगवद् भक्ति ने अपने पथ में अचल कर दिया था)। नख शिखों की सुन्दर शोभा को धारण करने वाले इन्हीं चरणों ने समस्त ब्रह्माण्ड (सृष्टि मण्डल) को नाप लिया था (वामनावतार में भगवान् के तीन कदमों ने समस्त सृष्टि को नापा था)। प्रभु के इन्हीं चरणों का स्पर्श करके गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या तर गई थी (शाप मुक्त हो गई थी), ग्वालों को लीला दिखाने के लिए इन चरणों ने ही यमुना में विद्यमान् कालिया नाग को नाथा था [कृष्ण ने फण पर पाद प्रहार करके उसे बेहोश किया था और फिर उसके नकेल डाली थी]। इन्हीं चरणों के बल से कृष्ण ने इन्द्र के अभिमान को नष्ट करने वाले गोवर्द्धन पर्वत को धारण किया था। मीरा कहती है, हे गिरिवर लाल ! हे अज्ञेय और भक्तों को तारने वाले भगवान् ! मीरा तुम्हारी दासी है।

संसार की मोह माया को दूर भगाने के लिए भगवान् के चरणों के सिवा और कोई साधन नहीं। इन्हीं का आश्रय लेकर बड़े २ भक्त अमर हो गये, तर गये और उन्होंने अपना जीवन सफल किया।

७. भजमन चरण कमल अविनासी।.........

परिचय--इस पद मे मीरा ज्ञान मार्गिणी होकर जगत् की नश्वरता का वर्णन करती है।

शब्दार्थ--अविनासी=अविनाशी, सदैव रहने वाले। जेताई=जितना भी। दीसे=दीखता है। धरण गगन बिच= जमीन और आसमान के बीच में। तेताई=उतना ही। कहा= क्या। करवत=करते हुए। कासी=काशी, नगरी। कहा लिये=

क्या लिए । देही=देह, शरीर । जासी=जायगी । यो=यह । चहर= एक तमाशा । पड़्यां=पड़ने पर। मिल जासी=मिल जायेगा ।

अर्थ—हे मन ! तू अविनाशी [ईश्वर] के चरण कमलों का भजन कर । इस भूमि और आकाश के मध्य में जो कुछ दीखता है वह सब नष्ट हो जायगा । तीर्थ व्रत करने से क्या होगा, काशी करने से भी क्या होगा [काशी में निवास से भी क्या होगा] ? इस शरीर का क्या गर्व करना, यह तो मट्टी मे मिल जायगा । यह संसार तो शोरगुल की बाजी है जो सायंकाल उठ जायगी ।

यह संसार अनित्य है, इसमें जो कुछ दिखाई देता है, वह सब नष्ट होने वाला है । तीर्थ व्रत काशी वास आदि साधन फिजूल हैं । इसलिए हे मन ! तू राम के चरणों को भज ।

८. लागी मोरी राम खुमारी हो ।·········

परिचय—कबीर के समान मीरा ने भी इस पद में अपनी एक आध्यात्मिक आनन्दानुभूति का वर्णन किया है, वर्षा के बहाने से या रूपक से । वर्षा से अभिप्राय आनन्द वर्षा से है और बादल ईश्वर समझिये ।

शब्दार्थ—खुमारी=मस्ती, नशा । मेहड़ा=वर्षा । सारी= सारा । चहुँदिस=चारों ओर । दामिणी-दामिनी, विद्युत् । भरम-भ्रम । किवारी-किवाड़, आवरण । सूं-से । अगम- दुर्गम । इमरत-अमृत ।

अर्थ—मुझे राम नाम का नशा चढ गया रे लोगो ! रिमझिम वर्षा बरस रही है । सारा शरीर भीग रहा है । चारों ओर बिजली चमक रही है और मेघ बहुत अधिक शब्द कर रहा है । हमें तो इस सारे रहस्य का सद्गुरु ने भेद बता दिया है और हमारे भ्रम [अज्ञान] के किवाड खोल दिये हैं [अज्ञान दूर कर दिया है] । अब हमें प्रत्येक शरीर में सबसे [शरीर के अवयवों से] पृथक् रूप में आत्मा दिखाई दे रही

है [स्पष्ट दर्शन हो रहे हैं]। दो पद [कदम] ज्ञान के रखे और हम तो अगम अटारी [जहां कोई मुश्किल से जा पाता है] पर चढ़ गये। मीरा राम की दासी है, उसे यह अमृत बलिहारी हो।

इस पद में मीरा ने वर्षा के वर्णन द्वारा अपनी आन्तरिक अनुभूति का वर्णन किया है। यहां बादल भगवान है, जो अपने प्रकाश [बिजली] और शब्द रूप से प्रकट है और आनन्दामृत रूपी जल बरसा रहा है। मीरा का समस्त शरीर उस आनन्द में भीग रहा है। [आनन्द का प्रवाह बह रहा है]। सद्गुरु के ज्ञान देने पर सब प्राणियों में आत्मा के स्पष्ट दर्शन होते हैं। मीरा कहती है, ज्ञान के दो कदम रख कर मैं भगवान के पास पहुँच गई, जहां जाना अत्यन्त कठिन है। आनन्दामृत का यह आस्वाद मीरा को बलिहारि हो।

६. देखत राम हंसे सुदामा कूं········।

परिचय—इस पद में मीरा ने सुदामा और कृष्ण की प्रसिद्ध मित्रता का वर्णन किया है। दोनों की भेंट होती है।

कठिन शब्द—देखत-देखते ही। कूं-को। फाटी-फटी हुई। फूलड़ियां-धज्जियां, फटे वस्त्र। उजाणे-नंगे। चलते-चलते हुए। मीत-दोस्त, मित्र। कहा-क्या। पठाई-भेजी। तान्दुल-तण्डुल, चावल। पसे-मुट्ठी भर, उंजला। कसे-कसे या लगे हुए। सरणे-शरण में।

अर्थ—कृष्ण (राम) सुदामा को देखते ही हंसे, खूब हंसे। फटे हुए चिथड़े, नंगे पांव जो चलते २ घिस गये हैं। [भगवान को बहुत दुख हुआ कि मेरा] बालकपन का मित्र सुदामा अब मेरे से दूर क्यों रहता है। [उन्होंने पूछा] भावज [सुदामा की पत्नी] ने क्या भेजा है? [जब देखा] तीन मुट्ठी चावल मिले। [प्रभु के पास से जब सुदामा घर आया, तो अपनी टूटी टपरिया के स्थान में, सोने जवाहरात के महल देख कर चक्कर में पड़ कर कहता है] हे ईश्वर! मेरी वह

टूटी हुई टपरी कहां गई, ये हीरे मोती कैसे हैं? मीरा कहती है प्रभु! मेरे तो तुम ही अविनाशी स्वामी हो, मैं तो तुम्हारी ही शरण में रहती हूँ।

सुदामा जब फटे हाल भगवान के पास पहुँचा, तो भगवान उसकी दशा [मन की] देख कर हंसे। उन्हें दु:ख भी हुआ कि उनका बचपन का मित्र क्यूं विपत्ति में क्यों रहता है। भगवान ने उससे थोड़े से तन्दुल लेकर ही उसे मणि-माणिक्य दे दिये। मीरा ऐसे ही भक्त-वत्सल भगवानकी दासी है।

१०. तुम सुनो दयाल म्हांरी।·········

परिचय—इस पद में मीरा जगत की अनित्यता का वर्णन करती हुई भगवान से उद्धार करने की प्रार्थना करती है।

शब्दार्थ—म्हांरी-हमारी। काढ़ो-निकालो। थारी-तुम्हारी। यो-यह। गरजी-स्वार्थी।

अर्थ—हे दयालु प्रभु! मेरी प्रार्थना सुनो। मैं तो संसार सागर में बही जाती हूँ, निकालो या न निकालो, तुम्हारी मर्जी है। इस संसार मे कोई सगा [सम्बन्धी] नहीं, सच्चे सम्बन्धी श्री रामजी [भगवान] ही हैं। माता, पिता, भाई, बन्धु, कुटुम्ब सब अपने २ स्वार्थ के लागू हैं। हे मेरे प्रभु! मेरी विनति सुन लो, चरणों में स्थान दो तो आपकी मर्जी है।

मीरा अपनी ओर से पूर्ण आत्म-समर्पण कर चुकी है, अब भगवान उसको अपनाये या न अपनायें, यह उनकी मर्जी है। मीरा अपना कर्तव्य कर चुकी है, पश्चात की भगवान जानें, उसे चिन्ता नहीं।

११. कहा भयो है भगवाँ·········की फांसी॥

परिचय—इसमें मीरा ने कोरे बाहरी आडम्बर को वृथा कह कर भगवान से उद्धार की प्रार्थना की है।

शब्दार्थ—कहा-क्या। भगवाँ=गेरुआ वस्त्र। तज-छोड़कर। जुगत-युक्ति, योग की विधि। जाणी-जानी। उलटि-उलटकर, दोबारा। जासी-जायगा।

अर्थ—भगवां वस्त्र पहिन लिए और घर छोड़कर सन्यासी हो गये, तो क्या हुआ? [व्यर्थ है।] योगी होकर तुमने योग की युक्ति [प्रकार, विधि] नहीं समझी, दुबारा फिर तुम लौटकर जन्म में पड़ोगे। मीरा कहती है हे प्रभु गिरधर नागर [चतुर]! श्याम! मैं तुम्हारी दासी एक अबला हाथ जोड़कर अर्ज कर रही हूँ, मेरे जन्म का बन्धन काट दो।

आडम्बर व्यर्थ है, जब तक वास्तविक ज्ञान न हो। योगी होते हुए, यदि योग-विधि नहीं समझी, तो सब की तरह जन्म-बन्धन में पड़ना ही है। मीरा तो भक्त है, भगवान से प्रार्थना करती है, कि भगवान मेरे जन्म बन्धन काटो। मैं तो तुम्हारी दासी हूँ, न योगी हूँ, न साधु हूँ।

२२. जागो बंशी वारे ललना.........

परिचय—इस पद में मीरा अपनी भक्ति की कल्पना के वेग से अपने को भगवान् की वास्तविक दासी समझ, उनको सोते हुए सवेरे उठा रही है।

शब्दार्थ—बन्सी वारे=बंसरी वाले। ललना=लाल, प्रिय। ठाढ़े=खड़े हैं। कुलाहल=शोर। गउवन=गौओं का। आयाँ=आए हुओं। नागर=चतुर।

अर्थ—हे बंसरी वाले श्याम! मेरे प्यारे! जागो! रात्री बीत गई, सवेरा होगया है और घर घर के किवाड़ खुल गये हैं (सब जाग गये हैं)। दही बिलोती हुई गोपियों के हाथों के कंगनों की झनकार सुनाई पड़ रही है। हे लाल! उठो, भोर होगई है, और द्वार पर खड़े देवता, मनुष्य, ग्वाल बाल आदि सब लोग जय जय बोलते

हुए शोर कर रहे हैं। हे माखन और रोटी लिए हुये और गायों की रक्षा करने वाले, मीरा के प्रभु चतुर गिरधर लाल! तुम शरणागतों को तारने वाले हो।

मीरा अपनी भक्ति कल्पना में भगवान का बचपन में, सोते हुए का दर्शन करती है और स्वयं को उनकी दासी के रूप में जानकर उन्हें जगा रही है कि उठो सवेरा हो गया है, सब जाग गये, जगत का व्यापार प्रारम्भ हो गया। अन्त में मीरा की भक्त विनय है।

१३ जब तैं मोहिं नन्द नन्दन दृष्टि पर्‌यो माइ।.........

परिचय—मीरा अपनी प्रेम दशा का वर्णन करते हुए अपने प्रिय के सुन्दर नटवर रूप का वर्णन करती है।

शब्दार्थ—तैं-से। मोहिं=मुझे। पर्‌यौ=पड़ा। कहा=क्या। बरनिहुं=वर्णन। झलकनि=झलक। सरवर=सरोवर। तजि=छोड़कर। मकर=मच्छ। भ्रुटि=भृकुटी, भौंहें। चपल=चञ्चल। टौना=जादू। छौना=छोटा बच्चा। धरत=धरे हुए। अधर=होंठ। दसन=दर्शन, दाँत। दमक=चमक। दुति=कान्ति। चपलासी=बिजली जैसी। चारु=सुन्दर। चिबुक=ठोड़ी। ग्रीव=गले में। नटवर=नाचने वाला। भेस=वेश। विसेखा=विशेष, देखा। क्षुद्रघण्टिका=मेखला, तगड़ी। अनूप=अनुपम। नूपुर=बिछुआ। बल जाईं=बलिहारी होती है।

अर्थ—जब से माई! मुझे नन्द लाल दिखाई पड़े हैं (मेरा बुरा हाल है)। क्या वर्णन करूं? उनकी सुन्दरता का, कहते नहीं बनती। कपोलों पर कानों के कुण्डलों की परछाईं पड़ रही है, मानो मछली सरोवर छोड़कर मच्छ से मिलने आई हो (टेढ़े मकरा कार कुण्डलों की परछाईं मछली और कुण्डल मच्छ हैं)। तिरछी भौंहें, चचल नयन और चितवन में जादू है, जिन्हें देखकर खंजन, भ्रमर और मृग अपने अपने बच्चों को भी भूल गये, आंखों की उपमा इन तीनों से दी जाती

है। ये भी कृष्ण की आंखों के सौन्दर्य को देख कर मोह गये और अपने बच्चों की भी सुधि नहीं रही) । मधुर सुन्दर अधर पर मंद मंद हंसी विराज रही है। दान्तों की स्वच्छता की चमक बिजली के समान चमक रही है। सुन्दर ठोढ़ी, कीरकी (तोते) सी नासिका और गले में तीन सुन्दर रेखाएं (लाइनें) हैं। प्रभु नटवर वेश बनाये हुए हैं, उनका यह रूप संसार में विशेष है, उन्हों ने अनुपम मेखला पहिनी हुई है, उनके नूपुरों की शोभा हो रही है। मीरा कहती है मैं प्रभु नट-वर नागर के अंग २ पर न्यौछावर होती हूँ।

मीरा ने इस पद में कृष्ण के नटवर सुन्दर रूप का वर्णन किया है। उनके अंगों के सौन्दर्य-वर्णन के लिए सुन्दर उपमाएं दी हैं और ध्यान के लिए सुन्दर चित्र खींचा है।

१४. जब से मोंहि नन्द नन्दन दृष्टि परे माई।..............

परिचय—इस पद में मीराअपनी प्रेम दशा कावर्णन करती है कि यमुना तटपर कृष्ण के दर्शनों के बाद उसकी क्या हालत हुई !

शब्दार्थ—मोंहि=मुझे। भवन=घर। सुहाई=अच्छा लगता है। काज=काम। जावं=जाऊं। चन्द्रिका=मोर पुच्छ के चन्दोवे। किरीट=मुकुट। छाई=छाया।

अर्थ—माई मैंने तो जब से नन्द नन्दन को देखा है (सुधि बुधि खो गई)। यमुना पर जल भरने गई थी कि मोहन पर दृष्टि पड़ गई गागर भर घर चली तो घर अच्छा नहीं लगने लगा। घर का काम काज सब भूल गया, होश हवाश खोदिये। सासू, ननन्द लड़ने लगीं। कहां जाऊं ?(स्मृति होती है) उनके सिर पर मोर पुच्छकी चन्द्रिकाओं का मुकुट शोभा पा रहा था। मस्तक में लगा हुआ केशरी तिलक इतना सुन्दर था, जिस पर तीनों लोक (स्वर्ग, पताल, लोक) मोहित हो रहे थे। कानों के कुण्डलों को गालों पर परछाई पड़ रही थी, मानो सरोवर को छोड़ कर मछली मकर को मिलने आई हो।

कटि में कछनी और पैरों में नूपुर शोभा पा रहे थे। मीरा कहती है मैं कृष्ण के अंग अंग पर बलि जाती हूँ।

मीरा ने पहिले अपनी प्रेम-दशा का वर्णन किया है। पश्चात उसे प्रिय के रूप की स्मृति होती है। वह उसका चित्र खींचती है। उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं द्वारा उनके अंगों के सौन्दर्य का वर्णन करती है। मछली की उत्प्रेक्षा से कृष्ण की गालों की स्वच्छता, चिकनाई आदि व्यक्त होती है। परछांई निर्मल स्वच्छ वस्तु में ही पड़ती है। पद से मीरा का भगवत् प्रेम बरसता है।

रसखान

१. कंचन के············द्वारेमों।

परिचय—इस पद में रस खान कृष्ण के राजैश्वर्य का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—कञ्चन=सोना। मन्दिरनि=भवनों पर। डीठि—दृष्टि। उजारे—प्रकाश। सों=से। बखानों–वर्णन करूं। प्रतिहारन-पहरे दार। भीर–जमात, भीड़। भूप–राजा। टरत न–नहीं टलते।

अर्थ—द्वारिका पुरी में सोने के बने हुए भवनों पर दृष्टि नहीं ठहरती (चमक के मारे)। वहां लाल और माणक्यों (हीरे जवाहरात) के प्रकाश से सदा दीवाली सी बनी रहती है। और ऐश्वर्य का मैं कहां तक वर्णन करूं! पहरे दारों के झुण्ड के झुण्ड हटाते हैं पर राजा लोग द्वार पर खड़े रहते हैं (टलते नहीं)।

रसखान ने इस पद में द्वारिकापुरी के भवनों के और कृष्ण के राजसी वैभव तथा प्रताप का वर्णन किया है।

२. गंगा जी में न्हाई··· ·········वारे सों।

परिचय—इस पद में रसखान बिना सच्ची भक्ति के गंगा स्नान और जप तप आदि करने की व्यर्थता बताते हैं।

शब्दार्थ—न्हाइ-न्हाकर। मुक्ताहल—मोतियों की लड़ियां। बेर-बार, देर। गाइ=गाकर। कीजत-करते हो। सकारे सो—सवेरे से। कहा-क्या। कीन्हों-किया। जोपै—यदि।

अर्थ—गंगा जी में स्नान करके,मोतियों की मालाएं दान में लुटा कर और बीसों बार वेदोच्चारण करके यदि प्रभु का ध्यान किया तो क्या हुआ? सवेरे से ध्यान कररहे हो। रसखान कहते हैं, ऐसा करने से क्या होगा यदि चित्त देकर (मन से) पीताम्बर धारी कृष्ण से प्रेम नहीं किया तो कुछ नहीं होगा।

अर्थात, यदि मन में कृष्ण के चरणों में सत्य अनुराग नहीं है तो गंगा स्नान, दान पुण्य या बीसों बार वेद गान करने क्या होगा? कुछ नहीं।

३. सुनिये सबकी..........चित गागर में।

परिचय— इस पद में रसखान बताते हैं कि मनुष्य को संसार में कैसे जीवन बिताना चाहिये, जिससे कल्याण हो।

शब्दार्थ—कछू-कुछ। इमि—इस प्रकार। या—ईस। षागर-सागर। नेम-नित्य नियम। जिनतैं-जिनके द्वारा। दुर भाव-दुर्भाव, बुराभाव। उजागर-जागरण, प्रकाश। गुविन्दहि-गोविंद को। भजिए-भजन करो, ध्यान करो। जिमि-जैसे। नागरि-नागरी, चतुर स्त्री।

अर्थ—संसार सागर में इस प्रकार रहना चाहिए कि बातो सब की सुने पर अपने मुख से कुछ न कहे (किसी को अच्छी बुरी कुछ न कहे, सुनले)। व्रत नित्य-नियम आदि कर्तव्य सब सत्यता से (मन से) करे, जिस से इनके सहारे से भव सागर से पार जाया जा सके। सब से अच्छे भाव से (प्रेम से) मिलना चाहिए और संतों की संगति के प्रकाश में रहना चाहिए (ज्ञान देने वाले सन्तों की संगति में रहना चाहिए)। रसखान कहते हैं, गोविंद के भजन में

चित्त ऐसे रहना चाहिए जैसे सिर पर घड़ा रखकर चलती हुई नागर (चतुर) स्त्री का चित्त घड़े में ही रहता है।

संसार में किसी को खरी खोटी नहीं कहे, सत्यता से धर्म और कर्तव्य का पालन करे जिससे उद्धार हो। सबसे प्रेम करते हुए सत्संगति का लाभ ले और भगवान में ऐसे चित्त लगाए रहे जैसे सिर पर पानीका घड़ा रखकर चलती हुई स्त्री का गिरने के भय से घड़े में ध्यान रहता है अर्थात एक क्षण को भी ध्यान नहीं बंटना चाहिए।

४. इक ओर............भेख बिराजतरी।

परिचय—रसखान संगम-स्नान करके निकले कृष्ण के विचित्र रूप का वर्णन करते हैं, जिसमें कृष्ण और शिव दोनों के चिन्ह दिखाई दे रहे है।

शब्दार्थ-किरीट-मुकुट। गन-समूह। गाजत-गर्जते हैं। मधुरी-मधुर। धुनि-ध्वनि। पै-पर। उत-उधर। डामरु-शिव का डमरू और एक राग का नाम। पितम्बर—पीत अम्बर, पीलावस्त्र। बगंभर-बाघ अम्बर, सिंह चर्म का वस्त्र। छाजत-छा रहा है, शोभित है। लै-लेकर। बुड़की—डुबकी। निकसे-निकले हुए। भेख—वेश, रूप।

अर्थ—एक ओर (कृष्ण का) मुकुट शोभायमान है और दूसरी ओर सर्पों (शिव के ऊपर) के समूह फुङ्कार रहे हैं। एक ओर होठों पर मुरली है और दूसरी ओर डमरू बज रहा है। एक के कंधे पर पीला पटका शोभित है और दूसरे के कंधे पर सिंह चर्म है। रसखान कहते हैं कि शिव और कृष्ण के इस रूप के संगम में डुबकी लगा कर देखो तो इस विचित्र वेष में निकलोगे।

विशेष—यमुना गंगा के संगम में स्नान करके कृष्ण का ऐसा विचित्र रूप बना हुआ है कि वे एक ओर कृष्ण रूप और दूसरी ओर शिव रूप दीखते हैं। यह अर्थ भी इस का हो सकता है। अभिप्राय शिव और कृष्ण में अभेद दिखाने से है।

५. बैन वही..............रस खानी ॥

परिचय—इस पद में रसखान बताते हैं कि मनुष्य की इन्द्रियाँ और शरीर तभी सार्थक हैं जब वे भगवान् के अर्पण हों।

शब्दार्थ—बैन=वचन, जिह्वा। गाई=गाये। औ=और। सानी=सने हुए, रचे हुए। गात=शरीर। परे=पड़े। अनु जानी=अनु गामी, पीछे चलने वाले। मन मानी=मन की चाही बात। रस खानि=रस की (आनन्द की) खान, आनन्द का घर। जु=जो। रस खानि=कृष्ण या रस खान का प्रिय।

अर्थ—वचन वे ही हैं जो भगवान का गुण गायें और कान वे ही हैं जो ऐसे वचनों में सने हुए हों (जिह्वा और कान तभी सार्थक हैं जब वे भगवान् के गुण का गान और श्रवण करें)। हाथ वे ही हैं जो उनके शरीर पर लगें (सेवा में रहे) और पांव वे ही हैं जो उनके अनुयायी हों। उनके पीछे पीछे चलें। जान वही है जो प्राण भूत प्रिय के साथ रहे, और स्वाभिमान (या सम्मान) वही है जो उनकी मन चाही बात करे। इसी प्रकार रस खान कहते हैं रस की (आनन्द) की खान (घर) वही है जो उसके रस (आनन्द कन्द के) रस की (प्रेम की) खान हो। जो रस खान हों,वह तो वही सुख सागर भगवान हैं और नहीं।

भाव यह है कि इन्द्रियाँ तभी सार्थक हैं जब की वे प्रिय की (भगवान् की) सेवा में लगी हों, प्राण भी वेही सार्थक हैं जो उनके बिना न रह सकें। सम्मान यही है कि भगवान् की इच्छानुसार आचरण करो। इसी प्रकार रस खान भी तभी सार्थक है यदि उसी (प्रिय) के रस (सुख-प्रेम) की खान हो, नहीं तो वस्तुतः वही रस खान (कृष्ण) ही आनन्द की खान है।

६. यह देख धतूरे..............आवत हैं।

परिचय—इस पद में रस खान ने शंकर के अवधूत रूप का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—पात=पत्ते। अटकी=उलझी हुई। फनी=फणी, सर्प। फहरावत हैं=फहर रहे हैं, हिल रहे हैं। जेइ=जिसे। चितवें=देखते हैं। चितदै=ध्यान से। तिनके=उनके। दुंद=द्वन्द गज=हस्ती। गाल बजावत=वृथा शोर मचाते हुए।

अर्थ-देखो, धतूरे के पत्तोंको चबाते हुए शिर शरीर पर धूल(भस्म) मले हुए हैं। चारों ओर बालों की उलझी हुई जटाएं लटक रही हैं और शुभ शीश पर सर्प खेल रहें हैं (हिल रहे हैं)। रसखान कहते हैं कि ये जिधर भी चलते हुए ध्यान से देखते हैं उन्हीं के समस्त दुःख द्वन्द्व नष्ट कर देते हैं। शरीर पर गजचर्म और गले में कपालों (मुण्डों) की माला है और वृथा शोर मचाते हुए (भगवान् शंकर) आरहे हैं।

भगवान् शंकर के अवधूत रूप का वर्णन है, जब वे मुण्ड माला, गजचर्म पहिने, धतूरे के पत्ते चबाते हुए, अंगों में भस्म लगाये वृथा ही हल्ला मचाते हुए आरहे हैं। रास्ते में वे अपनी दृष्टि से लोगों के दुख दूर करते आते हैं। रसखान का अभिप्राय है-मेरे भी दुख दूर करो।

७. द्रोपदी औ..........राखन हारे ॥

परिचय—इस पद में रसखान संसार से भय भीत अपने मन को धैर्य देते हैं कि चिन्ता न कर भगवान् का भजन कर।

शब्दार्थ—गनिका=गणिका भगवान् की प्रसिद्ध भक्त। गीध=जटायु। अजामिल=प्रसिद्ध पापी जिसका भगवान् ने उद्धार किया। निहारो=देखो। गेहिनी=गृहिणी, पत्नी। करि है=करेगा। रविनन्द=यमराज। संक=शंका भय।

अर्थ—द्रोपदी, गणिका अजामिल, हाथी और गीध (जटायु) इन्होंने जो कुछ अपने जीवन में किया उसको ओर भगवान ने ध्यान

नहीं दिया, उनके पाप कर्मों की ओर ध्यान ही नहीं दिया और उन्हें तार दिया)। गौतम की पत्नी अहल्या कैसे तर गई (उसकाभी क्षण में उद्धार हो गया) और भगवान् प्रह्लाद का भारी दुःख कैसे (जरासी देर में) दूर कर दिया। सो, रसखान! तुम क्यों चिन्ता करते हो (डरते हो) बेचारा यमराज क्या करेगा? जो माखन खाने वाला (कृष्ण) है वही रक्षा करने वाला है।

रसखान अपने मन को समझाते हैं कि भगवान् परम दयालु हैं। वे पापियो के पाप को नहीं देखते, उनका उद्धार कर देते हैं। इस लिए चिन्ता न कर, कृष्ण रक्षा करेंगे।

८. मानुष हौं तो............कदम्ब कीडारन।

परिचय—इस पद में रसखान ने अपनी एक मात्र इच्छा को प्रकट किया है कि उनका फिर जन्म वृन्दावन में हो।

शब्दार्थ—मानुष=मनुष्य। ग्वारन=ग्वालों। कहा=क्या। चरौं=चरूं। मझारन=मध्य में। पाहन=पत्थर। गिरि=पर्वत, गोवर्द्धन पर्वत। पुरन्दर=इंद्र। कारन=कारण से। खग-पक्षी। बसेरो-निवास। डारन-डालियों।

अर्थ—(रसखान अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं कि) यदि अगले जन्म में भी मुझे मनुष्य शरीर मिले तो मैं फिर वही (भगवान् का भक्त) रसखान बनूं और गोकुल गांव के ग्वालों के बीच में रहूँ। यदि पशु जन्म मिले तो मेरा कुछ वश नहीं, पर उस समय भी मैं नंद बाबा की गायों के बीच में चरूं (घास खाऊं)। यदि मैं पत्थर बनूं तो उसी पर्वत (गोवर्द्धन) का पत्थर बनूं जो भगवान् ने इन्द्र के कारण (उसके कोप से गांव वालों की रक्षा करने के लिए) अपने हाथ पर छत्र की तरह धारण किया था। और यदि मैं (रसखान) पक्षी बनूं, तो भी मैं नित्य ही यमुना के तट पर खड़े वृक्षों की डालियों में ही बसेरा (निवास) किया करूं।

रसखान अपने हृदय की इच्छा व्यक्त करते हैं कि हे भगवान् ! यदि मेरा पुनः जन्म हो तो चाहे जिस प्रकार का भी शरीर मिले ऐसी कृपा करना कि मेरा वृन्दावन में निवास हो। इससे रसखान की अत्यन्त गहरी भक्ति प्रकट होती है।

९. या लकुटी अरु·········"ऊपर वारों॥

परिचय—इस पद में रसखान ने कृष्ण के गांव और वन आदि के प्रति अपनी अगाध भक्ति दिखाई है—उन्हें उनके सामने त्रिलोक की सम्पत्ति भी व्यर्थ नजर आती है।

शब्दार्थ—या-इस। लकुटी-लकड़ी, लाठी। कामरिया-कम्बली कामरी। तिहूँ-तीनों। पुरको-लोकोंका। तजिडारों-छोड़ दूं, फेंकदूं। कोटिक कहू-करोड़ों। कलधौत-कल धौत, सुवर्ण। धाम-महल। करील-एक कांटेदार वृक्ष। कुंजन-कुंजों। वारौं-वारदूं।

अर्थ—इस लाठी और कम्बली के सामने मैं तीनों लोकों के राज्य पर भी ठोकर मार दूं। आठों सिद्धियों और नवों निधियों (ऋद्धियों) को मैं नन्दकी गायों को चराता हुआ याद भी न करूं। रसखान तरस कर कहते हैं कि कब मैं अपनी इन आँखों से ब्रज भूमि के वन, बाग, और तालाबआदि को देखूंगा। वे कहते हैं ब्रजभूमि की करील की कुंजों पर मैं करोड़ों सुवर्ण के महल वार दूं!

भाव यह है कि रसखान को ब्रज भूमि की वस्तुओं, गवओं हांकने की लाठी, ग्वालों की कमली और वहां की कांटेदार कुंजों के सामने त्रिलोक की सम्पति भी तुच्छ नजर आती है। इससे कृष्ण के चरणों में रसखान की गहरी भक्ति व्यक्त होती है।

१०. धूर भरे अति············माखन रोटी।

परिचय—इस पद में रसखान कृष्ण की शैशव क्रीड़ा की सुन्दरता का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—धूर=धूलि। श्याम जू=कृष्ण जी। तैसो=वैसी। खाते=खाते हुए। अंगना=आंगन में। पग=पांव। पैंजनी=पांव का घूँघरूदार भूषण। बाजति=बजती हैं। पीरी=पीली। कछौटी=छोटे बच्चे की कछनी, जांघिया। या=इस। विलोकत=देखते हुए। वारत=वारता है। कला निधि=चन्द्रमा। काम=काम देव। कहिये=कहेजायें।

अर्थ—धूल से लथपथ श्याम शोभित हो रहे हैं और वैसी ही सुन्दर सिर में चोटी गुंथी हुई है! आंगन में खेलते और खाते फिरते हैं, पीली कछनी बांधी हुई और पैरों में पैंजनि भी बज रही हैं। इस शोभा को देखकर रस खान इस रूप पर करोड़ों काम देवों और चन्द्रमाओं को वारने को तैयार हैं। काग के भाग्य के क्या कहने हैं, जो उनके हाथ से झपट कर माखन और रोटी ले गये।

बाल कृष्ण धूल से भरे, खाते हुए आंगन में खेल रहे हैं। पीली कछनी है, पांवों में पैंजनियां हैं। रसखान इस रूप के सामने करोड़ों काम देव और चन्द्रमाओं के रूप को भी तुच्छ समझते हैं। इतने में ही कौवा कृष्ण के हाथ से रोटी छीन ले जाता है। रसखान उस कौवा के भाग्य की सराहना करते हैं, जिन्हें कृष्ण का उच्छिष्ट (झूठा) भोजन मिला। रसखान की बाल कृष्ण के प्रति अगाध भक्ति व्यंग्य होती है।

११. सेस गनेस..............पै नाच नचावैं।

परिचय—इस पद में रसखान कहते हैं भगवान् भक्त के वश में हो जाते हैं। वे ज्ञानियों और मुनियों को इतना प्यार नहीं करते जितना भक्तों को। भक्ति की महिमा सर्वत्र अधिक है।

शब्दार्थ—सेस=शेष नाग। गनेश-गणेश। महेस=शंभु। दिनेस=सूर्य। सुरेसहु=इन्द्र भी। जाहि=जिसको। अनादि=जिसका आदि न हो। अनन्त=जिस का अन्त न हो। अखंड=

जिसके टुकड़े न हो सकें। अछेद=अछेद्य, जो काटा न जा सके। अभेद=जिसका भेद न हो। सुवेद=वेद आदि। सै=से। सुक=शुकदेव। रटैं=रटते हैं, याद करते हैं। पचि हारे=थक गये। तऊपर=उस पर भी। ताहि=उसी को। अहीर=ग्वाला। छछिया=छाछ डालने की छोटी कटोरी या पात्र।

अर्थ—शेष, गणेश, शंकर, सूर्य और इन्द्र आदि देव गण जिसका निरन्तर गान करते हैं, जिसे वेद अनादि, अनन्त अखंड और पूर्ण बताते हैं और जिसे नारद और शुकदेव जैसे महर्षि भी स्मरण कर करके थक मरे, पर जिसका उन्हें कोई भेद नहीं मिला, उसी आनन्द कन्द श्री कृष्ण को ग्वालों की छोकरियां जरासी छाछ पर नाच नचाती हैं (बाल कृष्ण को छाछ के (मक्खन के भी नहीं) लोभ में गोपियों मन माना नाच नचाती हैं)।

रसखान के इस पद की बहुत प्रशंसा है। जिस भगवान् का बड़े बड़े शंकर इन्द्र जैसे देवता स्मरण करते हैं और भेद नहीं पाते, वेद पुराण जिसको पूर्ण परब्रह्म बताते हैं और जिसका भेद नारद आदि भी नहीं पाते वही परब्रह्म भक्ति के या प्रेम के वश में हो ग्वालिनों के इशारे पर नाचते हैं। यह केवल भक्ति का ही प्रताप है।

१२. गोरज बिराजे············रसखानि री।

परिचय—इस पद में रसखान गउयें चराते हुए कृष्ण के रूप का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—गोरज=गायों से उत्पन्न गोरोचन। लहलही=खिल रही है। तैसी=वैसी। बंक=तिरछी। चितवन=निगाह। कदम=कदम्ब। विटप=वृक्ष। तटिनी=नदी, यमुना। अटा-चबारा। देखु—देख। पहरानि—पहराती। तपन—तपिश, अग्नि। प्रानना=प्राणों को। रिझावै-प्रसन्न करता है।

अर्थ—(एक गोपी दूसरी को भगवान् का रूप वर्णन सुना रही है और कहती है तू भी चबारे पर चढ़ कर देख)। मस्तक में गोरोचन का तिलक है और गले में बन फूलों की माला लहरा रही है, आगे गायें है, पीछे ग्वाल बाल हैं और मीठी २ तानें बजाते हुए गा रहे हैं। जैसी बंसरी की ध्वनि मीठी और सुखकर है वैसी ही मीठी और आनन्द प्रद उनकी बांकी चितवन और मन्द २ हंसी है। कदम्ब के वृक्ष के निकट और नदी (यमुना) के तटपर पीले वस्त्र पहिने खड़े हैं, तू चबारे पर चढ़ कर देख। रस (आनन्द) बरसाता, शरीर की ज्वाला बुझाता और नयन प्राणों को सुख देता हुआ वह रस की खान (कृष्ण) आ रहा है।

एक गोपी दूसरी को बता रही हैं कि अत्यन्त सुन्दर रूप बनाये, ग्वाल और गऊओं को साथ लिये, बंसरी से मधुर तानें निकालता हुआ, रस बरसाता रस की खान कृष्ण आ रहा है। कोठे पर चढ़कर देख, यमुना तट पर कदम्ब के पास पीले वस्त्र पहिने खड़ा है। अब इधर ही आ रहा है।

१३. कानन पै अंगुरी.............जै है नजै है।

परिचय—इस पद में एक गोपी दूसरी को कहती हैं कि कृष्ण और उसकी बंसरी का आकर्षण प्रबल है। मन वश में नहीं रहता। मैं उनकी तान नही सुनूंगी।

शब्दार्थ—कानन पै–कानों पर। अंगुरी—उंगली। रखि हौं–रखलूंगी। सोहनि—सुन्दर या सोहनी एक राग भी है। सों–से। अटा–चबारा। गैहै–गाये। गोधन–एक राग। टेरि–पुकार कर। सिगरे–सारे। काल्हि–कल को। कहौं–कहती हूं। कितनै–कितना ही। समुझै है—समझाए। वा–उस। सम्हारि न जैहि—संभाली नहीं जायगी।

अर्थ—जब कृष्ण की मुरली मन्द मन्द बजेगी और वे दुवारे पर चढ़कर सुन्दर तानों में गोधन राग बजायेंगे तो मैं कानों में अगुंली देलूंगी (जिससे राग सुन कर मोहित न हो जाऊं) मैं पुकार कर सारे ब्रज को कहती हूँ, कल को चाहे कोई कितना ही समझाये, मैं कहती हूँ, हे माई। उस सुन्दर मुख की मधुर मुस्कान संभाली नहीं जायगी, नहीं जायगी (भाव पर जोर देने को दो बार कहा गया है)।

मोहन की मुरली की ध्वनि अत्यन्त आकर्षक है। उसके आकर्षण से बचना कठिन है। ऐसी उनकी मुस्कान है, जिसके वश में हुए बिना नहीं रहा जाता। गोपी कहती हैं। मैं पहिलेही ऐलानिया कहती हूँ कि उस मुसकान के वश में होना ही पड़ेगा।

१४. कौन ठगोरी..............नहीं कीनी।

परिचय—इस पद में रसखान कहते हैं कि कृष्ण की बसरी में पता नहीं ऐसी क्या मोहिनी है जो सुनता है लट्टू हो जाता है।

शब्दार्थ—ठगोरी—ठगविद्या, मोहिनी। आजु—आज। भीनी–भीगी हुई। आपुनी—अपनी। घरी—घड़ी। नवीनी—नवेली। बाल प्रवीनी–नवयुवती। वा—उस। मडल–घेरा। सुकौन–वह कौन। भट्ट—नवयुवती वधू। लट्टू=लट्टू, मोहित।

अर्थ—आज कृष्ण ने रस में भीगी (रसभरी) मुरली बजाकर पता नहीं ऐसा क्या जादू कर दिया कि जिस गोपी ने भी सुनी उसने अपनी लोक लाज छोड़दी। अनेक नवेलियां और बालिकायें क्या कहा जाय, घड़ी घड़ी नन्द के द्वार पर चक्कर काट रही हैं। रसखान कहते हैं कि इस ब्रज मण्डल में ऐसी कौन नव वधू है जो इनकी बंसरी ने लट्टू (मोहित) नहीं करदी हो।

आज कृष्ण की बंसी पता नहीं क्या मोहिनी बरसा गई कि जिसने भी सुना सुधबुध खो बैठा। अनेक नवयुवतियां और नवेलियां नन्द

के द्वार पर घड़ी २ चक्कर काटती हैं। रसखान कहते हैं ब्रज में ऐसी कौन बधू है जो उनकी तान पर मोहित न हुई हो—अर्थात कृष्ण की बंसरी का प्रभाव अपरिहार्य है। रसखान भी उसी बंसरी की माधुरी में (भक्ति में) लट्टू हैं। यहां उनकी एकान्त भक्ति व्यंग्य होती है।

केशव

रामचन्द्रिका

राम लक्ष्मण जानकी सम्वाद

परिचय—केशव ने रामचन्द्रिका नामक अपने काव्य में राम की सारी कथा वर्णित की है। यह प्रबन्ध काव्य ब्रज भाषा में है और इसमें प्राय. सभी छन्दों का प्रयोग हुआ है। अलंकारो की छटा सर्वत्र विद्यमान् है, बल्कि अनेक स्थानों भाव इसी कारण से बुरी तरह दब गया है।

वर्तमान प्रसंग उस समय का है जब कि राम को बनवास की आज्ञा हो चुकी थी, और वे वन जाने की तैयारी कर रहे थे। राम लक्ष्मण सीता में बात चीत होती है।

राम—उठि रामचन्द्र.........? नृपति तात।

परिचय—इन दोनों पदों में राम सीता को पिता की आज्ञा बताते हैं और उसे अयोध्या में रहने या पिता के घर जाने की सलाह देते हैं।

शब्दार्थ-उठि-उठकर। समेता-सहित। जनक तनया-सीता, जानकी। निकेत-भवन। सुनि-सुनो। पठये-भेजे। तात-पिता।

अर्थ—रामचन्द्र तब उठ कर लक्ष्मण के साथ सीता के महल में आये। बोले, हे राज पुत्रि, हे सीते ! एक बात सुनो, हमें पिता राजा ने वन में भेजा है।

पिता को राजा भी बताना उनकी आज्ञा की अनिवार्यता को सूचित करता है कि एक तो पिता दूसरे राजा इस लिए आज्ञा टाली नहीं जा सकती।

तुम जननि सेव.........जल ज नैनि।

शब्दार्थ—सेव-सेवा। कँह्-को। रहहु-रहो। बाम-सुन्दरी। कै-क्या। चन्द्रवदनि-चन्द्रमुखि। गजगमनि-हाथी जैसी मस्त चाल वाली। रुचै-अच्छा लगे। जलज-कमल।

अर्थ—हे सुन्दरी ! तुम यातो माता की सेवा के लिए अयोध्या में ही ठहरो और या पिता के घर आज ही (मेरे होते होते) चली जाओ। हे गज गामिनि चन्द्र मुखि ! मन में जो अच्छा लगे वह करो।

सीता—न हौं। हौं.........युद्ध में संभारिये।

परिचय—सीता कहती है मैं न यहां रहूँ, न वहां (पिता के) जाऊँ, आप के साथ जाऊँगी।

शब्दार्थ—नहौं-नप हां। रहौं-रहू। जू-जी। जांह्-जाऊं। विदेह-जनक। अबै-अभी। जु-जो। सु-वह। सबै-सब। छुधा -भूख। नारिये-नारी हो। त्रास-संताप। संभारिये-ग्रहण करिये, संभालिये।

अर्थ-न तो मैं यहां रहूँगी और न जनकपुरी ही अभी जाऊंगी, आज आपने माताके पास जो बातें कही हैं, वे मैंने सब सुन ली हैं। भूख लगने पर मां अच्छी होती है और विपत्ति में स्त्री, इसी प्रकार प्यास में पानी और युद्ध में वीर ही काम में आता है !

भाव यह है कि भूख में मां, प्यास में पानी, युद्ध में वीर योद्धा और विपत्ति में पत्नी ही काम देती है।

लक्ष्मण—बन मह……… …दुख सरहिं।

परिचय— लक्ष्मण सीता को वनों की दुर्गमता विपत्तियां और भय समझाते हैं।

शब्दार्थ—मंह-में। गह्वर-गुफाएं। मग-मार्ग। अगमहिं-दुर्गम ही। गुनिये-समझिये। हरि-सिंह। अहि-सर्प। निशिचर-राक्षस। चरहि विचरते है। दवदहन-वनाग्नि। दुसह-दुःसह, कठिन। सरहौं-शर से, दाभ से, सरकण्डे से।

अर्थ—वन में बड़े विकट दुःख सुने जाते हैं। मार्ग पर्वतों और उनकी कन्दराओं में से हो कर जाता है, जो बहुत कठिन समझना चाहिये। कहीं सिंह फिरते हैं तो कहीं राक्षस गण, कहीं दावाग्नि लगी हुई है तो कहीं सरकण्डे (घास-फूंस) आदि के विविध भीषण दुःख हैं।

भाव यह है कि लक्ष्मण बनों के विविध दुखों को गिना कर सीता को वन जाने से मना कर रहे हैं, कि वहां ऐसे भयंकर कष्ट हैं, इस लिये आप न जाओ।

सीता—केसो दास नींद भूख…………न सह्यौ परै।

शब्दार्थ—उपहास=निन्दा। त्रास-भय, सन्ताप। मुखहूं-मुखमें। गह्यो। परै-ग्रहण करना पड़े। बहन-बहना। दावा-बन की आग। दहन-जलन। बाड़वा अनल-बाड़वा नल, समुद्र में लगने वाली आग (Sea Fire)। ज्वाल-समूह। दह्यो-जलना। जीरन-जीर्ण, पुराना। जनम जात-जन्म के साथ उत्पन्न हुआ। जुर-ज्वर। कह्यो परै-कहा जाय। सहिहौं-सहूंगी। तपन-जलन। ताप-सन्ताप। पर के-शत्रु के। मोसों-मेरे से।

अर्थ—(सीता जी कहती हैं) नींद, भूख, प्यास, निन्दा या भय की मुझे पर्वाह नहीं, सहलूंगी, यदि भयंकर कष्टों का कारण विष भी मुझे खाना पड़े (मुख मे ग्रहण करना पड़े) तो खालूंगी। आंधी दिन और वनाग्नि की तपिश (गर्मी) भी सह लूंगी और चाहे मुझे बाड़वाग्नि

की शिखा मालाओं में ही क्यों न जलना पड़े (जल जाऊंगी)। जिसकी जलन का कुछ वर्णन नहीं हो सकता ऐसे जन्म से ही लगे हुए जीर्ण ज्वर के असह्य संताप को और शत्रुकृत कष्टोंको भी झेललूंगी, पर श्री राम के विरह का कष्ट मेरे से सहन नहीं होगा।

सीता कहती है राम के साथ में मुझे दुनिया की किसी भी विपत्ति या कष्ट की पर्वाह नहीं है, मैं सब कुछ सहन कर सकती हूँ। यदि मुझे नींद आदि त्यागनी पड़े, विष खाना पड़े आँधी, धूप, दावाग्नि, सहनीपड़े, ज्वर ग्रस्त सेहोना पड़े, तो मेरे लिए सह्य है, पर राम का विरह सह्य नहीं। यहां सीता का पति प्रेम सूचित होता है।

राम लक्ष्मण संवाद

राम—धाम रहो..........सीख सुनो ॥७—८॥

परिचय—राम लक्ष्मण को अयोध्या में ही रुकने के लिए समझा रहे हैं।

शब्दार्थ—धाम-घर । सेव-सेवा। राज-राजा। सुदीरघ-दीर्घ। वहा-क्या। धौं-भला। जिय-हृदय में। गुनों-विचारों। उरगो-दिल में छुपा हुआ।

अर्थ—लक्ष्मण ! तुम घर ही रहो। राजा (पिता) की सेवा करो और सुनों माताओंके भारी दुःख हरो, हृदयमें विचार करो, भरत आकर न जाने क्या करे। यदि वे कोई कष्ट दें तो हृदय में समा लेना शिकायत नहीं करना। बस इस शिक्षा का ध्यान रखो।

राम लक्ष्मण को नीति बता रहें कि उनका घर रहना, अत्यन्त आवश्यक है। भरत का पता नहीं क्या रुख हो। यदि बुरा हो तो तुम समय देख कर चुप रहना।

लक्ष्मण—शासन मेटो.........वननाथ ॥६॥

परिचय—लक्ष्मण कहते हैं, आपकी आज्ञा तो नहीं टाली जा सकती। पर जीवन मेरे अपने हाथ में है।

शब्दार्थ—शासन=आज्ञा। जीवन=प्राण। बूझिये=समझ में आय। नाथ=स्वामी।

अर्थ—आपकी आज्ञा कैसे टाली जासकती है? पर अपना जीवन मेरे अपने हाथ में हैं, (चाहे मैं इसे रखूं चाहे नहीं रखूं)। ऐसी बात कैसे समझ में आय कि सेवक घर रहे और स्वामी बन में हो।

लक्ष्मण कहते हैं कि आप की आज्ञा मानकर मैं आप के साथ तो नहीं जाऊंगा, पर मै जीवित नहीं रहूँगा। क्योंकि स्वामी जब बन में हों तो सेवक घर कैसे ठहर सकता है, यह बात नीति विरुद्ध है।

विभीषण राम को रावण के दोष गिनाता है।

विभीषण—दीन दयाल.........काहे न राखन हारे।

परिचय—विभीषण कहता है, भगवान! मैं रावण के अनेक अत्याचारों से पीड़ित होकर आपकी शरण में आया हूँ। मेरी बांह पकड़ो।

शब्दार्थ—हौ=हूं, मैं। गहो=पकड़ो। गाढ़ो=कस के। अघ=पाप। ओघ=ढेर। बूड़त डूबता। बरही=जोर से। गहि=पकड़ कर। आरतबन्धु=आर्त (पीड़ित) के बन्धु। किन=क्यों नहीं। ठाड्यो=खड़ा। आपु=खुद। सह्यौ=सहा। पै=पर। दुखारे=दुःखित। जाको=जिसको। तेहि=उसी। मेरिय=मेरी ही। अबेर=देर। कहा=क्या। ताहि=उन। कीरीत=यश। बाढ़ा=चढ़ गया है। तो=तुम्हें। काहूं=किसी।

अर्थ—विभीषणकहते हैं, हे प्रभु। आप दीन दयाल कहलाते हैं और मैं अतिदीन दशा में पड़ा हुआ हूं, मुझे प्रबल अवलम्ब दो।

रावण के पाप पुञ्जों के समुद्र में डूब रहा हूँ, मुझे जोर से पकड़कर बाहर निकालो। जैसे हाथी और प्रह्लाद का यश फैला था वैसे ही विभीषण का भी यश बढ़ा दो (अपना कर)। हे आर्तबन्धु! मैं दीन होकर खड़ा पुकार रहा हूँ, मेरी पुकार क्यों नहीं सुनते? केशव कहते हैं, आपने सदा स्वयं ही दुख पाया है, पर अपने सेवकों को दुःखि नहीं देख सके हैं। उनको तो जहां भी, जैसे भी, जिस प्रकार का दुःख पड़ा है, उन्हें वहां वैसे ही संभाला है। मेरी ही बार, क्या कहूँ, देर होरही है, उनके तो (किसी के भी) आपने दोषों का भी विचार नहीं किया, मैं संसार के महा मोह-समुद्र में डूब रहा हूँ, हे रक्षा करने वाले भगवान! मेरी रक्षा क्यों नहीं करते? १८।

रावण का भाई होने के नाते भगवान! मैं भी रावण के पाप का भागी दार हूँ। संसार की माया में ग्रस्त हूं, अत्यंत दीन हूँ और आपकी शरण में हूँ। आप मेरी बार क्यों देर लगाते हैं? औरों के तो दोषों को आपने कभी विचार नहीं किया, उन्हें झट पार लगा दिया। मेरे ही अपराधों की ओर इतना ध्यान क्यों देते हैं?

रावण सीता सम्वाद

प्रसंग— सीता रावण की अशोक वाटिका में विरह तपस्विनी की दशा मे उपस्थित है। रावण उससे मिलने आता है।

१. तहां देव द्वेषी·· ····· अश्रु धारा बहायो।

परिचय— सीता रावण के आगमन की सूचना पाकर बहुत दुखी होती है।

शब्दार्थ—तहां=वहां। देवद्वेषी=देव शत्रु। दसग्रीव=रावण। लैं=लेकर। दुरायो=छिपा लिये। अधो=नीची। कै=करके।

अर्थ—वहां (अशोक वाटिका में) देवताओं के शत्रु रावण का आगमन सुनकर देवी सीता को अत्यन्त दुःख हुआ। उसने समस्त

अंग (शरीर) में छिपा लिये (अंग सुकोड़ लिये) और नीची दृष्टि करके आंखों से अश्रु बहाने लगी।

रावण की कामुक दृष्टि से बचने के लिए सीता ने अपने शरीर को छिपा लिया। नीचा मुख किये राम के ध्यान में मग्न हो गई।

रावण—सुनो देवि सीता······उर्वसीमान पावैं। २-३-४-५

परिचय—इन चार पद्यों में रावण सीता के सामने राम की घोर निन्दा और अपने ऐश्वर्य और बल की प्रशंसा करके सीता से प्रेम प्रार्थना करता है।

शब्दार्थ—मोपै=मेरे ऊपर। दीजै=दीजिये। इतो=इतना। सोच=चिन्ता। काजै=लिए। कीजै=कीजिये। दण्डकारण्य-बनका नाम जहां राम रहते थे। देखै-देखता है। कोऊ-कोई। सोऊ=वही। बावरो=बावला। कुदाता=अपात्र को देने वाला। कुकन्या=बुरी कन्या। चाहै=प्रेम करता है। हितू=मित्र। मुंडीन=सिरमुंडों। को=का। अनाथै=अनाथ ही। अनाथा-नुसारी=अनाथों का अनुगामी। दण्डी=सन्यासी, दण्डधारी। जटी=जटा वाले। मुंडधारी=कपालधारी। दूषैं=दोष दें। उदासीन=अलग, तटस्थ। तोसों=तुम्हारे से। जानै=समझती हो। अदेवी=राक्षसी। नृ=नारी। होऊ=बनो। बानी=सरस्वती। मघोनी=इन्द्राणी। रुद्रानी=पार्वती। सेव=सेवा। किन्नरी=वाद्य विशेष। किन्नरी=गंधर्वांगनाएं। सुकेसी=देवनर्तकी। उर्वसी=उर्वशी, देव नर्तकी।

अर्थ—हे देवि सीते! सुनो और मेरे ऊपर कुछ कृपा दृष्टि करो। राम के लिए इतनी चिन्ता मत करो। वह तो दण्डक बन में रहता है, जहां उसे कोई नहीं देखता, यदि कोई देखे तो वह (राम) बावला होगा (दुःख में पागल होगा)।

वह कृतघ्नी है (तुम्हारी जैसी पति परायणा के लिए कुछ प्रयत्न नही करता), कुदाता है (कंजूस है, तुम्हारे वस्त्र आभूषण आदि सब छीन लिये), बुरी स्त्रियो को चाहता है (शबरी आदि को चाहता है), नंग सिर मुंडे साधु लोग उसके हितू हैं। अनाथों के कहने पर चलने वाला वह राम मैंने अनाथ ही सुना है (अभी तक उसका सहायक कोई नहीं बना)। उसके हृदय में तो (तुम्हारी बजाय) जटाधारी, मुंडधारी साधु सन्त आदि ही अधिकतर रहते हैं। (काव्य कला कुशल आचार्य केशव ने इस पद में श्लेष के द्वारा राम की प्रशंसा रूप अन्य अन्य अर्थ भी सूचित किया है, क्यों कि ईश्वर गुरु आदि की निन्दा करना और सुनना दोनों पाप हैं। अतएव कवि ने राम की प्रशंसा व्यंग्य रखी है। दूसरा अर्थ यह है। राम कृतघ्नी हैं भक्तों कृत (कर्म) को नाश करने वाले हैं। कुदाता, (कु= पृथ्वी का दान करने वाले), कुकन्या (कु=पृथ्वी की कन्या सीता) को चाहते हैं, अनार्थों के कहने में चलने वाला वह (राम) स्वयं भी अनाथ है (ईश्वर का नाथ (स्वामी) कौन हो सकता है ?), हृदय में उसके सदैव दण्डधारी मुण्डधारी सन्यासी रहते हैं (उन्हे उनका ध्यान रहता है)।

जो तुम्हें दोष देते हैं, उन्हीं को तुम अपना हितू मानती हो, जो तुम्हारी ओर से बिल्कुल बेपरवाही है, उसे ही तुम अपना जानती हो। वह तो महा निगुना है, (उसमें कोई गुण नहीं) उसका तो नाम भी नहीं लेना चाहिए। मैं तुम्हारा सदा का दास हूँ, मेरे ऊपर कृपा कीजिए।

राक्षसियों, देवियों और नारियों की रानी बनो (मुझे स्वीकार करके), सरस्वती, इन्द्राणी और शिवानी (पार्वती) तुम्हारी सेवा की होंगी। गन्धर्व पत्नियां किन्नरियां (वाद्य विशेषों) को बजाकर गीत

गायेंगी और उर्वशी और सुकेशी जैसी (स्वर्ग की अप्सराएं) नृत्य करेंगी (तुम्हारे रिझाने के लिए)।

विशेष–नीति कुशल रावण ने बड़ी नीति पूर्वक सीता का मन राम से फेरने की चेष्टा की है। राम को असहाय दीन दुखी सीता की ओर से उदासीन, बुरी संगति वाला, साधुओं का साथी, और महा निर्गुणी बताया है और अपने स्वर्ग से भी बड़े ऐश्वर्य, बल और प्रताप का वर्णन किया है। स्त्री पति के जिन गुणों को चाहती है उन सब का राम में अभाव और अपने में भाव बताया है। जिससे सीता की उधर से विरक्ति हो उसमें अनुरक्ति हो।

६. तृन बिच देइ.....................नासै ॥

परिचय—सीता तिनका मध्यस्थ बनाकर बोलती है और रावण का तिरस्कार करती है।

शब्दार्थ—तृन=तिनका। बिच=मध्य में। देइ=देकर। सीय=सीता। दसमुख=रावण। सठ=शठ, धूर्त। को=कौन। भासै=नही शोभा पा सकते। बपुरा=बेचारा। तु=तू। स्यों=साथ। नासै=नष्ट हो।

अर्थ—(रावण की बात सुनकर) तब सीता तिनके को बीच में डालकर रावण का तिरस्कार करती हुई गम्भीर वाणी से बोली, रे दुष्ट रावण ! क्या तू, क्या तेरी राजधानी, दशरथ पुत्र के विरोधी होने पर तो शिव ब्रह्मा आदि की भी शोभा नहीं हो सकती। तू तो गरीब निशाचर है, तेरा तो क्यों नहीं समूल (कुल सहित) नाश होगा ? (अवश्य होगा)।

पति व्रताओ के नियम के अनुसार सीता ने रावण से साक्षात् बात नहीं की, तिनका बीच मे डाला। पतिव्रता पति का नाम नहीं लेती इसलिए सीता ने भी दशरथ पुत्र कहा।

उसे उसको भविष्य की भी सूचना देती है, जिससे वह डर कर तंग न करे।

सीता हनुमान संवाद

प्रसंग—अशोक वाटिका में सीता रावण के जाने के बाद दुखी हो आत्म हत्या करने के विचार से अशोक वृक्ष से अंगार मांगती है। हनुमान राम की अंगूठी फेंकते हैं और सीता के कहने पर प्रकट होकर अपना परिचय देते हैं और राम की दशा का वर्णन करते हैं।

१. देखि दैखिकै…………हाथ कै लई॥

परिचय—अशोक के लाल पत्तों को अंगार समझकर सीता अशोक से अंगार मांगती है। हनुमान मुद्रिका डाल देते हैं।

शब्दार्थ—देखिकै=देखकर। अशोक=एक वृक्ष। कह्यौ=कहा। देहि=दे। आगि=अग्नि। ह्वै=हों। रह्यौ=रहे। ठौर=स्थान। पाइ=पाकर। पौनपूत=पवन पुत्र। कै=मैं, द्वारा।

अर्थ—राजपुत्री सीता ने अशोक के पत्तों को लाल देखकर कहा है, अशोक! तेरे अंग (पत्ते) आग (जैसे लाल) हो रहे हैं, तूमुझे थोड़ी सी आग दे दे। इतने में ही हनुमान ने जगह पाकर (वृक्ष के पत्तियों आदि में खाली जगह देखकर) नीचे अंगूठी (मुद्रिका) डाल दी और सीता ने इधर उधर देख कर (शंका से) उसे हाथ में उठा लिया।

सीता ने अशोक से भ्रम में अंगार मांगे थे, हनुमान् ने मुद्रिका डालदी। सीता ने सावधानी पूर्वक शंका से इधर-उधर देखकर उसे उठाया। आपत्ति में पड़े मनुष्य को सर्वत्र खतरा नजर आया करता है।

जब लगी…………वानर दीठि २-३-४-५॥

परिचय—इन चार पद्यो मे सीता मुद्रिका उठा कर अनेक दुश्चिन्ताओं में पड़ जाती है। घबराती है और वृक्ष पर बैठे हनुमान को देखती है।

शब्दार्थ—सियरी=ठण्डी । लखि=देखकर । याहि=इसे । मनि=मणि । जटित=जड़ि हुई । मुंदरी=अंगूठी । आहि=है ।

बांचि=पढ़ कर । नांव=नाम । संभ्रम=भ्रम, घबराहट । भाऊ=भाव । आबालते=बालक पन से । धरि=पहिनी ।

सु=यह, सो । उपाउ=उपाय, विधि । केहि=किसने । आनियो=लायी । लहौ=पाऊं । प्रभाऊ=प्रभाव । काहि=किसे ।

चितै=देखती है । सत्रास=भयभीत । अवलोकियो=देखा । तहं=वहां । साख=डाली । नीठि=मुश्किल से । पर्‌यो=पड़ा । दीठि=दृष्टि ।

अर्थ—जब वह (अंगूठी) हाथ मे ठण्डी २ लगी तो सीता घबराई कि हे नाथ । यह आग कैसी है ! (मुन्दरी लाल नग की थी, अग्नि जैसी तो चमकती थी पर ठण्डी थी) तब उसे अच्छी तरह देख कर कहा यह तो मणियों से जड़ी हुई मुद्रिका है ।

तब नाम पढकर देखा तो चित्त और भी घबराहट में पड गया । राम बचपन से इसे अपने हाथ मे पहिने रखते थे ।

सो यह किस प्रकार से उनसे बिछुडी, यहां इसे कौन लाया ? (अनेक प्रकार की दुश्चिन्ताएं सीता के मन मे उठी) किस के द्वारा समाचार पाऊं ? किसे पूछने जाऊं अब ?

सीता भय भीत होकर इधर उधर देखती है । जब आकश की ओर मुंह करती है तो वृक्ष की शाखा पर बड़ी कठिनता से बैठे वानर (हनुमान्)को देखती है ।

भाव यह है कि लाल नग को देख कर सीता ने मुद्रिका को आग समझा था पर जब हाथ में उठाया तो ठण्डी लगने पर चक्कर में पड़ गई और जब उस पर नाम पढ़ा तो दुश्चिन्ताओं से और भी व्याकुल हो गई । उसके हृदय में तरह २ की आशंकाएं उठने लगीं, यह तो राम के पास थी, यहां कौन लाया, कैसे पता लगे आदि । फिर घबराकर

भय भीत सी इधर उधर देखती है तो वृक्ष की डाल पर बैठे हनुमान जी दिखाई देते हैं।

सीता—तब कह्यो.........बात बनाइ। ६-७-८।

परिचय—इन पदों में सीता कपि में सन्देह करके उससे परिचय पूछती है और शाप का भय दिखाती है। हनुमान जी नीचे आते हैं।

शब्दार्थ--को=कौन। आहि=हो। मो=मेरे। चहि=इच्छा करके। कै=क्या। पक्ष-पच्छ=पक्षापक्ष, शत्रुपक्ष। विरूप=वेश बदले। कहि=कहो। न तु=नहीं तो। वेगि=शीघ्र। देहौं=दूंगी। डरि=डारकर। सन्देस=राम का सन्देश। चाइ=विचार कर।

अर्थ--सीता ने तब पूछा, तू कौन है। देवता या राक्षस, जो मेरे शरीर की कामना करके आया है? क्या तू शत्रु पक्ष का रूप बदले गुप्तचर है? या तू इस वानर रूप में रावण ही है?

अपना भेद स्पष्ट बता, नहीं तो हृदय में बड़ी चिन्ता हो रही है। हे वानर! साफ साफ और जल्दी बतादे, नहीं तो तुझे मैं शाप दूंगी।

हनुमान तब भय से वृक्ष की डालों पर से कूद कर नीचे उतर आये और हृदय में राम के सन्देश का स्मरण कर सारी बात कहने लगे।

अभिप्राय यह है कि सीता के मन में राक्षसी माया का सन्देह होता है। क्योंकि इस प्रकार की मायाएं वह राक्षसों की हर रोज देखती थी। रावण अभी होकर गया था, अतः स्वभावतः उन्हें वानर रूप में रावण के ही होने का भी सन्देह होता था। हनुमान तब नीचे उतर आते हैं।

हनुमान---करि जोरि.........लक्षण सुनाउ ॥६-१०॥

परिचय--इन दो पदों में सीता हनुमान से राम का परिचय

पूछकर अपना सन्देह निवारण करने की चेष्टा करती है और हनुमान उत्तर देते हैं।

शब्दार्थ—जोरि=जोड़कर। हौं=हूं। पौन=हवा। जिय=हृदय में। जानि=जानो। नंद=पुत्र। अज=राम के दादा का नाम। तनयचन्द=पुत्र रूपी चन्द। कहि=किस। पठये=भेजे। निकेतु=प्रदेश। हेत=लिए। निज=अपना। सील=स्वभाव। सुभाउ=स्वभाव। सुनाउ=सुना।

अर्थ—हाथ जोड़कर तब हनुमान जी बोले हे माता! मैं पवन पुत्र हूँ। मुझे आप अपने हृदय में राम का दूत समझें। सीता पूछती है, रघुनाथ कौन हैं? हनुमान उत्तर देते हैं, दशरथ के पुत्र हैं। सीता पूछती हैं, और दशरथ कौन हैं? हनुमान उत्तर देते हैं, वे अज के सुपुत्र हैं। सीता पूछती है, किस कारण से तुम यहां भेजे गये हो? हनुमान उत्तर देते हैं, अपना (राम का) सन्देश देने और (आपका) लेने के हेतु से। सीता फिर पूछती है। राम के कुछ गुण, रूप शील और स्वभाव का वर्णन करो।

विशेष—सीता के मन का सन्देह दूर नहीं होता। वह पहिले राम और उनके वंश आदि का पता पूछती है, पर उसका सन्देह दूर नहीं होता, क्योंकि पिता का नाम आदि तो राक्षसों को भी पता हो सकता है। अतः वह अन्त में राम के स्वभाव के बारे में पूछती है, जिससे पता लग सके कि वानर का राम से कितना परिचय है।

हनुमान—अति जदपि·········राम रूप ॥११-१२॥

परिचय—इन पद्यों में हनुमान राम के शील स्वभाव और रूप का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—जदपि=यद्यपि। सुमित्रानन्द=लक्ष्मण। अरू=और। अनुज—छोटा भाई। पै=पर। तदपि=तथापि, तो भी। निदान=पूरी तरह। भावत=अच्छा लगता है। श्री=शोभा,

कान्ति। बसंति=रहती है। दुति=चमक । लसन्ति=चमकती है ।

अर्थ—यद्यपि लक्ष्मण अत्यन्त शूरवीर और भक्त हैं और उनके परम सेवक हैं और यद्यपि राम तीनों छोटे भाइयों में अन्तर नहीं देखते, पर तो भी भरत उन्हें अधिक भाते हैं।

नारायण की छाती पर जैसे एक विलक्षण चमक चमकती है इसी प्रकार राम के वक्ष पर भी एक अद्भुत कान्ति चमकती है। संसार में जितने भी राक्षस या देवता और राजा हैं, उनमें राक्षस उनकी पूजा नहीं करते और देवता करते हैं।

हनुमान जी राम के विशेष भरत-प्रेम का वर्णन करते हैं, जो किसी पास रहने वाले को ही ज्ञात हो सकता है। उनके स्वरूप की एक अन्य विशेषता या चिन्ह बताते हैं कि उनके हृदय पर एक विलक्षण प्रकाश चमकता है।

सीता-मोहि परतीति........सुन्दरी लई ॥१३॥

परिचय—सीता राम और वानरों में प्रीति होने का कारण पूछती है और हनुमान के स्पष्ट करने पर सन्देह छोड़कर मुद्रिका को प्यार करती है।

शब्दार्थ—मोहि=मुझको । परतीति=विश्वास । आवई= आती। कहिधौं=कहो तो। सुनर=श्रेष्ठ नर (राम) । बानरनि= बानरों में । वर्णि=वर्णन करके। हरि=बन्दर । अन्हवाय= स्नान करा कर।

अर्थ—सीता फिर सन्देह करती है, मुझे इस प्रकार से विश्वास नहीं हुआ। बताओ तो, उन नर श्रेष्ठों (राम-लक्ष्मण) और बानरों में मिलाप या प्रेम कैसे हुआ । बानर (हनुमान) ने तब सारा वृत्तान्त वर्णन करके सुनाया और सीता को विश्वास कराया। तब सीता ने मुद्रिका को अपने अश्रु जल से स्नान कराके उसे हृदय से लगा लिया ।

अन्तिम प्रश्न पूछ कर सीता का सन्देह दूर हो जाता है और उसके दुःख का बांध टूट जाता है। आंसू बहने लगते हैं और मुद्रिका को वह छाती से चिपटा लेती है।

१४ आंसु·········बहु भाइ ॥१४॥

परिचय—इस पद में मुद्रिका पाने पर सीता की दशा का वर्णन किया गया है।

शब्दार्थ—बरषि=वर्षा करके। हरषि=हर्षित होकर। हियरे=जी में। सुभाई=स्वभाव। पिय=प्रिय। मुद्रिकहिं=अंगूठी को। बरनति=वर्णन करती है। बहुभाइ=बहुत भावों में। निरखि=देखकर।

अर्थ—सुखदायक स्वभाव वाली सीता, मुद्रिका को देख देखकर, आंसू बरसाती है, चित्त में प्रसन्न होती है, और अनेक भावों में मुद्रिका का वर्णन करती है।

सीता की मृत स्मृतियां जागृत हो जाती हैं। वह अनेक बातें याद करके, अनेक भाव से अंगूठी का वर्णन करती है। उसका मन विभोर हो जाता है।

हनुमान—दीरघ दरीन···परम पदलीन ॥१५-१६-१७-१८॥

शब्दार्थ—दीरघ=लम्बी। दरीन=कन्दराओं में। कैसौदा=केशव दास। केसरी=सिंह। ज्यों=तरह। केसरी=केसर की क्यारी। देखि=देखकर। करी=हाथी। कंपत=कांपता है। बासर=दिवस। सम्पति=प्रकाश (दिन की सम्पति) उलूक=उल्लू। चितवत=देखता है। चितै=देखकर। चंपत हैं=चम्पत होते हैं।

केका=मयूरवाणी। ब्याल=सर्प। बिलात जात=छुपता जाता है, सिकुड़ता है। घनन=बादलों की। घोरन=गर्जना। जवासी=एक कांटेदार घास, जवास, गर्म औषधि। भवेत=घूमते

हैं। रैनि=रात। जगत=जागता है। साकत=शाक्त, शक्ति का उपासक। यक=एक, (फारसी शब्द)। पुनि=फिर, और। गुनि=विचार कर। राती=रात। दीह=दीर्घ, लम्बी। जमराजजनी=यमराज की पुत्री। जनु=मानो। कै=कथा। मनु=मन। होहिगो=होगा। परम पद=मोक्षपद।

अर्थ—(हनुमान राम की विरह दशा का वर्णन करते है) केशव कहते है, राम सिंहों के समान लम्बी-लम्बी गुफाओं में रहते हैं, केशरी (सिंह और केशर की पत्ती) को देख कर वन्य हस्ती की तरह कांपने लगते हैं (हस्ती भय से कांपता है और राम वसन्ती रंग देखकर विरह व्याकुल होते हैं), दिन की सम्पत्ति (प्रकाश) उन्हें अच्छी नहीं लगती, जैसे उल्लू को नहीं लगती (विरह में राम अन्धकार में छुपे रहते हैं) और चक्रवाक के सामन चन्द्रमा को देख कर चौगुनी व्याकुल हो जाते हैं।

मोरो की ध्वनि सुनकर सर्प के समान छुपते जाते हैं (मोर की ध्वनि विरहोत्तेजक होती है, और मोर सांप को खा जाते हैं), बादलों की घोर गरज सुनकर जवा से की तरह तपने लगते हैं (मेघ विरहो दीपक होते हैं और जवासा बहुत गर्म औषधि होती है), भ्रमर की तरह वनों में घूमते रहते हैं (विरहोन्मत्त दशा मे), रात को योगियों समान जागरण करते हैं (प्राणियों की रात्रि योगियों के लिए दिन होता है और शक्ति के उपासक की तरह हर दम आपका ही नाम जपते हैं। और हे राज पुत्री ! एक बात रामने और भी हृदय में बहुत सोच विचार कर कही थी कि रात यमराज की पुत्री के समान अत्यन्त लम्बी लगती है, इसका पता या तो शरीर को है और या मन को है।

(भाव यह है कि राम विरह में अधीर हैं। दिन का प्रकाश नहीं देखते। छुपे रहते हैं, किसी से बोलते नहीं। वन में बेतहाशा घूमते

हैं और सीता को हर दम याद करते हैं। रात को सोते नहीं। रात लम्बी कटती नहीं। इसका पता या तो शरीर की कृशता से लगता है और या मन की व्याकुलता से लगता है।)

विशेष-दुख का अनुभव करने पर ही सुख मिलता है, सुख दुख के बिना कहीं नहीं है तपस्वी पहिले तपस्या का कष्ट उठाता है, फिर उसे मोक्ष का सुख मिलता है। अर्थात् संसार के सुख और दुख दोनों अवश्य भोगने पड़ते हैं, अकेला सुख ही सुख संसार में नहीं मिलता।

ऋषि आश्रम शोभा वर्णन

कवित्त—केसोदास............लीने अनन्तै ॥ १९–२०–२१॥

शब्दार्थ-मृगन=मृगों के। बछेरू=गाय के बछड़े। चोवें=चूमते हैं। बाघनीन=बाघनियों, शेरनियों। सुरभि=यज्ञ की गाय। बदन= मुख। सटा=जटा। कलभ=हस्ती का बच्चा। करनि करि=सूण्ड करके। रदन=बाहर निकला हुआ दान्त। फणी=सर्प। मुदित= प्रसन्न। मदन=मर्दन और काम देव। डोरे डोरे=डोले डोले, खींचे खींचे। सदन=घर। कैधौं=क्या। वास=वस्त्र या घर। अन्धी= मूर्ख। कल्प साखी=कल्प वृक्ष जो मांगने पर प्रत्येक कामना पूरी करता है। गयंद=हाथी। बल्कलै=वृक्षों का बक्कल। विभोहैं=मोहित होते है। शृङ्खला=मौंजी, मूञ्ज की तगड़ी। दुरंतै= भारी। दाहैं=नष्ट करते हैं। अनन्तै=शेषनाग।

अर्थ—केशव वर्णन करते हैं, मृग के बच्चे बाघनियों के स्तन चूंघते है, बाघों (शेरों) के बच्चे धेनुओं के मुख चाटते हैं, हाथियों के बच्चे अपनी सूण्डों से सिंहों की गर्दन के बाल नोचते हैं और हाथियों के दान्त सिंहों का आसन बनते हैं। सर्प के फनों पर जहां प्रसन्न मोर नाचते हैं, जहां क्रोध, विरोध, मद (अभिमान) और काम वासना का नाम भी नहीं है। जहां अन्धे तपस्वियों को बानर इधर उधर

घसीटे फिरते हैं, ऐसा वह स्थान शिव का समाज है या ऋषिका आश्रम है ? जहां कोमल वृक्षों की खालों के बने वस्त्र शोभित हो रहे हैं। उन्हें देखकर मूर्ख कल्पवृक्ष भी मोहित होता है (वल्कल वस्त्र कल्पवृक्ष से भी अधिक इष्ट कामना देने वाले हैं)। जहां ऋषि गण मेखला धारण करते हुए भी भारी दुःखों को नाश करने वाले हैं। मौंजी पहिने वे ऐसे लगते हैं मानो कटि में नागों या शेष नाग को लपेटे साक्षात् शंकर हों।

विशेष–भारद्वाज ऋषिके आश्रम का वर्णन है। वहां मनुष्यों की तो क्या, पशु भी स्वाभाविक वैर-भाव भूले हुए हैं। भय नहीं, है जरा भी, वल्कल वस्त्र धारी ऋषि सब इष्ट फलों को देने वाले हैं। उनके सामने कल्प वृक्ष भी तुच्छ हैं। मौंजी पहिने हुए भी समस्त दुखों के नाश करने की शक्ति रखते हैं। मौजी से उनकी नाग लपेटे शंकर की शोभा हो रही है। ऋषि की तपस्या का प्रताप व्यंग्य होता है।

रहीम

१. रहिमन मैन..............नाहिं।

परिचय—इस दोहे में रहीम ने प्रेम पन्थ की विकटता और विषमता का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—मैन तुरंग=काम देव रूपी अश्व। चढ़ि=चढ़कर। चलिबो=चलना। पावक=अग्नि।

अर्थ—रहीम कहते हैं, कामदेव रुपी अश्व पर सवार होकर चलना अग्नि में चलने के समान है। प्रेम का मार्ग ऐसा विकट है कि उसमें सफलता पूर्वक चलना सब के वश का नहीं है।

भाव यह है कि प्रेमपंथ का चलना अग्नि में चलने के समान है। कामी काम प्रेरित होता है, अतएव जरासा चूकने पर फिसल कर पतित हो जाता है। इस मार्ग मे हर कोई नहीं चल सकता।

२. अन्तर दांव..............बीती होय।

परिचय—इस दोहे में रहीम अन्तर में प्रच्छन्न (छुपे) रूप से जलती हुई प्रेम की अग्नि का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—दांव=अग्नि। सोय=वह। कै=क्या तो। जासिर=जिसके सिर।

अर्थ—प्रेमी-हृदय के अन्दर आग लगी रहती है, वह बाहर धुंआं नहीं देती (प्रकट करती)। उसकी जलन को या तो प्रेमी का दिल जानता है और या वही जानता है, जिसके सिर पर कभी ऐसी बीती हो।

भाव यह है कि प्रेम की अग्नि अन्दर ही अन्दर प्रेमी को जलाती है। उसका पता और को नहीं लगता। उसे या तो प्रेमी जानता है और या कोई भुक्त भोगी जानता है। कोई और उसे समझ ही नहीं सकता।

३. जे सुलगे..............सुलगांहि।

परिचय - इस दोहे में रहीम ने प्रेम की एक रसता का वर्णन किया है, कि वह कभी नष्ट नहीं होता, दब जाता है।

शब्दार्थ—जे=जो। ते=वे। दाहे=जलाये। कै=कर। सलगाहि=सुलगाते हैं।

अर्थ—जो सुलगते हैं, वे बुझ जाते हैं और जो एक बार बुझ जाते हैं, वे फिर सुलगते नहीं। पर प्रेम की अग्नि से जले हुए प्रेमी बुझ २ कर सुलगते हैं।

विशेष—गो से का अंगार बुझ कर राख हो जाता है, दोबारा नहीं सुलगता। पर प्रेमी बुझ २ कर सुलगता है। उसका प्रेम दब जाता है, नष्ट नहीं होता, फिर उद्बुद्ध (जागृत) हो जाता है।

४. रहिमनपैंडा.............. बैल ।।

परिचय—इस दोहे में भी कवि ने प्रेम-पथ की दुर्गमता का वर्णन किया है।

शब्दार्थ-पैंडा=सफर, मार्ग। निपट=पूरी तरह। सिलसिली=फिसलन वाली। गैल=गली। पिपीलिका=कीड़ी। लदावत=लदवाते हैं।

अर्थ—रहीम कहते हैं, प्रेम के सफर की गली (मार्ग) बहुत चिकनी है, जिस पर चलने में चींटी के भी पांव रपटते हैं, पर लोग उसी पर बैलों का बोझ लाद कर चलना चाहते हैं।

प्रेम पथ में स्खलित हो जाने का (गिर पड़ने का) बहुत भय है। विषय वासना में फंसा कि सच्चे प्रेम-मार्ग से भटका। पर अज्ञानी लोग विषय वासना के पाप का बोझ लाद कर प्रेम मार्ग में चढ़ना चाहते हैं, जिससे यह मार्ग दूषित हो गया है।

५. यह न रहीम············के जीत॥

परिचय—स्वार्थ के देन लेन के प्रेम की रहीम निन्दा करते हैं।

शब्दार्थ—सराहिये=प्रशंसा करिये। प्रानन=प्राणों से। कै=क्या।

अर्थ—रहीम कहते हैं, देन लेन के स्वार्थी प्रेम की क्या प्रशंसा है? बाजी तो प्राणों की लगनी चाहिये, चाहे हार हो या जीत।

विशेष-देने लेने के स्वार्थ से उत्पन्न प्रीति सच्ची नहीं। प्रीति तो वह है जो प्राणों के साथ लगी हो, अर्थात प्रेम में प्राण भी जाय तो चिन्ता नहीं होनी चाहिये।

६. मान सहित············सीस॥

परिचय—रहीम आदर और प्रतिष्ठा को ही संसार में सब कुछ बताते हैं।

शब्दार्थ—मान=प्रतिष्ठा। पियो=पिया। जगदीश=जगत के स्वामी।

अर्थ—रहीम कहते हैं, मान सहित, (प्रतिष्ठा पूर्वक) विष खाकर भी शंकर जगदीश कहलाये और बिना मान के अमृत भी पीकर राहु ने अपना सिर ही कटाया (समुद्र मंथन के पश्चात देवताओं को समुद्र से निकला अमृत पिलाया जा रहा था और दानवों को राहु देवता का रूप बना कर अमृत पी रहा था कि भगवान विष्णु ने देखकर सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया।) भाव यह है कि सम्मान पूर्वक विष खाने पर भी लाभ ही होगा बिना सम्मान के अमृत भी कारगर नहीं होगा।

७. बड़े बड़ाई.........बोल॥

परिचय—रहीम कहते हैं, बड़े आदमी शेखी नहीं मारा करते।

शब्दार्थ—बड़ो=बड़ा। मेरो=मेरा।

अर्थ—रहीम कहते हैं, बड़े आदमी बड़ी बात नहीं बोला करते। हीरा कब कहता है कि उसका मूल्य लाख टका है?

भाव यह है कि बड़े आदमी नाप तोल कर उचित बात कहा करते हैं, मुफ्त की शेखी नहीं मारा करते।

८. थोरो किये..............न कोय।

परिचय—रहीम कहते है, बड़ाई बड़ों को ही मिलती है, छोटों को नहीं।

शब्दार्थ-थोरो=थोड़ा। किये=करने पर। बड़ेन की=बड़ों की। गिरिधर=कृष्ण, पहाड़ उठाने वाला।

अर्थ-रहीम् कहते हैं, थोड़ा करने पर भी बड़ों की बड़ी बड़ाई (यश) होती जाती है, जैसे हनुमान को गिरिधर कोई नहीं कहता। यद्यपि हनुमान भी लछमण के लिए संजीवनी का पर्वत उठाकर लाये थे, पर गिरिधर कृष्ण को ही कहा जाता है, उन्हें नहीं, क्योंकि हनुमान छोटे थे।

९. कोउ रहीम.............को आय।

परिचय—रहीम कहते हैं, विपत्ति सबको दूर ले जाती है और सम्पत्ति पास ले आती है।

शब्दार्थ—कोउ=कोई। जनि–नहीं। काहु के–किसी के।

अर्थ—कोई किसी के द्वार पर जाकर मन में पछताये नहीं, क्यों कि सम्पत्ति वाले के द्वार पर सब जाते हैं और विपत्ति वाले के पास से सब भागते हैं।

भाव यह है कि कोई किसी के मांगने जाने में संकोच नहीं करे। समय पर विपत्ति में सम्पत्तिवान के यहां सभी जाते हैं और विपत्ति में सब छोड़ जाते हैं। अत: दुनिया का यह व्यवहार ही ऐसा है, दुःख नहीं मानना चाहिये।

१०. संपति…………लेव।

परिचय—धन धनी को ही मिलता है, दीन की सुधि तो भगवान ही लेता है।

शब्दार्थ—वसु=धन। देत–देता है। को—कौन। लेव–लेता है।

अर्थ—सम्पत्ति सम्पत्तिवान को ही मिलती है। उन्हें सब कोई धन देता है। पर दीनजनों की दीन बन्धु (परमात्मा) के सिवा और कौन सुधि लेता है?

धनवान का विश्वास करके उसे सब धन देते हैं, निर्धन में भगवान के सिवा और किसी को विश्वास नहीं होता। अत: उनकी तो ईश्वर ही संभाल रखता है।

११ तबहीलों…………रहीम।

परिचय—जब तक दान की सामार्थ्य रहे तभी तक जीवन सफल है, नहीं तो नहीं।

शब्दार्थ—लौं–तक। जीबो–जीवन। दीबो–दान। बीम–

मन्दा, धीमा। रहियो-रहना। कुचितगति-संकोचवृत्ति, कंजूसी। होय-होता।

अर्थ—रहीम कहते हैं, सांसारिक जीवन का आनन्द तभी तक है, जब तक दान देने में कमी नहीं पड़ती, नहीं तो संसार में कंजूसी से जीना तो किसी काम का नहीं।

रहीम अत्यन्त दानी थे। यथेष्ट दान के बिना उन्हे जीवन नहीं रुचता वे जीवन का आनन्द तभी तक समझते हैं, जब तक दान में हाथ ढीला न पड़े।

१२ रहिम न दानि..............लोग।

परिचय—दान दानी से ही मांगना चाहिये, चाहे वह कितना ही निर्धन क्यों न हो।

शब्दार्थ—दरिद्रतर-अत्यन्त दरिद्री। तऊ-तो भी। जाचिबे-मांगने के। जाग-योग्य। सरितन-नदियां ने। सूख।-जल सूखना। खनावत-खुदवाते हैं।

अर्थ—रहीम कहते हैं, दानी चाहे कितना निर्धन हो, पर उसी से मांगना चाहिये, जैसे नदियां सूख जाने पर लोग कुआ खुदवालेते हैं।

नदियां सदैव जल नहीं दे सकती, चाहे वर्षा में कितना ही जल भर जाय। सूख हो जायगी। कूआ सदैव जल देता है, चाहे उसमें से थोड़ा ही जल निकलता है। यही दान की बात है। दानी ही दे सकता है, दूसरा नहीं, चाहे वह कितना ही अमीर हो।

१३. चित्र कूट में.........यहि देश॥

परिचय—जंगलों में वही जाता है जिस पर विपत्ति पड़ती है।

शब्दार्थ—रमि रहे=रह रहे हैं। अवध नरेश-राम। यहि-इस।

अर्थ—रहीम कहते हैं, अवध के राजा राम चित्रकूट में रह रहे

हैं। सच है, जो विपत्ति में पड़ा होता है, वही इस (बन्य) प्रदेश में आया करता है।

अपने विपत्ति के समय को रहीम ने भी चित्रकूट में रह कर ही काटा था। तभी उन्हें राम का ख्याल आता है और तभी यह ख्याल भी आता है कि जंगलों में आदमी तभी भागता है जब उस पर विपत्ति पड़ती है।

१४ जापर·········नाहिं।

परिचय—याचक को ना करने वाला व्यक्ति मृतक से भी गया बीता है।

शब्दार्थ—जे=जो। कहुँ=कहीं। जाय=जाकर। उनते=उनसे। मुए=मरे।

अर्थ—रहीम कहते हैं, जो कहीं मांगने जाता है, वह वस्तुतः मर जाता है और उससे भी प्रथम वह मर जाता है जिसके मुंह से उसके लिए ना निकलती है।

स्वाभिमान के बिना जीवन मृत्यु जैसा है। दुःख में पड़ कर मांगते हुए को इन्कार करना भी मनुष्यता से गिरना है।

१५. देनहार कोउ·········नैन।

परिचय—इस दोहे में रहीम के दान की निरभिमानता व्यक्त होती है।

शब्दार्थ—देन हार=दाता। रैन=रात। भरम=भ्रम। पै—पर। याते—अतः।

अर्थ—दाता कोई और (ईश्वर) है, जो हमारे पास दिन रात भेजता है। परन्तु लोग हमारे में भ्रम करते हैं, अतः संकोच से हमारी आंखें नीची हो जाती हैं।

रहीम प्रसिद्ध दानी थे, पर जब देते थे तो नीची नज़र कर लेते थे। किसी के पूछने पर उन्होंने यह उत्तर दिया है। देता है भगवान लोग मुझे दाता समझते हैं, इसलिए आंखें नीची रहती हैं। कितनी निरभिमान उक्ति है!

१६. बसि कुसंग.........परोस।

परिचय—कुसंगति से लाभ की आशा रखना गलती है।

शब्दार्थ—बसि=रहकर। सीस=चिन्ता। बस्यो=रहा।

अर्थ—रहीम कहते है, कुसंग में रह कर भले की आशा रखते हो, यही दिल में बड़ी भारी चिन्ता है। रावण के पड़ोस में बसा था तो समुद्र की भी महिमा घटी।

भाव यह है, बुरे की संगति से हानि ही होती है। समुद्र पर कोई पुल नहीं बांध सकता था, उसकी यह मर्यादा थी। पर रावण को मारने के लिए राम ने उस पर पुल बांध कर फौज उतारी। समुद्र की मर्यादा घटी केवल रावण के पड़ोस के कारण।

१७. रहिम उजली...........अंग।

परिचय—सज्जन और असज्जन का संग किसी प्रकार भी शोभा नहीं पाता।

शब्दार्थ—उजली=स्वच्छ, निर्मल। प्रकृति=स्वभाव या रङ्ग। करिया=कालिख वाला। गहे=पकड़ने पर। कर=हाथ।

अर्थ—रहीम कहते हैं, निर्मल स्वभाव वाले और दुष्ट स्वभाव वाले का संग किसी भी प्रकार ठीक नही रह सकता। कालिख वाले बर्तन को हाथ में पकड़ने पर अंग में कालिख ही लगती है।

सत और असत की संगति से सत को हानि ही पहुचेगी, जैसे कालिख वाले बर्तन के उठाने से अंग में कालिख ही लगती है।

१८. जो रहीम.........भुजङ्ग।

परिचय—सज्जन का दुःसंगति से कुछ नहीं बिगड़ सकता।

शब्दार्थ—प्रकृति=स्वभाव (Nature)। का=क्या। करि=कर। भुजंग=सर्प।

अर्थ—रहीम कहते हैं जो सज्जन स्वभाव के पुरुष हैं, उनका बुरी संगति कुछ नहीं बिगाड़ सकती। चन्दन के वृक्ष में सैंकड़ों सर्प लिपटे रहते हैं, लेकिन उसमें (चन्दन में) विष का संचार नहीं होता।

अर्थात् कुसंगति का सज्जन साधु पुरुष पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, वह अपने पथ में निश्चल होता है।

१९. रहिमन लाख·········धरि खाय।

परिचय—दुष्ट पुरुष अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता, चाहे कुछ भी उपकार करो।

शब्दार्थ—अगुनी=दुष्ट, ऐबी। अवगुन=दुष्टता,ऐब। न जाय =नही जाता।

अर्थ—लाख भला करो पर अवगुणी (ऐबी) अपना अवगुण (ऐब) नहीं छोड़ता। रहीम कहते हैं, राग (बीन का) सुनता हुआ और दूध पीता हुआ भी सांप काट ही खाता है।

अर्थात दुष्ट प्राणी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, चाहे उसका कितना ही भला करो। मौका पाकर वह दुष्टता से हानि पहुंचाये बिना बाज नहीं आयेगा।

२० मन से·········दिवान।

परिचय—रहीम मन और आंखों के संयोग रूपक से राजा और मंत्री के सम्बन्ध का वर्णन करते हैं। या राजा और मंत्री के रूप से मन और आंखों के सहयोग का वर्णन करते हैं। प्रकरण के अभाव में निश्चित नहीं कहा जा सकता।

शब्दार्थ—प्रभु=स्वामी, राजा। दृग सों=आंखों जैसे। दिवान=मंत्री। आदर्यो=आदर दिया। तेहि=उसके।

अर्थ—रहीम कहते हैं मन जैसा राजा और आंखों जैसे दीवान कहां हैं ? आंखों ने जिसे देख कर आदर दे दिया कि मन उसके हाथ बिक जाता है।

भाव यह है कि आंखों के द्वारा ही मन पर प्रभाव पड़ता है। मन उसी का हो जाता है जिसे आंखों ने पसन्द कर लिया। राजा भी मंत्री के कहने में ही चलता है।

२१ नैन सलोने········पर लोन।

परिचय—किसी नवेली के सौन्दर्य का वर्णन है।

शब्दार्थ—सलोने=सुन्दर और लवण वाले (नमकीन)। मधु=शहद। घटि–घट कर। भावै–भाता है, रुचता है। लोन–लवण। अरु–और।

अर्थ—नयन सलोने हैं और अधरों में शहद (माधुर्य) है, रहीम कहते हैं, कहो दोनों में कम कौन है ? मीठे पर नमक अच्छा लगता है औरनमक पर मीठा।

भाव यह है कि तृप्ति नहीं होती। एक के बाद दूसरे की इच्छा बनी रहती है। आंखों में लावण्य है और होठों में माधुर्य। तबीयत कैसे भरे ?

सोरठा

२२. रहिमन कीन्हीं·········को गने।

परिचय—बड़े आदमियों के घर उनके छोटे मित्रों को कौन पूछता है ?

अर्थ—रहीम कहते हैं, स्वामी से प्रेम किया था, पर उन्हें भाया नहीं। जिनके असंख्य मित्र हों, वहां हम गरीबों की क्या पूछ ? भाव स्पष्ट ही है।

२३. रहिमन जग..........रस नहीं।

परिचय—संसार में बन्धनों के कारण सुख नहीं मिलता।

शब्दार्थ—ताहू में=उसी में। परतीति=ज्ञान। तहँ=वहाँ।

अर्थ— रहीम कहते हैं, संसार की रीति (व्यवहार) हमने गन्ने के रस में देखी। उसी में दिखाई देने पर भी, जहां गांठ है, वहां रस नहीं है।

भाव यह है कि संसार में आनन्द की प्रतीति (ज्ञान) होती है कि वह है, पर जहां उसमें बन्धन है, वहीं वह आनन्द लुप्त हो जाता है, जैसे रस गन्ने में सर्वत्र व्याप्त प्रतीत होता है, पर जहां गांठे होती हैं, वहां नहीं होता।

२४. ओछे को..........लगै।

परिचय—बुरी संगति का तुरन्त त्याग कर देना चाहिये।

शब्दार्थ—ओछे=कमीना, दुष्ट। सतसंग=असत्संग, बुरी संगति। तजु=छोड़ो। ज्यों=जैसे। सीरे पै=ठण्डा होने पर।

अर्थ—रहीम कहते हैं, ओछे आदमी का साथ अंगार के समान छोड़ देना चाहिये। कारण गर्म (और क्रोध में) होता हुआ अंगों को जलायेगा और ठण्डा हो कर अंग काले करेगा।

दुष्ट पुरुष क्रोध या प्रसन्नता में हानि ही पहुँचाता है, उसका ऐसा स्वभाव है। अतः उसका अंगारे के समान त्याग कर देना चाहिये।

२५. रहिमन मोहि..........मरबो भला।

परिचय—सादर विष भी भला पर निरादर के साथ अमृत भी तुच्छ है।

शब्दार्थ—मोहिं=मुझे। अमी=अमृत। बिनु=बिना। बरु=चाहे। मरबो=मरना।

अर्थ—रहीम कहते हैं, मुझे अच्छा नहीं लगता, यदि कोई आदर और सम्मान के बिना अमृत भी पिलाए किन्तु बुलाकर चाहे कोई विष भी दे,

तो मान सहित मुझे मरना भी भला है।

संसार में सम्मान के बिना मनुष्य जीवन मृतवत है। अतः सम्मान ही मनुष्य की क़ीमत है। उसके बिना अमृत भी तुच्छ और उसके (सम्मान के) साथ विष भी अमृत है।

२६. रहिमन बहरी .... बंधन पर्यो।

परिचय—उदर के निमित्त मनुष्य को अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं।

शब्दार्थ—बहरी=शिकारी। गिरै=नीचे उतरता है। गगन=आकाश। कै=के। काज=लिए। परै=पड़ता है।

अर्थ—रहीम कहते हैं, शिकारी बाज आकाश में ऊंचे चढ़ कर नीचे क्यों उतरता है? नीच (अधम) पेट के लिए (कारण से) फिर व्याध के बन्धन में पड़ता है।

शिकारी लोग बाज़ को पालते हैं, किसी पक्षी के पीछे उसे छोड़ देते हैं, वह उसे मार कर (खाकर) फिर शिकारी के पास आ जाता है। रहीम कहते हैं, यह वह अपने पेट के लिये करता है। पेट के लिए मनुष्य नाना कष्ट उठाता है, यह अर्थ व्यंग्य है।

२७. चूल्हा .... भार में।

शब्दार्थ—दीनो=दिया। बार=बाल, जला। नात=नाते दार। जरि गयो=जल गये। भार=बोझा और भाड़ (भट्टी) झोंकि=झोंक कर, विपत्ति का।

अर्थ—चूल्हा बाल दिया, जितने नाते रिश्तेदार थे सब अग्नि की भेंट हुए। रहीम कहते हैं, समस्त बोझा भाड़ में झोंक कर हम भी पार उतर गये।

रहीम ने चूल्हे और भाड़ के रूपक से अपनी व्याति का वर्णन किया है। रहीम के अंतिम दिनों में उनकी सब सन्तानें मर गईं थी और वे विरक्त हो गये थे संसार के सब बन्धन छोड़ कर। इसी बात को

उन्होंने विपत्ति के चूल्हे में सब कुछ झोंक देने के रूप में वर्णन किया है।

घनाक्षरी

१—२. पट चाहे ....साहिबी।१-२।

परिचय-रहीम कहते हैं-हे भगवान्! मैं परिश्रम करके अपना और कुटुम्ब का पेट पालना चाहता हूँ। आपको छोड़ कर और कहां जाऊं?

शब्दार्थ—पट=कपड़ा। छदन=अच्छा दन (यहां वस्तुत अदन—भोजन-पाठ चाहिये)। जेती=जितनो। सराहिबी=सराही जाती हैं। तेराई=तेरोही। काके=किसके। काहिबो=कहूं। खायो=खाना। जियायो=जिलाना। काढ़ि=निकाल कर। साहिबी=सकरि। जोपै=यदि।

अर्थ—तन कपड़ा चाहता है और पेट भोजन चाहता है। मन में दुनियां के सराहने योग्य ऐश्वर्य-सुखों की लालसा उठती है। रहीम कहते हैं, हे दीन बन्धु। तेरा ही कहला कर, अब अपनी विरत्ति किसके द्वारे जाकर रोऊं? पेट समाता खाना चाहता हूँ, उद्यम करना चाहताहूँ, कुटुम्ब को जिलाना चाहता हूँ, आपको साहिबी (सरकार) के गुण गान करके (गुणों को प्रकट करके)। यदि आप हमारी आजीविका का प्रश्न औरों के हाथो में डालोगे तो भगवान्! इसमे आपको साहिबी क्या रही?

रहीम परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि दीन् बन्धु! आपका सेवक और कहां जाकर अपना दुःख रोये अधिक नही चाहता, पेट समाता अन्न और तन समाता कपड़ा अपने और कुटुम्ब के लिए चाहता हूँ। मेरे में कुछ गुण नहीं, आपके ही गुणों के प्रताप से यह सब करूंगा। आपके सेवक को किसी और से मांगना पड़े तो आपकी क्या शान रही?

३—४. बड़े न सों..........अंगार है ॥

परिचय—भगवान् के विमुख होने पर कहीं सुख लाभ नहीं होता चाहे कितने ही बड़े २ आदमियों से मेल करलो।

शब्दार्थ—कै=करके। काह्=क्या। करतार=कर्ता, ईश्वर। सीत हर=शीत हरने वाला। नेह्=प्रेम। हेत=कारण से। ताऊपै=उस पर भी। जरि डारत=जला डालता है। तुषार=हिम, बर्फ। नीरनिधि=सागर। धस्यो=घुसा। बस्यो=रहा। तऊ=तोभी। नस्यो=नष्ट हुआ। ससि=शशी, चन्द्र। रीझिवार=आशकि मिजाज, भावुक। दर=दर (आदर) वाला है, स्वाभि मानी। कलानिधि=चन्द्रमा। ताऊ=तोभी। चाखत=चखता है।

अर्थ—रहीम कहते हैं, यदि कर्ता (परमात्मा) ही सुख नहीं देना चाहता तो बड़ों से जान पहिचान करके भी क्या लाभ? सूर्य शीत को दूर करने वाला है, इसी लिए उससे प्रेम किया था, तो भी कमल को हिम जला डालती है (कमल जल में रहता है। उसे ठण्ड लगती है। इसीलिए उसने सूर्य से दोस्ती गांठी थी। पर भाग्य की विपरीतता से कोई लाभ नहीं हुआ तुषार उसे जला डालती है। चंद्रमा सागर में धंसा शंकर के सिरपर रहा, तो भी कलंक नहीं धुला, चन्द्रमा में सदा बना रहता है (चन्द्रमा प्रातः सायं समुद्र में डूबता और उससे उगता दिखता है। शंकर के मस्तकपर रहने की भी उसकी प्रसिद्ध है किंतु उसमें काला धब्बा सदैव बना रहता है)। चकोर बड़ा भारी प्रेमी है और उसका आदर है, उसका चन्द्र जैसा यार है, पर तो भी वह अग्नि-चिंगारी ही खाता है (चकोर और चन्द्रमा के प्रेम का कवि वर्णन करते हैं। चकोर अंगारे खाता है, यह भी कवि समय सिद्ध वर्णन है)।

भाव यह है कि चकोर का चन्द्रमा जैसा सुधा का निधि यार है, फिर भी बेचारा अंगार-भक्षण करता है। करतार ही जब सुख देनहार

नहीं तो बड़ों की जान पहिचान से क्या काम ? ईश्वर विमुख को कहीं सुख नहीं।

सवैया

४-५-दैन चहें..............नन्द के द्वारे ॥

परिचय—जिन्हें भगवान् सुख देना चाहते, उन्हें छप्पर फाड़ कर मिलता है।

शब्दार्थ—दैन चहें=देना चाहें। अपनी अपना=स्वयं। परपंच=छल छन्द, करिश्मे। धाम=घर में। औ=और। दुन्दुभि=तूती।

अर्थ—रहीम कहते हैं, परमात्मा जिसे सुख देना चाहता है, वह उसे अवश्य मिलता है, टलता नहीं। उस आदमी को बिना उद्यम और परिश्रम किये ही हाथ पसारने पर (आवश्यकता होने पर) अनायास धनप्राप्त होता है।

भाग्य स्वयं अपने आप में ही फंसा हुआ है। ब्रह्मा के करतब कुछ समझ में नहीं आते। बेटा वसुदेव के घर हुआ और नफीरी [मंगल के बाजे],नन्द के द्वार पर बजी।

भाव यह है कि भगवान् जिसे सुख देना चाहते हैं, उसे स्वयं प्राप्त होता है। उसे हाथ पसारते ही अनायास धन ऐश्वर्य मिलता है। पर भगवान् के कार्य अज्ञेय हैं, कोई समझ नहीं सकता। वसुदेव के पुत्र होता है और उसका सुखभोग अनायास ही घर बैठे नन्द को मिलता है (कृष्ण के उत्पन्न होने पर रात को ही वसुदेव उन्हें नन्द के घर छोड़ आये थे।

बिहारी

दोहे

१. मेरी भव बाधा हरौ............जुति होई ॥

परिचय—अपनी सत सई के प्रारम्भ में कवि राधा नागरी की स्तुति करके मोक्षपद मांगता है ।

शब्दार्थ-भव बाधा=संसार के कष्ट जन्मबन्धन । सोई=वही । जा=जिसके । झांई=कान्ति, छाया । हरित दुति=हरे रंग के और खुश होना ।

अर्थ—जिसके शरीर कान्ति पड़ने पर श्याम हरित-धुति (हरे) हो जाते हैं, वही राधा चतुर नागरी मेरे जन्म के कष्ट दूर करे ।

राधा के सुवर्ण शरीर की पीली कान्ति की छाया पड़ने पर कृष्ण का श्याम शरीर हरे रंग का हो जाता है, क्योंकि पीले रंग में काला मिलाने से हरा बन जाता है, वैसे राधा की शोभा देख कर कृष्ण हरे (प्रसन्न) हो जाते हैं, यह प्रसंग का अर्थ है ।

२. सीस मुकुट............लाल ॥

परिचय- -बिहारी भगवान् को कहते हैं, इस रूप में आप मेरे हृदय में निवास करो ।

शब्दार्थ—उर=हृदय तल पर । माल-माला । इहि बानिक-इस रूप । मो-मेरे ।

अर्थ—हे विहारी लाल ! (कृष्ण !) आप मेरे हृदय में इस रूप में निवास करो कि आप के सिर पर मुकुट हो, कमर में कछनी बंधी हो, हाथ में बंसरी और हृदयतल पर पुष्प माला हो (बिहारी को कृष्ण का जो रूप प्रिय है, उसी में वे भगवान् से अपने हृदय में रहने की प्रार्थना करते हैं) ।

३. मोहनि मूरति............जग होइ ॥

परिचय— मोहन की मूर्ति का निवास हृदय के अन्दर है । पर प्रतिबिम्ब सर्वत्र बाहर नज़र आता है ।

शब्दार्थ—जोइ=देखी । बसती=रहती है । सु=वह । तउ=तोभी होइ=होती है ।

अर्थ—श्याम की मोहक आकृति की यह अद्भुत गति देखी है कि वह रहती तो चित्त के अन्दर है, पर उसका प्रतिबिम्ब सर्वत्र [बाहर] दृष्टिगत होता है ।

भाव यह है कि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हुआ प्रतीत होता है, वही मनुष्य के हृदय में भी निवास करता है, प्रच्छन्न रूप में । पर उसका प्रतिबिम्ब सर्वत्र दीखता है, ज्ञानी पुरुष को ।

४. सघन········के तीर ॥

परिचय—गोकुल की भूमि में जाकर अब भी कृष्ण काल की स्मृतियां उदित हो जाती हैं ।

शब्दार्थ—सघन=घना । सुरभि समीर=सुगन्धित वायु । मनु=मन । ह्वै=हो । अजौं=आज भी, अब भी । वहै=विलक्षण दशा में । उहि=उस ।

अर्थ—उस (जहां कृष्ण रास करते थे) यमुना के तीर पर घने कुंजों, सुखद छाया और शीतल सुगन्ध वायु का दर्शन करते हुए आज भी मन विलक्षण दशा में (ठगा सा) हो जाता है ।

व्रज भूमि और यमुना आदि कृष्ण के क्रीड़ा स्थानों को देखने से मन विलक्षण कल्पना लोक में पहुँच जाता है ।

५. सखि सोहति·········की जाल ॥

परिचय—एक सखी दूसरी से कृष्ण के इस रूप का वर्णन सुनाती है ।

शब्दार्थ—कैं=के । गुंजन=गुंजाओं, रत्तियां । लसती=चमकती है । दावानल=वनाग्नि । ज्वाल=ज्वाला, लपट ।

अर्थ—हे सखि ! कृष्ण के हृदयतल पर लटकती हुई गुंजा की माला ऐसी लगती है, मानो उनके द्वारा पी हुई दावाग्नि की ज्वाला बाहर चमकरही हो (ज्वाला भी लाल होती है और गुंजा की माला भी लाल होती है) ।

अर्जुन द्वारा खाण्डव वन दाह के समय कृष्ण के वनाग्नि की ज्वाला-पान करने की घटना महाभारत का प्रसंग है। लाल गुण की समानता के कारण सखी उत्प्रेक्षा करती हैं।

६. जहां जहां·········ठौर ॥

परिचय—कृष्ण के क्रीडा स्थल आज भी नयनों को आकृष्ट कर लेते हैं।

शब्दार्थ—ठाढ़ौ=खड़ा हुआ। लख्यौ=देखा। स्यामु=श्याम। सिरमौर=सिर का मुकुट। सुभग=सुन्दर। रनु=उनके। गहि रहतु=पकड़े रहता है। द्दगनु=आंखों को। ठौरु=स्थान।

अर्थ—सुन्दर (पुरुषों) के मुकुट मणि कृष्ण को जहां २ खड़े देखा था, वे स्थान अब उनके न होने पर भी आंखों को आकृष्ट किये बिना नहीं रहते।

उन स्थानों को देखकर, कृष्ण के बिना भी, गोपियों की आंखें पुरानी बातों को याद करके, वहां अटक जाती हैं।

७. चिर जीवौ·········के वीर ॥

परिचय—एक सखी कृष्ण और राधा के जोड़े को आशीर्वाद देने के बहाने द्व्यर्थक शब्दों के प्रयोग द्वारा मजाक करती है।

शब्दार्थ—जोरी जुरे=जोड़ी मिली रहे। सनेह=प्रेम। को घटि=घट कर कौन है। वृषभानुजा=वृषभ+अनुजा, बैल की छोटी बहन और वृषभानु की पुत्री, राधा। हलधर के बीर=हल धारण करने वाले बैल का बीर (भाई) और वीर हलधर [illegible] ।

अर्थ— एक सखी राधा कृष्ण के जोड़े को आशीर्वाद देती है, चिरंजीव रहो, गंभीर स्नेह से तुम्हारी जोडी क्यों न जुड़ी रहे ? तुम दोनों से में कौन घटकर है ? एक वृषभानु की पुत्री है तो दूसरा वीर बलराम का भाई है (दोनों ही उच्च वंशों के हैं।

व्यंग्य रूप से मजाक होती है, कि एक बैल की बहिन है तो दूसरा बैल का भाई है।

८. नित प्रति.........अनेक ॥

परिचय—राधा और कृष्ण दो होते हुए भी एक हो रहे हैं, पर उनके सौन्दर्य दर्शन को हजार नेत्र चाहियें।

शब्दार्थ--एकत-एकत्र, एक स्थान पर । बैस—आयु। जुगलकिसोर-नवयुवक जोड़े। लखि-देखने को। लोचन—नेत्र।

अर्थ—राधा और कृष्ण दोनों एक मन, एक वर्ण और एक आयु होकर सदा एक ही स्थान पर रहते हैं, पर उनको देखने के लिए नेत्रों के अनेक जोड़े (Pair) चाहियें।

भाव यह है, कि राधा और कृष्ण प्रेम में दो से एक हो गये हैं। उनके इस सौन्दर्य को देखने के लिए दो आंखें पर्याप्त नहीं है।

९. मोर मुकुट.........सत चन्द ॥

परिचय—कृष्ण के मुकुट की शोभा का वर्णन है।

शब्दार्थ--चन्द्रकनु-चन्द्रिकाएं। यौं-ऐसे। राजत-शोभते हैं। नंद नंद-कृष्ण। ससि सेखर-महादेव। अकस-ईर्षा। शेषर-सिरपर। सतचंद-सौ चांद।

अर्थ—मुकुट में लगी हुई मोर पुच्छ की चन्द्रिकाओं से भगवान ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो उन्होंने महादेव की ईर्षा से अपने सिर पर, सौ चन्द्रमा लगा लिये हों। महादेव के सिर पर एक चन्द्र होना प्रसिद्ध है।

१०. मकराकृति········ निसान।

परिचय—भगवान कृष्ण के कर्ण कुण्डलों का काम की ध्वजा के रूप में वर्णन है।

शब्दार्थ-मकराकृति=मच्छकी आकृति वाले। कै=के। धर्यो=विजित किया। हियगढ़=मन रूपी किला। समरु=स्मर, काम। लसत=फहराता है। निसान=ध्वजा।

अर्थ--कृष्ण के कानों में पड़े मच्छाकार कुण्डल ऐसे शोभा पा रहे हैं। मानों कामदेव ने मन के किले को जीत कर ड्योढ़ी पर अपने झण्डे फहरा रखे हों, काम की ध्वजा मत्स्य के आकार की होती है और कुण्डल भी मछली के आकर के हैं, इसी सादृश्य को लेकर कवि ने उत्प्रेक्षा की है)।

काम का हृदय में प्रवेश कानों या आंखों के द्वार से ही होता है। सो, ऐसा लगता है, काम ने हृदय पर अधिकार करके, दोनों ड्योढ़ियों पर दो ध्वजाएं फहरा रखी हों।

११. मिलि·········जात।

परिचय--भगवान कृष्ण के अभिसार (रात्रि में गुप्त प्रेम-मिलन) का वर्णन है।

शब्दार्थ--मिलि=मिलकर। जोन्ह=चन्द्रिका। सों=से, में। दुहनु=दोनों। रह=रहे है। मंह्रिजात=मैं जाते हैं।

अर्थ--दोनों के (राधा कृष्ण के) शरीर, चन्द्रिका और परछांही में मिले हुए हैं और दोनों (राधा कृष्ण) गली में (चांदनी रात में) चले जा रहे हैं।

कृष्ण का श्याम शरीर चांदनी में पड़ती हुई काली परछांही में मिल रहा है और राधा का चमकदार पीत वर्ण चन्द्रमा की चन्द्रिका में मिल रहा है। किसी को दिखाई नहीं पड़ता।

१२. सोहत.........प्रभात।

शब्दार्थ-सोहत=शोभते है। ओढ़ें=ओढ़े हुए। मनों=मानो। सैल=पर्वत। आतप=धूप।

अर्थ--सुन्दर श्याम वर्ण के विशाल शरीर पर पीताम्बर ओढ़े हुए श्याम ऐसी शोभा पा रहे हैं, मानों नीलम मणि के पर्वत पर प्रातःकाल की धूप पड़ रही हो।

प्रातःकाल की धूप कुछ अरुणिमा लिये होती है। कृष्ण के पट का भी ऐसा ही वर्ण था। उनका श्याम विशाल शरीर नील पर्वत की शोभा दे रहा था।

१३. अधर.........पट जोति।

परिचय-भगवान कृष्ण की मुरली का वर्णन है।

शब्दार्थ—अधर=निचला होंठ। कै=के। परत=पड़ती है। डीठि=दृष्टि, नजर। जोति=ज्योति, झलक। हरित=हरा।

अर्थ—कृष्ण जब अपने अधर पर रखकर हरे बांस की बनी हुई बांसुरी को बजाते हैं, तो उस पर (बांसुरी पर) कृष्ण के होंठ, दृष्टि और पट की झलक पड़ती है, जिससे उसका रंग इन्द्र धनुष के रंग जैसा (रंगबिरङ्गा) हो जाता है।

वसरी का रंग हरा है जो आकाश जैसा है, उसमें ऊपर के होंठ की लाल आंखों की काली और पीले पट की पीली झलक पड़ती है तो विविध वर्ण हो जाते हैं।

१४. त्यों त्यों.........बुझाइ।

परिचय-कृष्ण के सलोने रूप का वर्णन है कि उसे देख कर तृप्ति नहीं होती।

शब्दार्थ—सगुण=गुणवान और लाभ कर। सलोने=सुन्दर और नमकीन। त्यों त्यों=तैसे तैसे। ज्यों ज्यों=जैसे। अघाइ=तृप्त होकर, जी भर कर। जनु=नदी। चख=तेज। तृषा=प्यास।

अर्थ—नेत्रों की गुणवान और सलोने (कृष्ण के) रूप को देखने की तृषा (प्यास) नहीं बुझती। ज्यों ज्यों जी भर के वे (नेत्र) उसका (रूप माधुरी का) पान करते हैं, त्यो नेत्रों की प्यास (दर्शन लालसा) बढ़ती ही जाती है।

सलोना (नमकीन) जल गुण वान होता हैं पर उससे प्यास नहीं बुझती चाहे कितना ही पीलो। भगवान की रूप माधुरी का पान करके भी तृप्ति नहीं होती।

१४. कीने हूं·········लोगु।

परिचय–भगवान के रूप मे डूबा हुआ मन निकाला नहीं जा सकता।

शब्दार्थ—कीनेहुँ=करने पर भी। कोरिक=करोड़। कहि=कहो। मो=मेरा। कौ=का। लौ=नमक।

अर्थ—मेरा मन मोहन के रूप में मिलकर पानी में के नमक के समान हो रहा है। अब कहो, करोड़ यत्न करके भी उसे कौन निकाले।

पानी मे मिले नमक को कैसे निकाला जाय ? मन भी कृष्ण रूप में ऐसा ही मिला है, वह भी कैसे निकले ? उद्धव के प्रति गोपियों की यहउक्ति है।

१७. लाल तुम्हारे·········पलौन।

परिचय—कृष्ण के रूप को एक बार देखकर, पल भर को भी पलक नहीं लगतीं।

शब्दार्थ—लाल=कृष्ण। जासों=जिससे। पलकु=पल भर को। पलौ=पलभर।

अर्थ—हे कृष्ण ! तुम्हारे रूप की यह कौनसी रीति है, कि उससे एक बार आंख लग जाने से (देखने पर), बाद में पल भर

को भी पलक नहीं, लगती (नींद नहीं आती)। देखते ही प्रेम और फिर विरह उत्पन्न हो जाते हैं।

१६. या अनुरागी.........

परिचय—कृष्ण के रंग में डूब कर चित्त निखरता जाता है। भक्ति से मन स्वच्छ होता है।

शब्दार्थ—अनुरागी=अनुराग वाले और लाल रंग का। गति=हालत। बूड़ै=डूबता है। स्याम=कृष्ण और कालावर्ण। उज्जलु=उज्वल, साफ और सफेद।

अर्थ—इस (अपने) अनुरागी मन की दशा कुछ समझ में नहीं आती, यह ज्यों ज्यो श्याम रंग (प्रेम) में डूबता है स्वच्छ और निर्मल होता जाता है।

श्याम (काले) रंग में डूबकर तो वस्तु काली होनी चाहिये न कि उजली ? यही अनुरागी चित्र की विलक्षण दशा है।

१८—हरि छबि.........नैन।

परिचय—जब से भगवान की छवि देखी हैं आंखों से नीर बहता रहता है।

शब्दार्थ-हरि=कृष्ण। तै=से। छिनु=क्षण भर। ढरत=ढलते हैं। तिरत=तिरते हैं। घरीलौं=घड़ी के समान प्राचीन कालमें पानी मे छेद वाली एक कटोरी डाल दी जाती थी और उसमे पानी भरने की रफ्तार से समय का अनुमान किया जाता था। वह कटोरी अपने खाली होती भरती रहती और डूबती उतरती रहती थी।

अर्थ—ये नेत्र जब से कृष्ण की शोभा रूपी जल मे पड़े हैं, तब से उससे, (जल से) क्षण भर को भी नही बिछुड़ते, भरते, ढलते और डूबते उतराते रहते हैं, घड़ी जैसी दशा हो रही है। घड़ी

की कटोरी जैसे भरती, ढलती रहती है, यही दशा कृष्ण, विरह में नयनों की है।

१६. हरि भजत..........रंग गुपाल।

परिचय-भगवान गुणों के अभिमानी से दूर भागते हैं और निर्गुणी निरभिमानी के समीप रहते हैं।

शब्दार्थ—भजत=भागता है। पीठि=पीठ। दै=देकर। विस्तारन=आत्म प्रशंसा करना और फैलाना। चगरंग=पतंग के ढंग से। गुपाल=गोपाल। निगुन=गुण रहते, विधाग के।

अर्थ—पतंग के समान गोपाल गुण विस्तार (बखान) के समय मुख मोड़कर दूर भागते हैं और नगुण होने पर पास में हो प्रकट होकर दर्शन देते हैं।

पतंग को ढील देने पर जैसे वह दूर उड़ता भागता है और, डोर को खींच लेने से पास में हो आजाता है, इसी प्रकार भगवान भी गुणों का बखान करने पर विमुख हो जाते हैं, गुणों से रहित निरभिमान के भाव में रहने पर वे पास ही प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

२० मानहु..........पायन्दाज।

परिचय—किसी नायिका (राधा) के स्वाभाविक सौन्दर्य का वर्णन है जिसके लिए भूषण व्यर्थ हैं।

शब्दार्थ-विधि=ब्रह्मा जी। अच्छ=निर्मल। काज=लिए। पायंदाज=पांव पोंछने का झाड़न (Door mat) राखिबै=रखने को।

अर्थ-राधा के सुन्दर शरीर की निर्मल कान्ति को स्वच्छ सुरक्षित रखने के लिए, नज़र के पांव पोछने के उद्देश्य से, ब्रह्मा जी ने भूषणों को मानो पायन्दाज बनाया है।

राधा के शरीर का स्वच्छ सौन्दर्य, देखने से भी मैला होता है। अतः नज़र से बचाने को ब्रह्मा जी ने भूषण पहिना दिये, जिससे पहिले भूषणों पर पड़ कर फिर कान्ति पर पड़े।

२१. कहलाने··············निदाघ।

परिचय–गर्मी के मारे पशु पक्षी स्वाभाविक वैर भूल कर एकत्र पड़े हैं।

शब्दार्थ–कहलाने=क्यों, किस लिए। एकत=एकत्र, एक स्थान पर। अहि=सर्प। मयूर=मोर। सौं=जैसा। दीरघ=लम्बी। दाघ=गर्मी, तपिश। निदाघ=ग्रीष्म काल।

अर्थ–सर्प, मोर, मृग और शेर एक ही जगह किस प्रकार पड़े हैं? क्यों कि लम्बी ग्रीष्म ऋतु ने संसार को तपोवन सा बना रखा है।

स्वयं प्रश्न करके कवि ने उत्प्रेक्षा की है। पशुगण गर्मी में होश भूले हुए हैं। कवि कहता है, मानो तपोवन हो गया है, जहां तपोवन के कारण सब वैर भूल गए हैं।

२२. इहीं आस··············फूल।

परिचय–आशा ही जीवन है। प्रेमी आशा के बल पर ही जीता है।

शब्दार्थ–इहीं=इसी। अलि=भ्रमर। मूल=जड़। ह्वै हैं=होंगे। डारनु=डालियों। वे=पहिले वाले।

अर्थ—इन्हीं डालियों में, वसन्त ऋतु में, फिर वे ही पुष्प विकसित होंगे, इसी आशा से भ्रमर गुलाब की जड़ में लिपटा रहता है (पुष्पों की ऋतु की समाप्ति के बाद में भी)।

२३. दीरघ सांस············कबूलि।

परिचय—विपत्ति में सन्तोष करो, हाय-हाय क्यों करते हो?

शब्दार्थ–सांइहि=स्वामी (परमात्मा) को। दई=विधि, दी और दइया (हाय)। सु=उसे। कबूलि=कबूल, स्वीकार करो।

अर्थ—दुःख में लम्बी साँसें क्यों लेता है? और सुख में स्वामी को क्यों भूलता है? दई (ईश्वर) ने जो (सुख-दुःख) दिया है उसे सन्तोष से कबूल कर (हाय-हाय करने से क्या लाभ?)।

२४. नीच हिये हुलसे……होत।

परिचय—नीचों के हृदय गेंद के समान जितना पिटते हैं, उतना ही उछलते हैं।

शब्दार्थ—हिये=दिल। हुलसे=उछलते। पोत=बच्चा, शिशु। माथै=माथे में।

अर्थ—गेंद जैसे बच्चों के द्वारा माथे में चोट मारी जाने पर उतनी ही ऊपर उछलती है, इसी प्रकार नीच का भी जितना अपमान होता है, वह उतना ही उछलता है, (गेंद भी अन्दर से सारहीन, केवल हवा से फूली होती है और नीच के अन्दर भी कोई सार या गुण नहीं होता)।

२५. कैसे छोटे……कै चाम।

परिचय—बड़ों के काम में बड़े ही आ सकते हैं, छोटे नहीं।

शब्दार्थ—नरनु=आदमियों। तैं=से। सरत=सरता है, चलता है। दमामो=नगारा।

अर्थ—छोटे आदमियों के द्वारा बड़ों का काम कैसे चल सकता है? चूहे की खाल (चमड़ा) नगारा मढ़ने के काम में कैसे आ सकती है? (उसके लिए तो बड़े ही पशु का चमड़ा चाहिये।)

२६. कोटि जतन……को नीचु।

परिचय—करोड़ों यत्न करने पर भी नीच के स्वभाव में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

अर्थ—जल नल के बल से ऊपर चढ़ता है, पर फिर (नल की से बाहर निकलने पर) नीचे का नीचे ही चला जाता है। इसी प्रकार

करोड़ों यत्न करो पर नीच का स्वभाव नीच ही रहता है, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

२७. लटुलौं प्रभु·········ह्वै जाइ।

परिचय—प्रभु के अपनाने पर निर्गुणी भी गुणी और छोड़ देने पर गुणी भी निर्गुणी हो जाता है।

शब्दार्थ—लटुलौं=लट्टू के समान। गुन=धागा और गुण। निगुनी=बिनाधागे और गुण शून्य। गहैं=पकड़ने पर, अपनाने पर। तैं=से। ह्वै=हो। जाइ=जाता है।

अर्थ—प्रभु जिसका लट्टू के समान हाथ मे ग्रहण करते हैं, उस निर्गुणी (बिधागा और गुण रहित) में भी गुण (धागा और गुण) लिपट जाते हैं और जब वे हाथ से छोड़ देते हैं, तो वह गुणी (धागे वाला और गुण वाला) भी गुण रहित हो जाता है। लट्टू भी चलते वक्त धागे से रहित होता है, चलाने से पहिले हाथ में ले कर उस में रस्सी लपेटी जाती है।)

२८. दुसह दुराज·········रवि चन्दु।

परिचय—परस्पर असहन शील दो राजाओं के एकत्र शासन में अविरत संघर्ष के कारण दुःख क्लेश बढ़ा ही करते हैं।

शब्दार्थ-दुसह=असहन शील, विरोधी। दुराज=दोराजाओं का राज्य। दुखुदन्दु=दुख द्वन्द्व। रवि=सूर्य। मिलि=मिल कर।

अर्थ—दो राजाओं के शासन में रहने वाली प्रजा की विपत्ति क्यों न बढ़े ? अमावस्या के दिन (आकाश के दो राजा) सूर्य और चन्द्र परस्पर मिल कर संसार में अधिक ही अंधेरा कर देते हैं (अमावस्या के दिन सूर्य ग्रहण माना जाता है)।

२९. बसै बुराई·········सनमानु।

परिचय—संसार में सज्जन को कोई नहीं पूछता, दुष्ट की पूजा होती है।

शब्दार्थ—जासु=जिसके। ताही को=उसी का। छोड़िये=छोड़ देते हैं।

अर्थ—संसार में जिस के हृदय में बुराई रहती है, उसी का आदर होता है। अच्छे ग्रहों को लोग अच्छा है, अच्छा है कह कह छोड़ देता है पर खोटे ग्रहों के लिए जप दान आदि किये जाते हैं।

३०. कहैं यहै.........राजा रोग।

परिचय—राजा रोग और पाप निर्बल को ही दबाते हैं।

शब्दार्थ—स्रुति=वेद, श्रुति। सुम्रत्यौ=स्मृतियों ने। निसक=अशक्त, निर्बल।

अर्थ—श्रुति, स्मृतियों और सयाने लोगों ने यही बताया है कि राजा, रोग और पाप ये तीनों असमर्थ आदमी को ही दबाते हैं (सबल को नहीं।)

३१. बड़े न हूजै.........न जाई।

परिचय—नाम मात्र की बड़ाई पाने से कोई बड़ा नहीं हो जाता।

शब्दार्थ—बड़े=बड़ा। हूजै=होगा। बिरद=नाम। पाई=पाकर। कनक=सुवर्ण और धतूरा। जाई=जाता।

अर्थ—नाम मात्र की बड़ाई पाकर कोई बड़ा नहीं बन जाता। धतूरे को भी कनक कहते हैं, पर उससे गहने नहीं बढ़े जा सकते।

३२. गुनी गुनी.........उदो तु।

परिचय—लोगों के झूठों ही गुणी गुणी कहने से भी कोई गुणी नहीं बनता।

शब्दार्थ—कैं=के। कहैं=कहने पर। तरु=वृक्ष। अर्क=आक और सूर्य। उदोतु=प्रकाश।

अर्थ—सबके गुणी गुणी कहे जाने पर भी कोई गुण रहित व्यक्ति गुणी नहीं हो जाता। आक के वृक्ष को भी अर्क कहते हैं, पर क्या कहीं उससे अर्क (सूर्य) के समान प्रकाश होता सुना है? अर्थात् नहीं।

३३ संगति सुमति.........होइ सुगन्ध।

परिचय—दुःसंगति में पड़कर व्यक्ति सुबुद्धि नहीं प्राप्त कर सकता है !

शब्दार्थ—संगति=सदाचरण। सुमति=सुबुद्धि। कै=के। धंध =काम। मेलि=मिलाकर।

अर्थ—कुमति के कामों में पड़े रहते हुए सदाचरण और सुबुद्धि नहीं मिल सकते। हींगको काफूर में कितना ही मिला कर रख दो, किन्तु उसमें (हींग में) सुगन्ध पैदा नहीं हो सकती (दुर्गन्ध ही रहेगी)।

३४ नर की अरु.........ऊंचो होई।

परिचय—मनुष्य जितना नीचे होकर चलता है, उतना ही ऊंचा उठता है, उसका सम्मान बढ़ता है।

शब्दार्थ—एकै=एक ही। जोई=देखी। जे तौ=जितना भी। ह्वै=होकर।

अर्थ—फव्वारे के पानी और मनुष्य की हमने एक जैसी दशा देखी है। ये दोनों जितना भी नीचे होकर चलते हैं, उतने ही ऊंचे होते हैं।

मनुष्य जितना नम्र होगा, संसार उसका उतना ही आदर करेगा नीर को फव्वारे की नली में जितना ऊंचे से नीचा पहाकर छोड़ेंगे, धार उतनी ही ऊंची उठेगी।

३५ बढ़त बढ़त.........कुम्हिलाइ।

परिचय—मन का सम्पत्ति में विकास और विपत्ति में समास (संकोच) होता है।

शब्दार्थ—सलिल=जल। सरोज=कमल। बरु=बल्कि, चाहे। समूल=जड़ साथ।

अर्थ—मनुष्य का मन रूपी कमल सम्पत्ति रूपी जल के बढ़ते

बढ़ते बढ़ता जाता है, पर उसके (सम्पत्ति जल के) घटते घटते फिर वह(मन कमल)नहीं घटता, बल्कि अन्त में जड़ समेत सूख जाता है।

कमल जल के साथ बढ़ता है और घटने पर नष्ट हो जाता है। ऐसे ही मन ऐश्वर्य के साथ।

३६ अति अगाध.........प्यास बुझाइ।

परिचय—संसार में अथाह पानी मिलने पर भी जिसकी जहाँ प्यास बुझे उसके लिए वही सागर है।

शब्दार्थ—अगाध=अथाह। औथरो=समीप में, सुलभ। सरि=सर, ताल। बाइ=बावली, बावड़ी। सागुरु=समुद्र। जाकी=जिसकी।

अर्थ—संसार में नदी और कूपों में अथाह जल मिलता है और तालाब और बावड़ी में सुलभतया जल मिल जाता है। पर उसके लिए वही सागर है, जहाँ उसकी प्यास बुझे। (जिसका जिससे प्रयोजन सिद्ध हो, उसके लिए वही भगवान है)।

३७ सोहतु संग.........जोगु।

परिचय—मैत्री या साथ समान व्यक्ति से ही सोहता है।

शब्दार्थ—सोहतु=सोहती है। सौं=से। सबु=सब। बनै=फबती है। जोगु=योग्य।

अर्थ—पान की पीक होठों पर ही फबती है, और सुर्मा आँखों के ही योग्य होता है। इसी प्रकार, सभी सयाने लोग कह गये हैं, संग या मित्रता समान से ही शोभा पाती है (असमान से नहीं)।

३८ बुरो बुराई......उतपातु।

परिचय—दुष्ट कभी बुराई छोड़कर भलाई करने लगे तो लोग शंकित होते हैं।

शब्दार्थ-जो=अगर। तजै=छोड़ दे। सरौ=अद्भुत,सज्जन। सकातु=

भय या शंका करता है। ज्यौं=जैसे। निकलंकु=निष्कलंक। मयंकु=चन्द्र। गनैं=समझते हैं। उतपात=अनिष्ट।

अर्थ—जैसे निष्कलंक चन्द्रमा को देख कर लोग किसी अनिष्ट की शंका करके भयभीत हो जाते हैं, इसी प्रकार दुष्ट भी दुष्टता छोड़ दे तो लोग किसी अनिष्ट की आशंका से डर जाते हैं। (दोनों ही अस्वाभाविक घटनाएं हैं, अतः शंका होती है)।

३९ जिन दिन······डार।

परिचय—कोई बीत यौवना नायिका अपने पूर्व रसिक से कह रही है कि अब वह बहार नहीं रही है।

शब्दार्थ—कुसुम=पुष्प। सु=वह। अपत=बिना पत्तों के। डार=डाल।

अर्थ—हे भ्रमर! जब तुमने वे [पहले वाले] पुष्प देखे थे, वह बहार [बसन्त ऋतु] तो बीत चुकी है। अब तो उस गुलाब की बिना पत्तों की [फूल की बात तो दूर] सूखी डालियां ही अवशिष्ट रह गई हैं।

४० इहि आस······वे फूल।

परिचय—फूल झड़ जाने पर भी भ्रमर फिर बहार की आशा में गुलाब की जड़ में अटका रहता है।

शब्दार्थ—इहीं=इसी। अटक्यौं=फंसा। कैं=की। डारनु=डालों। वे=पूर्व परिचित।

अर्थ—बसन्त ऋतु बीत जाने पर भी भ्रमर गुलाब की जड़ में इस उम्मीद से अटका रहता है कि आगे बसन्त ऋतु में इन डालियों में फिर वे ही (उसके पूर्व परिचित) फूल खिलेंगे।

४१ यह कि बड़ाई ······ गुड़ हर फूल।

परिचय--गुण के बिना बाह्य सौन्दर्य की कोई कीमत नहीं।

शब्दार्थ—बहकि=बहक कर। कत=क्यों। रांचति=रंग देती है, मारती है। मति=मत। गड़ै=भावा, रुचता। मधुकर=भौंरा। गुड़हर=गुड़हल का पुष्प, सुन्दर पर निर्गन्ध होता है, भ्रमर पसन्द नहीं करता।

अर्थ—(एक सखी दूसरी सखी से अपनी शेखी मारती हुई कह रही है) अरी इतनी बहक कर अपनी बड़ाई क्यों मार रही है? मत भूल, बिना मधु के गुड़हल का फूल भ्रमर के मन में नहीं गड़ता (रुचता)।

शरीर का सौन्दर्य होते हुए भी, गुण के बिना रसिक कद्र नहीं करता, जैसे भ्रमर सुन्दर रूप वाले गुड़हल के फूल से प्रेम करता।

४२ जदपि पुराने······मराल।

परिचय—यहां सब बगला भक्त रहते हैं, हे हंस [उत्तम पुरुष]! तू यहां क्यों आ गया? तेरा मेल नहीं बैठेगा।

शब्दार्थ—जदपि=यद्यपि। बक=बगुले। कुचाल=कुचाली। तु=तो भी। कहा=क्या।

अर्थ—हे! सुन्दर मराल! [हंस!] इस सरोवर में यद्यपि पुराने बगुले हैं, पर वे सब निपट कुचाली हैं। और अगर नये भी बगले हों तो भी क्या लाभ? [वे तो बगले ही रहेंगे, नये हों या पुराने। तुम्हारा यहां मेल नहीं बैठेगा। [किसी दुष्टों की मण्डली में नवागत सज्जन को कहा जा रहा है।]।

४३ अरे हंस या······बिडरि।

परिचय—इस नगर में प्रेमी सज्जन का आदर नहीं है, पथिक सोचकर जाना।

शब्दार्थ—या=इस। जैया=आइयो। दई बिडारी=भगादी।

अर्थ—अरे हंस! इस नगर में सोच विचार कर घुमना। यहां लोगों ने कागों से प्रीति करके कोयलों को भगा दिया है।

इस नगर में गुणी साधु पुरुष की गुंजाइश नहींहै। यहां के लोगों ने तो कोयलों को छोड़ कर कागों से प्रेम किया है अर्थात गुणियों का आदर न करके अवगुणियों को आदर दिया है। हंस की उक्ति से किसी साधु पुरुष को कहा जा रहा है।

४४. को कहि सके.........बे फूल।

परिचय—बड़ों की भारी भूल की ओर से भी संसार आँखें बन्द कर लेता है।

शब्दार्थ—को=कौन। सौं=से। लखैं=देखने पर। त्यों=चाहे। डारन=डालियों।

अर्थ—बड़े आदमियों की चाहे कितनी ही भारी भूल हो, उसे देख कर कौन क्या कह सकता है? ब्रह्मा ने गुलाब की इन कांटे दार झाड़ियों में ऐसे सुन्दर पुष्प दिये (पर कौन कहे उन्हें?)

४५. वे न यहां.........गुलाब।

परिचय—हे बढ़ई! यहां इस गांव में कोई गुण ग्राहक नहीं।

शब्दार्थ—नागर=चतुर लोग। आब=आना। तो=तेरा। गंवई=नष्ट हो गया।

अर्थ-हे बढ़ई! इस गांव में ऐसे सभ्य चतुर नागरिक ही नहीं है जिन्हें तुम्हारे आने का आदर होता। यहां तो फूला हुआ गुलाब का पेड़ भी नष्ट हो गया (किसी ने ध्यान नहीं दिया। तुम तो अभी आये ही हो।)

४६. कर लै सूंघि.........गाहक कौन।

परिचय—हे गंधी! इस गांव में कोई गुणज्ञ नहीं है। फिजूल टक्कर मार रहे हो।

शब्दार्थ—लै=लेते हैं। सूंघे=सूंघ कर। सराहिहूं=सराह कर भी। गहि=पकड़ कर। मौन=चुप्पी। गंवई—इस गाँव में।

अर्थ—रे मूर्ख ! गंधी ! तेरे इस गुलाब के इत्र का इस गांव में कौन गाहक है ? सब हाथ में लेते हैं, सूंघते हैं, सराहते भी हैं और चुप्पी पकड़ कर (धार कर) रह जाते हैं (आर्डर कोई नहीं देता)

४७. को छूट्यो.........उरझत जात ।

परिचय—इस संसार बन्धन में पड़ कर कोई नहीं छूटता । ज्यों ज्यों प्रयत्न करे, अधिक ही उलझता है ।

शब्दार्थ—परि=पड़ कर । कत=क्यों । कुरङ्ग=मृग । अकुलात =व्याकुल होता है । सुरझि=सुलझ कर । भज्यो=भागना ।

अर्थ—हे मृग ! क्यों व्याकुल होते हो ? इस (व्याध के) जाल में पड़ कर कौन छूटा है ? ज्यों ज्यों तुम सुलझ कर भागना चाहते हो, त्यों त्यों और भी उलझते जाते हो ।

कुरङ्ग की अन्योक्ति से संसार के क्लेश में पड़े किसी व्याकुल होते हुए व्यक्ति से कहा जा रहा है, कि धैर्य रख ।

४८. पटु पांखें.........तुही बिहंग ।

परिचय—कवि कबूतर के स्वच्छन्द जीवन की प्रशंसा करता है ।

शब्दार्थ—पटु=वस्त्र । पांखे=पङ्ख । भखु=खाता है । कांकरै=कंकर । सफर=सफर । परेई=कबूतरी, पक्षिणी । परेवा= पक्षी । पुहुमी=पृथ्वी । एकै=एक । बिहंग=आकाश में उड़ने वाला जीव ।

अर्थ—हे आकाश में स्वच्छन्द विचरण करने वाले पक्षी ! इस भूमि पर वस्तुतःएक तुम ही सुखी हो । पंखरूपी वस्त्र पङ्ख तुम्हें प्राप्त हैं, कांकर चुगते हो, हर वक्त पक्षिणी (प्रिया)साथ रहती है । तुम से बढ़ कर और कौन सुखी होगा ? किसी से कुछ गर्ज नहीं रखते हो ।

४९. दिन दस.........के फेर ।

परिचय--संयोग से कुछ दिन का ओहदा पा कर आपे से बाहर न हो, फिर कोई नहीं पूछेगा ।

शब्दार्थ—बखान=प्रशंसा । जौ लौं=जब तक । तोलौं=तब तक । तो=तेरा ।

अर्थ--अरे बच्चे ! दस दिन का आदर पाकर अपनी बड़ाई आप मारले । श्राद्ध पक्ष बीतने पर तेरा समान नहीं रहेगा । तब तक आदर है जब तक श्राद्ध हैं ।

५० मरत प्यास·········बलि की बेर ।

परिचय— काल चक्र बहुत बलवान् है, प्राणी कुछ नहीं है ।

शब्दार्थ—सुआ=तोता । समै=समय । आदर दै=आदर देकर । वायसु=काग ।

अर्थ —काल चक्र में पड़ कर तोता (जिसको लोग प्यार से पालते हैं) भी पिञ्जरे मे पड़ा पड़ा बेचारा प्यासा मर जाता है और समय के ही कारण श्राद्धांजलि देने के लिए काग को बड़े आदर के साथ बुलाया जाता है। समय ही सब कुछ कराता है ।

५१. नहीं पावस··· ······फल फूल ।

परिचय--कष्ट पाये बिना कोई फल नहीं मिलता ।

अर्थ—हे वृक्षराज ! भूल नहीं करो । यह वसन्त है । वर्षा काल नहीं है । एक बार पत्र रहित हुए बिना, तुम्हें पत्र, पुष्प और फल कैसे मिल सकते हैं ? (पहिले कष्ट पाओ, तपस्या करो, फिर समय आने पर फल मिलेगा) ।

५२. जो सिर धरि·········पाइ ।

परिचय--जो कोई सिर की चीज़ पांव में पहनेगा, वह अपनी ही मूर्खता प्रकट करेगा ।

शब्दार्थ—धरि=धार करके । लही=पाई । लहियति=प्राप्त करते हैं । राई=राव । जड़ता=मूर्खता । यै=ही । पाइ=पांव ।

अर्थ—जिसे सिरपर धारण करके संसारमें राजा रावों ने कीर्ति पाई की है, उसी (मुकुट को कोई यदि पांव में पहिनता है) तो अपनी ही मूर्खता व्यक्त करता है। (मुकुट का निरादर नहीं होता)।

भाव यह है कि कोई आदर की वस्तु का निरादर करता है तो अपनी ही मूर्खता व्यक्त करता है।

५३. चले जाइ·········कुम्हार।

परिचय—यहां कोई गुणज्ञ नहीं। व्यापारी ! तुम्हारी वस्तुओं को खरीदने योग्य यहां कोई नहीं।

शब्दार्थ—हयां=यहां। जाइ=जाओ। को=क्या। पुर=नगर। ओड़=भेड़ के चरवाहे।

अर्थ— रे व्यापारी ! तुम जानते नहीं हो, इस गांव में तो सब धोबी, ओड और कुम्हार जैसे नीच जाति के असभ्य लोग रहते हैं। यहां तुम्हारे हाथियों का व्यापार कौन करेगा ? (अयोग्य व्यक्तियों को अपना माल दिखा कर वृथा समय नष्ट नहीं करो)।

५४. करि फुलेहा·····काहि।

परिचय—किसी ऐसे गुणी को कहा जा रहा है कि यहां तुम्हारे गुण ग्राहक कोई नहीं है।

शब्दार्थ—मति अन्ध=बेवकूफ। काहि=किसे। फुलेल=इत्र। सराहि=प्रशंसा कर के। कौ=का।

अर्थ—अरे बेवकूफ गंधी ! तू किन को अपना इत्र दिखा रहा है ? ये लोग तो उसका (इत्र का) आचमन कर के, प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि 'अच्छा है, मीठा है (वे सहूरे हैं। तुम्हारा इत्र क्या खरीदेंगे ? इन्हें तो यह पता भी नहीं कि इत्र सूंघन की वस्तु है।)

५५. जगत् जनायो·····देखन जाहि।

परिचय—ब्रह्म के द्वारा सब का ज्ञान होता है, पर ब्रह्म को कोई नहीं जान सकता।

शब्दार्थ—जनायो=ज्ञान कराया। जिहि=जिसने। सकलु=सारा। सो=वह। ज्यों=जैसे। आंखिनु=आंखों से। जाहि=जाती।

अर्थ—जैसे आंखों से समस्त जगत् को देखते हैं, पर उन्हें ही नहीं देख सकते, इसी प्रकार ईश्वर (चैतन्य) के द्वारा हम समस्त जगत् का ज्ञान करते हैं, पर उसी को नहीं समझ पाते (वह समस्त जगत् का ज्ञान कराता है, अपना ही नहीं कराता)।

५६. जप माला.........रांचै रामु।

परिचय—भगवान् सच्चे मन से प्रसन्न होते हैं, जप माला आदि से नहीं।

शब्दार्थ—छापा=तिलक के छापे, जो जमना जी पर लगते हैं घाट पर। सरै=सरता है। एकौ=एक भी। कांचे=कच्चे। रांचै=खुश होते हैं।

अर्थ—यदि मन कच्चा (झूठा) है तो भक्ति में नाच करना व्यर्थ है, (उस दशा में) जप, माला, छापा, तिलक आदि से एक भी काम नहीं चल सकता। राम तो केवल सच्चे मन से ही प्रसन्न होते हैं।

५७. यह जग......."रूप अपार।

परिचय—वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद का निरूपण है। जब प्रकृति में ब्रह्म का ही एक रूप प्रकृति के आकृति भेद से विविध रूपों में भासता है।

शब्दार्थ—काचो=कच्चा। सो=सा। निरधार=निश्चय पूर्वक। एकै=एक ही।

अर्थ—मैंने निश्चय पूर्वक जान लिया है, कि यह संसार कच्चे कांच के समान है, जिसमें एक ही रूप (ब्रह्म का) अपार (अनन्त) रूपों में प्रतिबिम्बित होता हुआ दिखाई देता है।

५८. तौ लगु या.........कपट-कपाट।

परिचय—मन में जब तक कपट भरा है, भक्ति वहां नहीं आ सकती।

शब्दार्थ–तौ लग = तब तक। मन–मदन=मन रूपी घर। कि हि बाट=किस रास्ते। जुटे=लगेहैं। जौलगु=जब तक। निपट= चौपट बिल्कुल। कपाट=किवाड़।

अर्थ—जब तक दृढ़ता से बन्द हृदय के कपट के किवाड़ पूरी तरह नहीं खुल जाते, तब इस मन रूपी घर मे भगवान किस रास्ते से आयें? (आही नहीं सकते)

५६. याभव.........ही आई।

परिचय—संसार सागर से पार जाने में स्त्री का आकर्षण बड़ा प्रबल होता है।

शब्दार्थ—या=इस। भव = संसार। पाराबार = सागर। उलंघि = लांघकर। जाइ=जाय। तियछवि = स्त्री की छवि। छाया ग्राहिणी=लंका के समुद्र की एक राक्षसी, जो ऊपर उड़ते पक्षियों की छाया पकड़ कर ही उन्हें नीचे गिरा कर खा जाया करती थी। गहै=पकड़ लेती है। आइ = आकर।

अर्थ—इस संसार सागर को लांघ कर पार कौन जाय? स्त्री की शोभा रूपी लंकिनी राक्षसी बीच में ही आकर पकड़ लेती है (और जाने नहीं देती)।

विरक्ति के मार्ग में सन्तों ने स्त्री को बड़ा बाधक माना है। उसी भाव को बिहारी ने लंकिनी के रूपक से बताया है।

६० भजन कह्यौ.........गंवार।

परिचय–भगवान का भजन नहीं किया और विषयों का सेवन किया। तेरे से बढ़कर गंवार कौन होगा?

शब्दार्थ–भजन=भजन करना। तातैं=उससे। भज्यो=भागा। भज्यौ=भजन किया। एकौ=एक भी। जातैं=जिससे। तैं=तूने।

अर्थ—रे गंवार। जिस वस्तु (विषय-वासना से) तुझे दूर भागने को कहा था, उसको तो तूने भजा (उस में मन लगाया) और जिस का तुझे भजन करने को कहा था (अर्थात ईश्वर का), उससे तू दूर भागा (तेरा कहां कल्याण होगा ?)।

६१. पतवारी.........नाउं।

परिचय—भगवान नाम और उनकी भक्ति के आश्रय से संसार से पार हो जाओ।

शब्दार्थ-पतवारी=नौका की पतवार, जो नौका का रुख फेरती है। पकरि=पकड़ कर। पयोधि=समुद्र। नामैं=नाम को। नाउं=नौका। करि=करके।

अर्थ—हरिनाम की नौका बनाकर, माला की पतवार पकड़ कर, ससार समुद्र से पार हो जाओ (भक्ति के द्वारा संसार पार होना आसान है)।

६२ यह बिरिया.........पयोधि।

परिचय—तू पापी हैं, उसी को ढूंढ, जिसने पत्थर पानी पर तैराये थे।

शब्दार्थ-बिरिया=बारी। करिया=पापी। सोधि=ढूंढ़। पाहन=पत्थर। चढ़ाइ=चढ़ाकर। जिहिं=जिसने। पयोधि=सागर।

अर्थ-यह किसी और की बारी नही हैं (अपनी है), तू महा पापी है, उसी को ढूंढ, जिसने पत्थर की नाव पर चढ़ा कर सेना को पार उतार दिया था (वही तुम्हे भी भव सागर के पार लगायेगा, और की सामर्थ्य नहीं) है।

६३ जात जात.........मैं मोष।

परिचय-धन के जाने पर जो सन्तोष होता हैं, वह यदि उसके होने पर हो तो मोक्ष हो जाये।

शब्दार्थ—वितु=धन। ज्यों=जैसे। त्यों=वैसे ही। होइ=हो। मोष=मोक्ष।

अर्थ—धन के जाते समय जैसा सन्तोष होता जाता है, वैसा यदि धन के रहते रहते हो जाय तो घड़ी में मोक्ष हो जाय (धन रहते चित्त में यदि सन्तोष हो जाय तो पलभर में मोक्ष हो जाय)।

भूषण

(भवानी स्तुति)

१. जै जयन्ति·········जग जननि।

परिचय—भूषण अपने शिवराज यशो भूषण नामक ग्रन्थ के प्रारम्भ में आदि शक्ति के काली रूप की स्तुति कर शिवाजी के लिए विजय का वरदान मांगते हैं और उसी का सारस्वती के रूप में वर्णन कर अपनी ग्रन्थ समाप्ति में भी व्यंग्य रूप से सफलता मांगते हैं।

शब्दार्थ—जै जयन्ति=जय हो, विजय दाओ। आदि सकति=आद्या शक्ति। कालि=भयंकर, काल रूप वाली। कालिका=देवी का नाम। मधु कैटभ=दो राक्षसों के नाम। छलिनी=छलने वाली। महिष विमर्दिन=महिषासुर को मसलने वाली। चमुंड, चण्ड, मुण्ड, भंड=राक्षसों के नाम, जिन का चण्डी ने वध किया था। असुर=राक्षस। खण्डिनि=खण्ड २ करने वाली। सुरक्त, रक्त बीज, बिड़डाले=राक्षसों के नाम। बिड़डिनि=नाशिनी। निसुंभ, सुंभ=राक्षसों के नाम। दलिनि=दलने वाली। भनि=कहता है। भनति=सरस्वती। सरजा=शिवाजी की वीरता की उपाधि। समत्थ=समर्थ, बली। कहूं=को। बिजै=विजय।

अर्थ—हे जगन्माता ! आदि शक्ति । काली कमर्दिनी । विजय दात्री । तू 'सरजा' बली शिवाजी को विजय का वरदान दे । तूने मधु और कैटभ को छला (छल से मार डाला) तेरी जय हो । महिषासुर को मसल डाला, चमुंड चण्ड मुण्ड मण्ड आदि असुरों को खण्ड खण्ड किया, सुरक्त रक्त बीज बिड़डाल आदि का नाश किया, हे माता ! तू शुंभनिशुंभ आदि का दलन करने वाली है, तेरी जय हो । कवि भूषण कहते हैं, हे माता ! तू सरस्वती (मुझे ग्रंन्थ समाप्ति का वरदान देने वाली) भी है, तेरी जय हो ।

शक्ति के जिन गुणों का वर्णन कवि ने किया है, उन्हीं गुणों का वरदान शिवाजी को भी चाहिये । शक्ति ने जैसे, छल से, धोखे से, बेवक़ूफ़ बना कर, बल से और पराक्रम से शत्रु राक्षसों का संहार किया था, शिवाजी भी उसी नीति का आश्रय लेते थे और छल और बल दोनों से काम लेते थे । अतः भूषण का वर्णन विशेष अभिप्राय पूर्ण है ।

शिवाजी का जन्म

२. जा दिन जनम·········पात सात को ।

परिचय—शिवाजी जन्म से ही प्रतापी और वीर थे, खेल खेल में ही उन्होंने शत्रुओं को परास्त कर दिया ।

शब्दार्थ—जा=जिस । भू=पृथ्वी । भुसिल भूप=भोंसला वंश का राजा । ताही=उसी । अरि उर=शत्रु का हृदय । छठी=बच्चे का छटे दिन का संस्कार । छत्र पतिन=राजाओं । करन प्रवाह= टैक्सों का प्रवाह, राजस्व कर की आय । भनत=कहता है । साहि के=साहू शिवाजी के पिता का नाम था । करि=करके । चक्क=दिशा । लरिकाई=बचपन ।

अर्थ—भूषण कहते हैं, भूमि पर अपने जन्म दिन को ही शिवाजी ने अपने शत्रुओं के मन का उत्साह जीत लिया (वे निरुत्सा-

हित हो गये)। छटी के दिन राजाओं के भाग्य को जीत लिया (अनेक राजओं का राज्य छीना जाना उनके भाग्य में लिख दिया गया)। नाम करण संस्कार वाले दिन टैक्सों के प्रवाह को जीत लिया (टैक्स वसूल करने लगे)। बाल लीला में ही अनेक गढ कोट जीत लिये ! साहू के सुपुत्र शिवाजी ने चारों ओर निगाह फेर कर (चारों दिशाओं को जीतने की इच्छा करके) बचपन में बीजापुर और गोल कुण्डा को जीत लिया और जवानी आने पर दिल्ली के बादशाह को जीत लिया।

शिवाजी को अलौकिक शक्ति से सम्पन्न होना दिखाने का ही कवि का अभिप्राय है, इसीलिए उनके जन्म काल से ही, प्रताप का वर्णन किया गया है।

राय गढ़ वर्णन

३. जा पर साहितनै...... ......ऊपर छाजै।

परिचय—शिवा जी के रायगढ नामक दुर्ग का वर्णन है, जिसमें त्रिलोक की सम्पदाएं हैं, जिन्हें देख कर देवताओं के भी मन मोहित होते हैं।

शब्दार्थ—जापर=जिस पर। साहितनै=साहू का तनय (पुत्र)। सुरेस=इन्द्र। साजै=सज रही है। जपत है=कहता है। लखि=देखकर। अलकापति=इन्द्र। जा मधि=जिसके मध्य में। दीपति=दीप्ति, चमक। वारि=जल। माची=मचान (raised ground) जिस पर दुर्ग बना है। मही=भूमि लोक। अमरावती=इन्द्र की नगरी। छाजै=व्याप्त है।

अर्थ—जिस पर साहू के सुपुत्र वीर शिवाजी रूपी इन्द्र की शुभ सभा विराज रही है, उसकी सम्पत्ति को देख कर, भूषण वर्णन करते हैं, कि अलकापति इन्द्र भी लज्जित होता है। रायगढ इतन

विशाल दुर्गराज है कि उसमें तीनों लोकों का ऐश्वर्य विराज रहा है। जल पाताल सा है, मचान (चबूतरा जिस पर दुर्ग बना हुआ है) भूमि लोकसा है और उन दोनों के ऊपर के भाग में इन्द्र पुरी की शोभा है। (इन्द्र अपनी स्वर्ग की सम्पत्ति के मुकाबले में रायगढ़ की त्रिलोकी की सम्पत्ति को देख कर लज्जित होता है)।

४. मानमय महय.............गाजहीं।

परिचय—राय गढ़ के ही धन समृद्धि का वर्णन है, जो देवताओं के भी मन को लुभाने वाला है।

शब्दार्थ—मनि=मणि । मय वाला । इमि=इस प्रकार। राजहिं=शोभित हैं। जच्छ=यक्ष, एक देव जाति । किन्नर=एक गन्धर्व जाति । हौसनो=जलन । सजिहीं=करते हैं। उत्तंग=उच्च। मरकत=नीली मणि । मन्दिरन=भवनों । मधि=मध्य में। मृदंग=पखावज । जुधा जहीं=जो बजते हैं । समे=समय में। घुमा क्रिकार=घिर कर । घन=जने। घन पटल=मेघ समूह । गल=गर्जन । गाजहिं=गर्जते हैं ।

अर्थ—राय गढ नामक दुर्ग में रत्न मणियों से जड़े हुए शिवाजी के महल ऐसे शोभित हो रहे हैं, जिन को देखकर सुर असुर गन्धर्व किन्नर आदियो के मन में ईर्षा (जलन) होती है। उच्च नील मणि निर्मित सौधों (महलों)में मृदंगों के जो घोरशब्द उठरहे हैं, वे ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों वर्षा काल में बादलों के पटल (समूह) घिर कर घोर शब्द कर रहे हों।

शिवाजी के यश की प्रशंसा

५. चन्दन में नाग.............जस को।

परिचय—शिवाजी के यश की तुलना नहीं हो सकती। तुलना

करने की सभी वस्तुओं में कुछ न कुछ दोष है। कोई भी यश की समता में नहीं आती।

शब्दार्थ---नाग=सर्प। इन्द्रनाग=ऐरावत। अवस=असमर्थ। बहरात=उड़ जाता है। सरद=शरद् ऋतु। बात=वायु। नील ग्रीव=नीली ग्रीवा वाला। पुण्डरीक=कमल। सम=बराबर। सरस=रसीला। छीरधी=जलनिधि। पंक=कीच। को=कौन। कलानिधि=चांद। याते=इसलिए। एक टंक=रंचमात्र। ए=ये। लहैंन=नहीं प्राप्त करते। जसको=यशका।

अर्थ---चन्दन मे सर्प हैं, ऐरावत में मद भरा है, शेषनाग में विष भरा है, असमर्थ हो कर उपमा क्या कहे? मोर ठहरते नहीं, कपूर उड़ जाता है, शरत्काल के मेघ वायु द्वारा दशों दिशाओंमें उड़ाये उड़ाये फिरते हैं। शिव नीली ग्रीवा वाले हैं, भ्रमर कमल में ही बसता है। भूषण कहते हैं, शिवाजी के समान सरस हृदय वाला (कोमल दयालु) और कौन होगा? समुद्र में कीच है, चन्द्रमा मे कलंक है, इस लिए इन में से कोई सी वस्तु भी तुम्हारे (शिवाजी के) यश की रंच मात्र भी समता नहीं प्राप्त कर सकती।

यश की शीतलता के लिए चन्दन, श्वेतिमा के कारण ऐरावत शेषनाग, कपूर, शरद मेघ, शंक, गुंजरित होने के कारण भ्रमर और गंभीरता और सरसता के लिए समुद्र और चन्द्रमा से उपमा दी जाती है। पर कवि ने इन सब मे कुछ न कुछ दोष बता कर निकम्मा कर दिया है। शिवाजी का यश निरुपम है।

६. तो सम हो सेस ········चित्त सुनियै॥

परिचय---इस कवित्त मे भी कवि को शिवाजी के यश की कोई उपमा नहीं मिलती, वह संसार भर मे ढूंढ आया।

शब्दार्थ---सेस=शेष नाग। तो=तेरे। सोतो=रहता। गज=हाथी। ऐरावत=इन्द्र का श्वेत वर्ण के हाथी का नाम। दुरे=छुपे

धर=भूमि । सोऊ=वह भी । दुनियै=दुनिया को । रावरे=तुम्हारे, आपके । कहि=किसको । गुनियं=मानिये । जनौ=जानों । लौं=तक । लखिये=देखिये । केती = कितनी ही ।

अर्थ—भूषण कहते हैं, जहां तक जानता हूँ, वहां तक संसार मे सभी जगह भटक कर थक गया हूँ, पर हे शूरवीर और दानियों के बादशाह महाराज शिवराज ! आज आपके यश के समान किसे समझा जाय ? (मुझे तो संसार भर में कुछ मिला नहीं ।) बहुत सी वस्तुओं के नाम जरूर सुनने में आते हैं, पर प्रत्यक्ष में कोई नहीं देखी जाती । तुम्हारे समान शेषनाग को बतायें, सो वह पाताल में रहता सुना जाता है, ऐरावत नामक इन्द्र के श्वेत हस्ती को बतायें, तो वह भी इन्द्र लोक मे सुना ही जाता है (देखा नहीं किसी ने), हंस मानस सरोवर में छुपे हुए हैं (हंस दिखते नहीं—उनका होना ही माना जाता है), वहीं पर कैलाश भूमि भी (हिम से आच्छादित श्वेत चमकने वाली) बताई जाती है, और सुधा (अमृत श्वेत होता है) का सरोवर है, वह भी संसार मे नहीं रहा है ।

कवि को शिवराज के यश की समता करने वाली कोई वस्तु संसार में उपलब्ध नहीं होती । बहुत सी वस्तुएं सुनी जाती हैं, जिनसे उपमा दी जा सकती है, पर वे सुनी ही जाती हैं, किसी ने देखी नहीं । अतः शिवाजी का यश संसार में अनुपम ही रहता है ।

७. कुन्द कहा..............के आगे ॥

परिचय—इस सवैये में भी भूषण शिवाजी उनके यश और प्रताप को अनुपम रूप में ही वर्णन करते हैं ।

शब्दार्थ—कुन्द=एक श्वेत रङ्ग का पुष्प । पय वृन्द=दुग्ध-समूह कहा=क्या । जश=यश । भानु=सूर्य । कृसानु=कृशानु, अग्नि । दुव=अब । खुमान=शिवाजी की उपाधि । महीतल=पृथ्वीतल ।

पागे=तपने पर। राम=रामचन्द्र। द्विजराम=परशुराम। मैं=में। अनुरागे=प्रेम मे।

अर्थ—शिवाजी के (श्वेत) यश के सामने कुन्द और दुग्धचय की क्या सकत हैं ? पृथ्वीतल पर खुमान वीर शिवाजी के प्रताप के तपते हुए, सूर्य क्या है और अग्नि क्या हैं ? (व्यर्थ है।) शिवाजी के युद्ध-प्रेम के आगे रामचन्द्र क्या हैं और परशुराम भी क्या हैं ? (कुछ नहीं।) और, शिवराज के साहस के सामने बाज (शिकारी पक्षी) भी कुछ नहीं और सिंह भी कुछ नहीं। साहस में ये दोनों शिवराज की प्रतियोगिता नहीं कर सकते।

संक्षेप मे शिवाजी के यश, प्रताप और उनके व्यक्तित्व के सामने संसार की वस्तु नहीं ठहर सकती, वे अनुपम हैं।

८, तेरो तेज सरजा……करसों।

परिचय—इस पद्य में भी शिवाजी के यश प्रताप का परस्परोपमा द्वारा वर्णन है।

शब्दार्थ—दिनकर सो=सूर्य के समान। सोहे=सोहता है। निकर=पुञ्ज। सो=सा। भौंसला=शिवाजी के वंश का नाम। भुवाल=भूपाल। हिमकर=चन्द्र। अकर=समूह, आकर। रतनाकरो=समुद्र भी। साहि=राजा। सुरतरु=कल्पवृक्ष, जो सब कुछ देने की सामर्थ्य रखता है।

अर्थ—हे सरजा उपाधि से विभूषित समर्थ शिववीर ! तेरा प्रताप सूर्य के समान है और सूर्य तेरे प्रताप की तरह शोभा पा रहा है (अर्थात उनकी तीसरी और कोई उपमा नहीं हो सकती) ! हे भौंसला वंश के भूपाल ! तेरा यश चन्द्रमा के समान आनन्द दायक है और चन्द्रमा तुम्हारे यश ! पुंज के समान आनन्द देता है। भूषण कहते हैं, साहू के सुपुत्र महादानी महाराज शिवराज ! तुम्हारा हृदय समुद्र के समान (अथाह रत्न राशि लिये, गंभीर और उदार) है, और

समुद्र तुम्हारे हृदय के समान शोभा पाता है, इसी प्रकार, तुम्हारे दानी हाथ कल्प तरु के समान (इष्ट फलदाता) है और कल्पवृक्ष तुम्हारे हाथ के समान शोभा पाता है।

भाव यह है कि उनकी तीसरी अन्य कोई उपमा संसार में नहीं है।

६. इन्द्रजिमि······शिवराज है।

परिचय—यह पद भूषण ने शिवाजी को प्रथम बार अट्ठारह बार सुनाया था और शिवाजी ने इस पर प्रसन्न होकर उन्हें अट्ठारह लाख रुपया दिया था। उसमें एक शिवाजी की अनेक उपमाएं देकर उनकी वीरता का वर्णन किया गया है।

शब्दार्थ जिमि=जैसे (जंभ=इन्द्र शत्रु राक्षस, जिसे इन्द्र ने वज्र से मारा था। सुअम्भ=जल। बाडव=बाडवाग्नि। सदम्भ= दम्भी। पौन=पवन। वारिवाह=मेघ। रतिनाह=कामदेव, जिसको उन्होंने तृतीय नेत्र की ज्वाला मे भस्म कर दिया था। सहस्रबाह =सहस्रबाहु, जिसे परशुराम ने अपने फरसे से काट दिया था। द्विजराज राम=परशुराम। दावा=दावाग्नि। द्रुमदण्ड=वृक्षों की लकड़ी। वितुण्ड=हाथी। तमअंश=अन्धकार। मलिच्छ= यवन। सेर=शेर।

अर्थ—भूषण कहते हैं यवन कुल पर शेर शिवाजी ऐसे हावी हैं, जैसे इन्द्र जंभ पर, बाडवाग्नि जल पर, राम दम्भी रावण पर, पवन बादलों पर, शंकर कामदेव पर, परशुराम सहस्रबाहु पर थे और जैसे दावाग्नि वृक्षों के काष्ठ पर, चीता मृग के झुण्डों पर, सिंह (मृग राज) हस्ती पर, प्रकाश अन्धकार पर होते हैं और या कृष्ण जैसे कंस पर थे।

अर्थात्, जैसे इन इन्द्र आदि उपनामों ने अपने शत्रुओं को क्षण भर में तहस नहस कर दिया था, या वे कर देते हैं, इसीप्रकार शिवाजी भी यवन कुल (मुग़लों) का नाश कर देते हैं।

१० भोंसला भुवाल......छवि छीनो ॥

परिचय—इस सवैये में भी शिवाजी और उनके यश प्रताप का वर्णन है।

शब्दार्थ—भुव=पृथ्वी । भुजगम=सर्प । मरि=मरकर । तीखन=तीक्ष्ण । तराग्र=सूर्य । पानिप=प्रताप, तेज । दारिद दौ=दरिद्रता की ज्वाला । दलि करि=दल कर, दूर करके । बारिद लौं=बादलों के समान । तनै=तनय, पुत्र ।

अर्थ—भोंसला वंश के भूपाल (शिवाजी) ने अपनी भारी सर्प जैसी (भयंकर) भुजाओं से पृथ्वी को अपने आलिंगन में जकड़ लिया (किसी का पास आने का भी साहस नहीं हो सकता) और, भूषण कहते हैं, अपने प्रताप के सूर्य द्वारा वैरियों के तेज को हीन कर दिया । इसी प्रकार, उसने (भोंसला भूपाल ने) बादल के समान पृथ्वी की दरिद्रता की ज्वाला शान्त करके उसे शीतलता प्रदान की है, (मेघ ताप शान्ति करता है और शिवा दान द्वारा निर्धनता का सन्ताप हरते हैं) और साहू के सुपुत्र कुलचन्द्र शिवाजी ने अपने कीर्ति रूपी चन्द्र से चन्द्रमा को भी क्षीण कर दिया है । [यश प्रताप के सामने चन्द्रिका फीकी लगती है] ।

११ उद्धत अपार......तुरकन के ।

परिचय इस कवित्त में भूषण ने वैरियों तुर्कों पर शिवाजी के आतंक का वर्णन किया है ।

शब्दार्थ—उद्धत=हठीले, उद्दण्ड । दुन्दुभि=भेरी । धुकार=धू धू शब्द । पारावार=समुद्र । वृन्द=समूह । चतुरंग=अश्व, रथ, हस्ती और पदाति नामक चार अंगों वाली सेना । तुरंगन=घोड़ों । अंगरज=शरीर से उठी धूलि । परन के=शत्रुओं के । रजपुंज=रंगत चेहरे की या राज्य समूह । दच्छन=दाक्षिणात्य, दक्षिण के

भू भाग । गढ़ कोट=दुर्ग प्राचीर आदि । असीसें=आशीष देते हैं। कसीसें=क्रोध में, दांत भींचना । पुनि=फिर । तुरकन=तुर्कों ।

अर्थ—हे शिव वीर ! तुम्हारी रणभेरी की अनन्त और उद्दण्ड [ऊंची] धू धू कार के साथ ही रिपु गणों के बालक बच्चे समुद्र पार लांघ जाते हैं [भय के मारे] । तुम्हारी चतुरंगिनी सेना के अश्वों के खुरों से उठकर उड़ती हुई धूलि के साथ ही शत्रुओं के राज्य पुंज उड़ जाते हैं [राज्य नष्ट भ्रष्ट होते हैं । रजपुंज का अर्थ राग पुंज लें तो मुख का रंग उड जाता है, यह अर्थ होगा] । हे शिवराज ! धनुष को हाथ में लेने के साथ ही दक्षिण के भूभाग और उनके साथ शत्रुओं के किले आदि भी तुम्हारे हाथ लगते हैं । [इधर हाथमें धनुष चढ़ता है और उधर किले भी हाथ चढते हैं] भूषण आशीस देते हैं, और फिर क्रोध में दांत पीसने पर तुम्हारे बाणों के साथ ही शत्रु तुर्कों के प्राण छूटते हैं [इधर बाण छूटता है, उधर शत्रु-प्राण] ।

विभावना अलंकार के द्वारा कवि ने शिवाजी की अद्भुत वीरता और उनके शस्त्रों की क्षिप्र-कारिता को व्यक्त किया है ।

१२ चढ़त तुरंग······अवरंग में ।

परिचय—शिवराज की युद्ध यात्रा और मारकाट का वर्णन है।

शब्दार्थ—साजि=सजाकर । मैं=मे । खग्गकुलि=भय का शीत । अरिन=शत्रुओं । अरि जोट=शत्रु समूह । मेरु=सुमेरु पर्वत । गिरि शृंग=पर्वत शिखर । व्योम=आकाश । यान=सवारी । बिनुमान=असंख्य । बदरंग=काला, मलिन रंग । अवरंग=औरंगजेब । दिनदिन=प्रतिदिन, प्रतिपल ।

अर्थ—भूषण वर्णन करते हैं जिस दिन शिवराज अपनी चतुरंगिणी सेना सजाकर अश्व पर चढ़कर चलते हैं, उस समय दाय दायमें [या प्रतिदिन] उनके शरीर से अधिकाधिक प्रताप उद्दीप्त होता है

[उत्साह से शरीर चमकने लगता है], मरहठों के हृदय में चाव [उत्साह] चढ़ता है और शत्रुओं के शरीर में भय का शीत चढ़ जाता है। इसी प्रकार, उस समय, भोंसला वंश के राजा [शिवाजी] के हाथ शत्रुओं के दुर्ग चढते हैं। शत्रुओं के गुट्ट पहाड़ों की चोटियों पर चढ़ते हैं [अपनी जान बचाने के लिए]। असंख्य तुर्कों के गण बिना सवारी के ही आकाश में चढते [हैं ऊपर फेंक दिये जाने पर या मर कर नर्क को जाते हुए] और औरंगजेब में बदरङ्ग [काला रंग] चढता है [अर्थात् औरंगजेब का रङ्ग भय से बदरङ्ग मलिन हो जाता है)।

शिवाजी जिस समय युद्ध-यात्रा करते हैं, उनका शरीर उत्साह से चमकने लगता है, मराठे उत्साहित होते हैं और शत्रु भय में ठण्डे हो जाते हैं। किले दुर्ग आदि अनायास हाथ लगते हैं और शत्रु पहाड़ों में छुप जाते हैं। औरंगजेब यह सब सुनकर भयभीत हो जाता है।

१३ मद जल धरन.......... बिराजै।

परिचय—इस छन्द में कवि ने शिवाजी को शेषनाग, सूर्य आदि विवध रूपों में वर्णित किया है।

शब्दार्थ—मदजल=वह तरल द्रव्य, जो मस्त हाथियों के मस्तक में से चूता है। धरन=धारण करने वाला। द्विरद=हाथी। बल=सेना। जलद=मेघ साजै=सजी है। पुहुमि=भूमि। फनि=सर्प। लसत=सोहता है। छाजै=शोभा पाता है। पर=शत्रु। रुचि=सुरुचि, सहृदयता। समाजै=समाज में। थम्भन=स्तम्भ। ऐंड=हठ, आन।

अर्थ—मदजल बर्साने वाली हाथियों की सेना शोभा पाती है, जो अनन्त जलधारी मेघ पंक्ति के समान (काली काली जल बरसाती) लगती है। भूमि का धारण करने से (पृथ्वी का शासन करने से) शिवाजी शेषनाग जैसे प्रतीत होते हैं और प्रचण्ड तेज धारण करने के

कारण ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान चमकते हैं। तलवार चलाने के विषय में शत्रुओं में इनकी भारी शान है और सुरुचि और गुण के कारण समाज में अनुपम शोभा है। भूषण कहते हैं, दिल्ली के दल-यिता, दक्षिण दिशा के स्तम्भभूत और अपनी आन रखने वाले ऐसे महाराजा शिवराज विराज रहे हैं।

१४ छूट्यो है हुलास·········संगही।

परिचय—शिवाजी की धाक (वीर हुंकार) सुनकर शत्रुओं के बेहाल हो जाते हैं और वे घर बार छोड़ भाग खड़े होते हैं।

शब्दार्थ—हुलास=खुशी। हरम = महल। सुखरुचि=आराम की इच्छा। सुखरुचि=मुख का स्वाद या कान्ति। बिललाने=बिल-बिलाते हुए। गहत=पकड़ते हैं। पाय=पाकर, जाकर। जीव आश =जीवन की आशा।

अर्थ—भूषण कहते हैं, हे मरदाने वीर शिवाजी! तुम्हारी वीर-हुंकार सुनकर व्याकुल हुए शत्रुओं के अंग बल नहीं पकड़ते (शरीर में बल नहीं रहता भय से उनके अंग काम नहीं करते)। उनके दिल की खुशी जाती रहती है, आम खास (महल और बाजार) सब छूट जाते हैं। शत्रु स्त्रियों के महल और शर्म दोनों एक साथ ही बेतरीके छूट जाते हैं (महल और शर्म छोड़ कर जंगलों को भागती हैं)। नयनों से पानी और हृदय से धैर्य भी एक साथ ही छूटते हैं, इसी प्रकार सुख का स्वाद और मुख की कान्ति दोनों एक साथ ही छूट जाते हैं (मुंह भय और निराशा में फीका पड़ जाता है और भोजन अच्छा नहीं लगता)। दक्षिण के सूबे को पाकर (वहां जाकर) दिल्ली के अमीर उत्तर दिशा (दिल्ली) में आने की और जीवन की आशा दोनों एक साथ ही छोड़ देते हैं (दिल्ली के अमीर कभी दुर्भाग्य से दक्षिण के प्रान्तों में आ जांय तो उन्हें वहां रहने और वहां से जाते वक्त मार्ग से अपनी सलामती नजर नहीं आती)।

१५ जाहिर जहान............सिवराज के।

परिचय—इस कवित्त में भूषण ने शिवाजी के अपार दान का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—जाहिर=प्रकट। सुनि=सुने जाते हैं। गरीबनेवाज दीनदयालु। जरबाफ=जरीदोज। करि=करके। कमलापति=विष्णु। बैपारी=व्यापारी।

अर्थ—भूषण कहते हैं, साहू के सुपुत्र दीनदयालु महादानी शिवराज के दान की आज सर्वत्र प्रशंसा सुनी पड़ती है। सरजा शिवराज के कवि समाज के रत्न आभूषण आदि की जगमगाहट और जरीदोज़ वस्त्रों की चकाचौंध को देख देखकर, सब लोग ऐसे ही साजबाज के मनोरथों को हृदय में लेकर (ऐसे वस्त्र आभूषणों की कामना से) तपस्या कर कर के लक्ष्मीपति से यही मांगते हैं कि भगवान्! हमें न तो किसी जहाज का व्यापारी (साहूकार) बनाओ और नाहीं किसी भारी राज्य का राजा ही बनाओ, हमें तो तुम महाराजा शिवराज के भिखारी बना दो।

शिवाजी के दान ऐश्वर्य को देखकर दुनियां उनके द्वार का भिखारी बनना चाहती है और उसके सामने बादशाहत को भी तुच्छ समझती है।

पद्माकर

(ऋतु वर्णन)

वसन्त

१-२ कूलन में..........वसन्त है।

परिचय—सृष्टि में सर्वत्र वसन्त खिला हुआ है।

शब्दार्थ—कूलन=तटों। केलि में=क्रीडाओं में। कछार=किनारे के पास की नीची जमीन। कलिन कलीन=कलि कलि में।

किलकत=पुकारता है। पिक=कोयल । दुनी=दुनिया । दीप=द्वीप, टापू। दीपत=भासता है। दिगन्त=दिशान्त । बीथिन=गलियों। बगरा=विकसित।

अर्थ—कवि पद्माकर वर्णन करते हैं, पुष्प परागों में, पवन में, पानों में (पत्तों में), कोयल में और पलास वृक्षों में बसन्त छा रहा है। कूलों में, केलि में, नदी की कछारों में, कुंजों में, क्यारियों में (खेत की) और कली कली में बसन्त चटख रहा है। गृहद्वारों में, चारों दिशाओं में, संसार में, देश देशों में और द्वीप द्वीप में देखो बसन्त खिला हुआ है। ब्रज में, ब्रज की गलियों में, बेलियों और नवेलियों (युवतियो) मे, बनो में और बागों में बसन्त विकसित हो रहा है।

शब्दों के अनुप्रास के साथ वसन्त की प्राकृतिक शोभा का स्वाभाविक वर्णन हुआ है।

पुनर्यथा

३-४ औरै भांति............व्है गये।

परिचय—बसन्तागमन से सृष्टि का नया ही रंग हो गया। तन, मन और प्रकृति नये से प्रतीत होते हैं।

शब्दार्थ—गुञ्जरित=गूंजती हुई। भीर=भीड़ । छौर=छैल। झौरन=वृक्षों के झुंड। बौरन=आम का बौर। गलियान=गलियों में। छ्वै गये=छा गये, शोभा पा गये। विहंग समाज=पक्षी समूह। द्वै=दो। औरै=और ही नयी ही। व्है गये=हो गये।

अर्थ—पद्माकर कवि वर्णन करते हैं, भ्रमर मण्डल कुंजों में आज नये ही भाव से गूंजता प्रतीत होता है, आमों के झुंडों के बौर नये ही रंग में रंगे दिखाई देते हैं और नगर की गलियों में छैला लोग नवीन ही छवि धारण किये सैर करते हैं। अभी ऋतुराज बसन्त के दो दिन भी नहीं बीते, पर पक्षी नये से स्वर में चहचहाते प्रतीत होते हैं, रस रीति, राग रंग के नये ही (और ही) ढंग हो गये हैं और तन मन

विलक्षण से लगते हैं और वन नया सा ही दिखता है (वसन्त ने यह सब काया कल्प कर दिया)।

पुनर्यथा

५-६—पात बिनु·········भुंज है।

परिचय—वसन्त में गोपियों का विरह वर्णन है।

शब्दार्थ—पात=पत्ते। जन=लोग। परत=पड़ते। जे ये=जो ये। लरजत=लचकते हैं। लुञ्ज=रुण्ड, वृक्षों के बिना पत्तों के ठूंठ। बिसासी=विश्वास घाती। या=इस। गात=शरीर। भुञ्ज हैं=भूनते हैं।

अर्थ—पद्माकर वर्णन करते हैं, बेलों के फूल पत्ते झाड़ कर वसन्त ने उन्हे ऐसा कर दिया है कि ये सामने खड़े बिना पत्तों के लुंज पहिचान में नहीं आते (कि ये वे ही हैं)। यह विश्वास घाती वसन्त अपने ऐसे ही अनेक उत्पातों (शरारतो) से गोपियों के शरीरों को भी भूनता है।

हे ऊधो ! हमारा तो यह सीधा सा सन्देशा जाकर कान्ह से कह देना कि हमारे यहां ब्रज में अब के वसन्त नही खिला, हमारे यहा तो अब के पालाश, गुलाब, कचनार और अनारों की शाखाओं पर अंगारों के पुंज फिरते हैं (लाल लाल पुष्प उन्हे विरहोन्मत्त दशा में अंगार दिखाई देते हैं)।

ग्रीष्म

७-८ फहरैं फुहार नीर·········टाटी हैं।

परिचय—इन दो कवित्तों मे कवि ने राजा की ठण्डी बारादरी और उसके विलास सुख का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—फहरैं=फुहार पड़ती है। छहरैं=छितराते हैं। छाम=कृश। छींटीन=छींटों। छाटी=छटा। जलाकै=उजालायं। वेस=घनी। बाटी=गली। बारहदरीन=बारहदरियों। तापर=उस पर।

पाटी है=बिछाई है। गजक=शराब के पश्चात् मुख स्वाद करने का पदार्थ। उचोहैं=उच्च, उठे हुए। कुच=स्तन। आसव=मद्य। टाटी=पर्दा, छप्पर।

अर्थ—जल की फुहार पड़ रही है और नहर नदी के समान बहती है। चारों ओर महीन (छाम) छींटों की शोभा छा रही है। पद्माकर कहते हैं, वहां जाने की गली, वनी बेलों से बनी हुई है, अतः जेठ के महीने की गर्म लुएं वहां किस तरह प्रवेश पा सकती हैं? (वे गर्म नहीं रहेंगी, वहां तक पहुंचती पहुंचती।) बारहदरियों में बारह ही तरफ बर्फ बिछाकर उस पर पीतल बिछाई हुई है (जो ठंडी रहती है)। (शराब पीने के बाद मुख स्वाद करने के लिए) अंगूर का गजक है, अंगूर जैसे ही रसमय रमणी के उच्च उठे हुए कुच हैं, और अंगूर की टट्टी है (शीतागार में आनन्द विलास हो रहे हैं)।

पावस

६-१० मल्लिकन········बरखा की।

परिचय—वर्षा काल की मस्ती का वर्णन है।

शब्दार्थ—मल्लिकन=जूही। मलिंद=मिलिंद, भ्रमर। मारुव =हवा। मुहीम=राजा। मनसा=मनोरथ। नदन=नदों। दरैरो =खटखट। दुदुंदै दीह=दीर्घ टर्र टर्र लगाता है। दमकत= दमकती है। वद्दालनि=बादलों में। बिलोकौ=देखो। वंगालिन= एक बरसाती रागनी का नाम।

अर्थ—पद्माकर वर्णन करते हैं, जूही की लताओं से मतवाले भौंरे जा मिले हैं। मन्द मन्द वायु रूपी राजा ने मन में विजय का मनोरथ किया है [विजय यात्रा पर चल पड़ा है, अर्थात् मन्द वायु बह रही है]। इसी प्रकार नद नदियों और नागर नागरियों की नज़र में नसा मद] भर गया है [सब में मस्ती छाई हुई है]। मेंढ़क दीर्घ

टर्र टर्र लगाते हैं और खुटका करने पर भाग निकलते हैं। दसों दिशाओं में दामिनी दमक रही है। बादलों से गिरती हुई बूंदें दिखाई दे रही हैं। देखो बाग में बगुले शोभा पा रहे हैं और बेओं मोर रागनियों में वर्षा की बहार छा रही है।

पुनर्यथा

११-१२ चचला चमाकैं ·······लागीरी।

परिचय—कोई विरहिणी अपने विरह की असह्य दशा का वर्णन कर रही है।

शब्दार्थ—चचला=बिजली। चमाकैं=चमकती है। चाह भरी=इच्छा भरी। चरति गई ती-चमक कर गई थी। चरजन=चमकने। लोनी=सुन्दर। लवंगन की=लवगलता, लौंग की बेल। लरजि=लचक कर। समीरैं=वायु। तरजन लागी=भय दिखाने लगी। घनेरी=अंधेरी। अबै=अभी। घटी=छायी। ती=थी।

अर्थ—पद्माकर वर्णन करते हैं, चारों ओर चाह भरी बिजली चमक रही है, अभी चमक कर गई थी, अभी फिर चमकने आ गई। बेचारी लंवगलता अभी लचका खाकर चुकी थी [हवा से], अब फिर लचकने लग गई री! कैसे धैर्य रखूँ? तीन प्रकार की [शीतल मद सुगन्ध] समीर अभी भय दिखा कर गई थी, अब फिर भय दिखाने आ पहुची [हवा से विरह कम्प अधिक होता है]। बादलों की अंधेरी घुमड कर छाकर अभी अभी गर्ज कर गई थी अब फिर गर्जने लग पडी है [सो विरहिणी का धैर्य कैसे रहे?]।

शरद्

१३-१४···तालन पै ताल पै··· ·····मुकुट पै।

परिचय—इन दो कवित्तों में कवि ने शरत्काल की निर्मलता और शुभ्र शोभा का वर्णन किया है।

कठिन शब्द—तालन=सरोवरों। ताल तमाल माल=वृक्षों के नाम। पै=पर। वीथिन=गलियों। बंसीबट=प्रसिद्ध वट, जहां कृष्ण वन्शी बजाया करते थे। अखंड=पूर्ण। मंडित=शोभित। कालिंदी =यमुना। छिति=पृथ्वी। छान=फूस का घर। छतान=छतों। सरद् शरद्। जुन्हाई=शुभ्रता।

अर्थ—पद्माकर वर्णन करते हैं, वर्षा में उमड़ी यमुनाके बड़े भारी शोभित तट पर, वहां हो रही पूर्ण [सब साधनों से युक्त] रासलीला पर, सरोवरों पर, ताल, तमाल, माल आदि वृक्षों पर, वृन्दावन की गलियो पर, और बंसीबट पर, शरत्काल की बहार छा रही है। पृथ्वी पर, फूस के घरों पर, छतों पर, सुन्दर लताओं और प्रेयसियों के बालों की लटो पर शरत् की शुभ्र शोभा छा रही है, और आज तो यह शरत् चन्द्रिका बहुत ही शोभित हो रही है, जिसने कृष्ण के मुकुट पर भी आज शोभा पाई है। [शरत् की स्वाभाविक निर्मलता का वर्णन है।]

१५-१६ खनिक चुरीन········गोपाल को।

परिचय—इन दो पद्यों मे चन्द्रमा को शुभ्र चन्द्रिका में हो रही कृष्ण की रास लीला का वर्णन है।

शब्दार्थ—खनिक=खनखनाहट। चुरीन=चूड़ियों। नूपुर जाल =बिछुओं का समूह। धुनि=ध्वनि। सन्नाको=सन्नाटा। एकताल =इकताला, जो रास में बजता है। पै=किंतु। हुलास=आनन्द। ख्याल=एक राग। को=का।

अर्थ—पद्माकर (रास का) वर्णन करते हैं, जैसी चूडियो की मधुर खनखनाहट है [गोपियों के हाथों की चूडियां मधुर खणत्कार करती हैं] वैसी ही मृदंगों की मधुर धुमक है और वैसा ही [गोपियों ने पावो मे पहिने हुए] बिछुओं का ललित रुणक झुणक शब्द है। इन्हीं में [कृष्ण की] बंसरी के मादक स्वर ने मिलकर इकताल का

सन्नाटा बांध रखा है [एकताले की धीमी मधुर घुमक से सन्नाटा छा रहा है] किसी को होश नहीं] । और उस ख्याल [राग] के विविध विलासों, [ध्वनि का आरोह, अवरोह आदि लय तान] और आनन्द का तो ठिकाना ही नहीं । वह तो री ! देखते ही बनता है, कहा नहीं जा सकता । आकाश में छविधारी चन्द्र खिला है और चान्दनी का प्रकाश फैला हुआ है, और इनके समान ही राधिका का मधुर शुभ्र मंद स्मित खिल रहा है । गोपाल का ऐसा रास मण्डल बना हुआ है ।

युद्ध वर्णन

१–२–३–४ तुपक्कै तडक्कैं..........ऊंट नालैं ॥

परिचय—इन चार छन्दों में कवि ने प्रचलित काव्य रीति पर युद्ध की मार काट और उसमें चलते हुए शस्त्रों का वर्णन किया है ।

शब्दार्थ–तुपक्कैं=तोपें । तड़कै धडक्कैं=तड़क धड़क करती हैं । प्रलच चिल्लिका=प्रलय कालीन विद्युत् । खडक्कैं=खड्ग । खरी=तेज । भड़क्कैं=फोड़ती है । सड़क्कै=सड़ाका, चलने के वेग से उत्पन्न हवा का झोंका । मज्जे=डूबते हैं । गड़क्कै=गड़प होते हैं । अतोली=ताबादाद । सनक्कैं=सन् सन् करती हैं । मनो=मानो । भीरैं–झुण्ड । भनंकैं=भनकती है, गूंजती हैं । बे प्रमानैं=बिना परिमाण, सीमा रहित । गिलैं=ढांप रही हैं । भासमानैं=दृश्यमान पदार्थों को । तै=वे । झैं=झर । आरे=ओले । राम चंगो=गोला फेंकने का शस्त्र । धरा=भूमि । धमाकैं=धमाका करते हैं । संकैं=डरते हैं । तमंचे=छोटी बन्दूक । संचै=समूह । बंध=फेंट । बानैं=बाणों को । कालैं जंजालैं=तोपाकार शस्त्र । जगी=जली । जामगी=पलीता । त्यों=इसी प्रकार । ऊंट नालैं=भारी लम्बी तोप ।

अर्थ—युद्ध में तोपें भारी तड़ाक भड़ाक कर रही हैं, जो प्रलय विद्युतों जैसी भड़कती हैं (धमाके के साथ प्रज्वलित होती हैं), तेज

तलवारें वैरियों के सीनों को फोड़ रही हैं और उन तलवारों के वेग से चलने के सड़ाके (हवा के झोंके) से उड उड कर शत्रु समुद्रमें गड़क गड़क डूब रहे हैं। अप्रमान (निःसीम) गोले गोलियां सन सनाते हुए छूट रहे हैं, जो उड़ते हुए और गुंजारते हुए भौरों के झुण्डों जैसे लगते हैं (दोनो काले रंग के हैं), और उन्होंने (गोले गोलियों ने) आकाश में चढ़कर उसे व्याप्त कर लिया है, जो ऐसा लगता है, मानो बादलों की घनी घटा दृश्यमान पदार्थों को निगल रही हो (घटा भी अंधेरा करती है और गोलो ने भी छाकर अन्धेरा कर दिया है)। फिर, वे (गोले) भर्भराकर वहीं जमीन मे गिरते हुए ऐसे लगते हैं, मानो आसमान से बड़े बड़े काले ओले झर्झराकर पड़ रहे हों। राम—चंगी नामक तोपें चलने पर भूमि मे धमाका होता है, जिनके भयंकर शब्द को सुनकर वैरियो की छाती (भय में) धड़कने लगती है। वीर गण वहां बन्दूकें छोड़ते हैं, कमर मे फेटा बांधे लक्ष्यों को बेध रहे हैं (निशानो को उडा रहे हैं)। काल जंजाल नामक विशालकाय शस्त्र चल रहे हैं। पलीते जलते हैं और फिर ऊंटनालें नामक तोपें चल रही हैं।

५-६-७-८ गर्जें गाजसी............खात दुच्चे।

परिचय—वही युद्ध वर्णन है।

शब्दार्थ-गर्जें गाजसी=हस्ती की गर्जना के समान। गना लैं= भारी तोप या बन्दूक। सुनैं=सुनने पर। गज्जती=गर्जती हुई। मूंगरी=एक फेंक कर मारने का शस्त्र। ह्वै=हो। स्वर्गं=स्वर्ग पर। दिग्घदानै=दीर्घ दानव, विशालकाय दानव। परी=पड़ी। वारै=वारही। बिमानन्न=देवताओं के विमानों की। भुशुण्डैं= भुशुण्डियां, तोपें। कै=क्या। अचाका=एक साथ। बनावली= बाणावली, बाण पंक्ति। कोपिकै=क्रोध करके। पन्नगाली=सर्पो की पंक्ति। खरी=तेज। कुहकुहाती=कुह कुह का शब्द करती

हुई । दिगन्तैं=दिक् प्रान्त । दही=जलाई । चद्दरैं=एक फैंक कर मारने का अस्त्र । दच्चे=दचके, धक्के ।

अर्थ—(ऊपर के पद्य में आए मूंगरी नामक शस्त्र जब भूमि पर गिरते हैं तो) पृथ्वी पर एक साथ धमाधम मच जाती है (धमा के होते हैं) ऐसा मालूम होता है, मानो इन्द्र की गदा टूट कर गिर रही हो, या देवताओं के विमानों के चक्रों के झुंड टूट कर गिर रहे हों, और या ये तोपें ही टूटी पड़ी हैं । एक साथ भयंकर बाण पंक्ति छूटी है जो क्रोध में उड़ती हुई सांपों की कतार जैसी लगती है । वह (बाण पंक्ति) कुह कुह (वेग का) शब्द करती है, परस्पर जुड़ती नहीं (इधर उधर बिखर जाती है) । ऐसी ऐसी असंख्य बाण परम्पराएं चल रही हैं, जिनसे दिक् प्रान्त जल रहे हैं । इसी तरह चद्दर नाम के शस्त्र के चलने पर भी धड़ाका, छड़ाका, फड़ाका, सड़ाका और खड़ाका के शब्द होते हैं । वीर लोग शत्रुओं पर शेर की तरह टूट पड़े हैं, कायर लोग भाग रहे हैं और बीबी बच्चों को छोड़े धक्के खाते फिर रहे हैं ।

९–१०–११. छुटे सस्त्र सीप्पे·········घर्घराने ।

परिचय—ऊपर का युद्ध वर्णन ही चल रहा है ।

शब्दार्थ—सिप्पे=प्रहार । दिग्ध=जला हुआ । टिप्पे=दिखते हुए । छिप्पे=लुक गये । डिप्पे=दिखाई दिये । करावीन=एक शस्त्र । छुट्टैं=छूटती हैं । चुट्टैं=चोटे, प्रहार । करी=हाथी । इते उत्त=इत स्ततः, इधर उधर । लुट्टैं=लोट रहे हैं । जग्गी=जागी । लग्गी=लगी । झड़ा=शस्त्रों की झड़ी । अराबो–एक बारूद से चलने वाला शस्त्र । किधौ–क्या । कोप्यो–क्रोधित हुआ । डारै=डालता है । भर्भराने–उनत्त कर गर्जने लगे । सिंधु–समुद्र । प्रलै–प्रलय । कै–क्या । घर्घराने=घोर गर्जते हैं ।

अर्थ—लक्ष्यों पर शस्त्र छूटे, जो दिखाई दिया जला दिया । सब

शत्रु छिप गये, कहीं नहीं दिखाई पड़े। करार्थीन नामक शस्त्र चलते है और वीर लोग प्रहार कर रहे हैं। हाथियों की गर्दनें कट कर इधर उधर पड़ी लोट रही हैं। तोपों के चलने से धां धां की तुमुलध्वनि उठती है और धड़ाधड़ होने लग जाती है। बांके वीर भड़ाभड़ झड़ाझड़ शस्त्रों की झड़ी लगा रहे हैं और चारों ओर भड़ाभड़ (गोली छूटने के शब्द) मच जाती है। सबने अराबो नामक शस्त्र एक साथ ही चलाया जिससे (भयंकर शब्द के कारण) ऐसा लगता है मानो इन्द्र क्रोध करके अपने वज्र का प्रहार कर रहा हो, या सातों समुद्र एक साथ उबल कर गर्जने लगे हों और या प्रलय काल के मेघ घिर कर घोर ऊंचा शब्द कर रहे हों।

१२-१३. सुनी जो अवाजैं..........ग्रसे हैं।

परिचय—शत्रु जंगलों में भागते हैं, पर वहां हिंसक पशुओं के भोज्य बनते हैं।

शब्दार्थ—भाजैं=भाग जाते हैं। गहैं=पकड़ते हैं। समाजैं=जन समाज। दारैं=बीवियों को। देहैं=देहों को। भजि=भाग कर। उलत्थे=उलटते हैं। पलत्थैं=पलटते हैं। कलत्थै=कलपते हैं। सिन्धून=समुद्रों में। थाहैं=तला। दरां=कन्दरा। बग्घान=बाघोंने। ग्रसे हैं=खा लिये हैं।

अर्थ—शस्त्र चलने की इन भयंकर ध्वनियों को सुनकर सब शत्रु भाग खड़े हुए। उन्हें लज्जा नहीं आती और वे मनुष्य समाज को छोड़ कर भाग जाते हैं। औरतों को छोड़ जाते हैं, अपनी देह की भी संभाल नहीं रहती, भागते हुए गिर पड़ कर फिर उठते हैं और फिर भागते चले जाते हैं। उलटते हैं, पलटते है (भय में मुड़कर दिशाओं को ताकते हैं, किधर भागें), कलपते हैं और कराहते हैं, परन्तु उन्हें अपने शोक समुद्र की थाह नहीं मिलती (मुसीबतों का अन्त नहीं होता)। सुन्दरी पत्नियों को छोड़ कर बेचारे पर्वतों की कन्दराओं में घुसते हैं, तो वहां सिंह व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं द्वारा

खाये जाते हैं (शत्रु की प्राण रक्षा सम्भव नहीं है, न युद्ध में, और न बन में ही)।

वृन्द

१ कैसे निबहे……वैर।

परिचय—निर्बल का संसार में बलवान् से वैर नहीं निभता।

शब्दार्थ—निबहै-निर्वाह करे। निबल-निर्बल। सौं-से। गैर-द्वित्वभाव, विरोध। बिसे-विषय में, मध्य में।

अर्थ—समुद्र में रह कर मगर से वैर करने के समान, सबल से वैर बांधकर निर्बल पुरुष का निर्वाह नहीं होता [उसका काम नहीं चल सकता]।

२ विद्या धन उद्यम………की पौन।

परिचय—विद्या पुरुषार्थ और परिश्रम के बिना नहीं मिलती।

शब्दार्थ—कहौ जु-कहो तो। डुलाये-चलाये। पौन-पवन।

अर्थ—जैसे, हाथ से पंखे को हिलाये चलाये बिना हवा नहीं मिलती, इसी प्रकार बिना उद्यम या परिश्रम किए विद्या रूपी धन नहीं प्राप्त हो सकता।

३ फेर न ह्वै है………दूजी बार।

परिचय—व्यापार का आधार झूठ होने पर, रुपए का फेर नहीं बंध सकता।

शब्दार्थ—ह्वै है-होगा। फेर-रुपये का फेर, आना जाना। कीजै-करो।

अर्थ—काठ की हंडिया जैसे दूसरी बार आग पर नहीं रखी जा सकती उसी प्रकार कपट का व्यापार करने पर रुपए या व्यापार का फेर नहीं बन्ध सकता [व्यापार नहीं चल सकता]।

४ दुष्ट न छाँड़ै………न सेत।

परिचय—अनेक उपकार करने पर भी दुष्ट अपनी दुष्ट वृत्ति नहीं छोड़ता।

शब्दार्थ-छांड़ै-छोड़ता है। हूं-भी। देत-देते हुए। धोयो-धोया हुआ। सेत-सफेद।

अर्थ—काजल सौ बार धोने पर भी सफेद नहीं होता। इसी प्रकार, हर प्रकार का सुख देते हुए भी दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता।

५ प्रकृति मिलैत·········फट जाय।

परिचय—मेल अपने समान गुण वाले से ही होता है, भिन्न गुण वाले से नहीं।

शब्दार्थ-प्रकृति-स्वभाव। मिलै=मिलने वाले, समान स्वभाव वाले। त=से। तें-से।

अर्थ—स्वभाव समान गुण वाले से ही मिलता है, अनमेल गुण वाले से नहीं। दूध [अपने समान गुण वाले] दही से तो जम जाताहै, परन्तु [भिन्न गुण वाली] कांजी से फट जाता है [जमता नहीं]।

६—पर घर कबहूं·········छवि होत।

परिचय—मांगना नही चाहिए, मांगने से तेज घटता है।

शब्दार्थ-पर घर-दूसरे के घर। जोत-प्रताप। जात-जाने पर। छीन-क्षीण।

अर्थ—चन्द्रमा जब सूर्य मण्डल में जाता है, तो उसकी छवि और कला क्षीण हो जाती हैं। इसी प्रकार, किसी के घर मांगने नहीं जाना चाहिए, मांगने से भी तेज या प्रताप कम होता है।

७ बिन स्वारथ·········धैन।

परिचय—बिना स्वार्थ के कोई किसी का कडुवा बोल नहीं सहता।

शब्दार्थ—कोऊ-कोई। करुए-कड़ुए। धैन-गाय, धेनु।

अर्थ—गाय दूध देती होनी चाहिए, दुनियां उसकी लात खाकर भी उसको पुचकारती है। क्योंकि बिना स्वार्थ के कोई किसी का कड़ुआ बोल भी नहीं सहता [लात की बात तो दूर की है]।

८ जो पहिले.........बुझाय।

परिचय—यत्न समय रहते पहिले ही करने पर फल देता है, बाद में नहीं।

अर्थ—यत्न पहिले करे, तब उसका (समय पर) फल मिलता है। आग लगने पर कूआ खोदने से आग कैसे बुझे ?

९. जैसौ थानक... ... .. खर चाम।

परिचय—जैसे स्थान या देवता की भावना करो, वैसा ही फल मिलता है।

शब्दार्थ—थानक=देव स्थान। सेइये=सेवा करो। तैसो= वैसा। पूरै=पूरे करता है। काम=मनोरथ। खुरी=खोल। खर=गधा।

अर्थ—जैसे स्थान की सेवा करो, वैसा ही फल मिलता है। सिंह की गुफा में मोती ही मिलते हैं और गीदड़ की खोल में गधे का चाम ही मिलता है (सिंह की गुफा में मोती मिलने की प्रसिद्धि है)।

१० मति फिर जात.........गंवाई सीत।

परिचय—विपत्ति के समय बड़ों बड़ों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

शब्दार्थ—मति=अक्ल। हेम=सुवर्ण। सीत=सीता। रंक= भिखारी।

अर्थ—विपत्ति में बड़ों छोटों सब की ही अक्ल फिर जाती है। राम चन्द्र ने सुवर्ण मृग के पीछे भाग कर सीता गंवाली (भिला सुवर्ण मृग भी कभी होते हैं ?)

११ सरसति के भंडार की.........घटि जात।

परिचय—ज्ञान के धन का जितना उपयोग करो उतना ही

बढ़ता है।

शब्दार्थ—सरसति=सरस्वती। घटिजात=कम हो जाता है।

अर्थ—ज्ञान के भण्डार की बड़ी आश्चर्यजनक बात देखी कि ज्यों ज्यों खर्चे त्यों त्यों बढ़ता है और नहीं खर्चने से घटता है। (विद्या अभ्यास से ही रहती है, नहीं विप हो जाती है)।

१२ चलै जु पंथ.........न जाय।

परिचय—प्रयत्न करने पर फल मिलता है, अन्यथा नहीं।

शब्दार्थ—पिपीलिका=चींटी। समुद=समुद्र। हू=भी। पैंडहु=एक पग भी।

अर्थ—चींटी मार्ग तय करने लगे, तो समुद्र पार कर सकती है, पर अगर चले ही नहीं, तो गरुड से भी एक कदम नहीं चला जायगा।

१३ चिदानन्द घट.........सुबास।

परिचय-ईश्वर हृदय में ही व्याप्त है, बाहर ढूंढना बेवकूफी है।

शब्दार्थ—चिदानन्द=ईश्वर। घट=शरीर। कहा=क्या। मृग मद=कस्तूरी। सुबास=गंध।

अर्थ--जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में ही रहती है, इसी प्रकार ईश्वर भी प्राणी के शरीर में ही रहता है, और जैसे मृग कस्तूरी की सुगन्धि को अज्ञान वश अन्यत्र ढूंढता फिरता है, इसी प्रकार मनुष्य भी ईश्वर का निवास स्थान पूछता फिरता है।

१४ जोतिसरूपी ही.........होति।

परिचय--संसार में सर्वत्र एकमात्र भगवान् का ही प्रकाश व्याप्त है।

शब्दार्थ—जोतिसरूपी=ज्योति स्वरूप।

अर्थ—सब शरीरों में ज्योति, उसी ज्योति स्वरूप भगवान् का ही रूप है, जैसे दीपक को ताख में रखने पर समस्त घर में उसी का प्रकाश व्याप्त होता है।

१५ कहा बड़े.........त्यागि ।

परिचय—चित्त वहीं लगता है, जहां प्रेम होता है, बड़े छोटे में नहीं।

अर्थ—क्या बडे और क्या छोटे, चित्त वहीं लगता है, जहां प्रेम होता है। कृष्ण ने दुर्योधन के घर के राजसी भोजन छोड़कर विदुर के घर का रूखा सूखा भोजन खाया।

१६ पर जन सो......विपरीति ।

परिचय—जगत् की रीति उल्टी है, जो भगवान् को छोडकर अन्य से प्रेम पालता है।

शब्दार्थ-परजन=पराया आदमी, अन्य जन । परिहरि=छोड़ कर। सों=से।

अर्थ-अहो ! जगत् की रीति विपरीत है। वह भगवान् को छोड़ कर अन्य जन से प्रेम पालता है और झूठ (कृत्रिमता) में ही आनन्द का अनुभव करता है।

१७ इक बिन मांगे.........भरे न ।

परिचय—संसार में किसी को अथाह धन मिलता है और किसी को मिलता ही नहीं।

शब्दार्थ-इक=एक। लहैं=पाता है। घन=मेघ। सर सरिता=ताल, नदी।

अर्थ—संसार में किसी को अनन्त पदार्थ मिलता है और किसी को मिलता ही नहीं। मेघ के जल से सर सरिताएं तो भर जाती हैं, पर बेचारे चातक की चोंच नहीं भरती (प्यासा ही रहता है)।

१८ नीकी पै फीकी... ......न सोहात ।

परिचय-बेमौके की अच्छी बात भी बुरी लगती है।

शब्दार्थ-नीकी=अच्छी। बिनु=बिना। सिंगार=शृंगार।

अर्थ—बिना मौके की बात कही हुई, अच्छी भी बुरी लगती

है, जैसे आकर्षक होते हुए भी शृंगार रस का वर्णन युद्ध में नहीं सुहाता।

१९ दीयो अवसर को..........काम।

परिचय-समय पर ही देना किसी के काम आता है।

शब्दार्थ-दीयो=दिया हुआ। जा सों=जिससे। बरसिबो= वर्षा। को=का।

-दिया हुआ अवसर का ही ठीक है, जिससे दूसरे का काम चले। खेती सूख जाने पर बादल का बरसना किस अर्थ का?

२० करिये सुख को........टूटत कान।

परिचय-जिससे दुःख हो, वह काम छोड़ दो।

शब्दार्थ-कहु=कहो। सयान = अक्ल। वा = उस। जारिये= जलाइये।

अर्थ-करो सुख के लिए प्रयत्न और मिले दुःख, ऐसे काम को तो फौरन छोड़ देना चाहिए। जिस सोने से कान टूटे (पहिनने में) उसे आग में जला दो।

२१ नैना देत बताय........कहि देत।

परिचय-हृदय का रहस्य आंखें बता देती हैं।

शब्दार्थ-देत=देते हैं। हेत अहेत=स्नेह और अस्नेह। आरसी=दर्पण।

अर्थ-जैसे दर्पण मुख की भली बुरी सब बात बता देता है, उसी प्रकार, नयन भी दिल का अच्छा बुरा भाव सब बता देते हैं।

२२ मधुर वचन ते........उफान।

परिचय-सज्जन पुरुष का क्रोध मधुर वचनों से तुरन्त शान्त हो जाता है।

शब्दार्थ-ते=से। अभिमान=गर्व या क्रोध। तनिक=जरा से।

अर्थ-जैसे जरा से शीतल जल के छींटे से दूध का उफान तुरन्त

बैठ जाता है, इसी प्रकार, उत्तम पुरुष का अभिमान या क्रोध का भाव भी मधुर वचनों से तुरंत शांत हो जाता है।

२३ जैसे बन्धन·········निकरै भौंर।

परिचय—संसार में प्रेम का बन्धन सबसे अधिक बलवान् है।

शब्दार्थ-बन्ध=बन्धन। भेदै=भेदता है। निकरै=निकले।

अर्थ—प्रेम बन्धन के समान संसार में अन्य कोई बन्धन नहीं है। भ्रमर काठ को भेद देता है, पर कमल को भेद कर नहीं निकल पाता।

२४ होय सुद्ध·········व्है जाय।

परिचय-सत्संगति को प्राप्त कर मनुष्य शुद्ध हो जाता है।

शब्दार्थ—मिटि=मिटकर। कलुसता=मलिनता। परसि=छूकर। कनक=सोना।

अर्थ-जैसे पारस पत्थर को छूकर लोहा सोना बन जाता है, इसी प्रकार, सत्संगति को पाकर मनुष्य शुद्ध बन जाता है।

२५ जिहिं प्रसंग·········कलाली हाथ।

परिचय—जिसके साथ से निन्दा हो, उसका साथ छोड़ देना चाहिए।

शब्दार्थ-जिहिं=जिसके। प्रसंग=संसर्ग, साथ। ताको=उसका। कलाली=शराब बेचने वाली। ता को=उसको।

अर्थ-जिस व्यक्ति के संसर्ग से निन्दा हो (दूषण लगे) उसके सग का परित्याग कर देना चाहिए। क्योंकि, कलाली के हाथ में (पात्र मे) दूध को भी संसार शराब ही मानता है।

२६ सज्जन तजत·········कुठार।

परिचय—सौ अपराध करने पर भी साधु पुरुष अपना स्वभाव नहीं छोड़ता।

शब्दार्थ—कीन्हेहु=करने पर भी। छेदै=काटता है। तऊ=तो भी। सुरभित=सुगंधित। कुठार=लकड़ी काटने का कुल्हाड़ा।

अर्थ-अनेक दोष (दुष्टताएं) करने पर भी सज्जन पुरुष अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। चन्दन अपने को काटने वाले कुल्हाड़े को भी सुगन्धि ही देता है।

२७ जाको जंह.........कारी रात।

परिचय—जिससे जिसका स्वार्थ निकलता है, उसको वही प्यारा है।

शब्दार्थ-जाकौ=जिसका। सधै=सिद्ध हो। ताहि=उसको। सोई=वही। सुहात=अच्छा लगता है।

अर्थ-जैसे चोर को चान्दनी रात नहीं सुहाती (काली अच्छी लगती है), इसी प्रकार जिसका जहां से काम सरे, वही उसको प्यारा होगा।

२८ कष्ट परे हूं.........वान।

शब्दार्थ-परेहूं=पड़ने पर भी। महत=महान। नेकु=रत्ती भर। मलान=निरुत्साहित, म्लान। ताइए=पिघलाओ। वान=दीप्ति।

अर्थ—सोने को ज्यों ज्यों पिघलाओ, त्यों त्यों उसकी दीप्ति (चमक) बढ़ती है (वह मलिन नहीं होता)। इसी प्रकार विपत्ति पड़ने पर भी बड़े लोग म्लानमुख नहीं होते (उनके मुख की दीप्ति कम नहीं होती)।

२६ सब से लघु.........तन करतार।

परिचय—संसार में भिक्षा वृत्ति सबसे हल्का काम है।

शब्दार्थ—लघु=हल्का, तुच्छ। मांगिबो=मांगना। यामें=इस में। बलि=पाताल का राजा दानवराज। यै=से। याचत=मांगते बावन=वामन।

अर्थ—पातालराज बलि से याचना करते ही, भगवान् (करतार) का शरीर वामन रूप हो गया था। क्योंकि, मांगना संसार में सबसे

तुच्छ वस्तु है (मांगने वाला बहुत छोटा हो जाता है), इसमें जरा सा भी फेर फार नहीं है।

३० भले बचन·········कस्तूरी बास।

परिचय—दुष्ट के मुख मे भले वचन नही सोहते।

शब्दार्थ—नाहिंन=कदापि नहीं। घन=घनी। बास=सुगंधि।

अर्थ—घनी सुगन्धि वाली कस्तूरी का हींग और लशुन से मिलान (संयोग) अच्छा नहीं लगता। इसी प्रकार दुष्ट के मुख मे भले वचन भी नहीं सुहाते (उनका भी मेल नही मिलता)।

३१ विपति बड़े ही·········ससि सूर।

परिचय—विपत्ति बड़े लोग ही सह सकते हैं, अन्य नही।

शब्दार्थ—इतर=अन्य साधारण। गहै=ग्रहण करने पर। राहु=राहु। सूर=सूर्य।

अर्थ—जब राहु सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण करता है, तो तारे एक ओर ही खड़े रहते हैं, जो ठीक ही है, क्योंकि विपत्ति महाजन ही सहा करते हैं, अन्य लोग तो ऐसे अवसर पर दूर भाग जाते हैं।

३२ सब देखें पै·········होय।

परिचय—सब दूसरों का ही दोष देखते हैं, अपना नही।

शब्दार्थ-पै=परन्तु। काय=काई। उजेरा=प्रकाश। तरे=तले। होय-होता है।

अर्थ—दीपक सबको प्रकाशित करता है, परन्तु उसके अपने तले अन्धकार ही रहता है। इसी प्रकार, मनुष्य और सब को देखता है, पर अपने दोष को नहीं देखता।

३३ सन्त कष्ट सहि·········उजेरो दीप।

परिचय—सन्त लोग आप कष्ट पाकर भी अन्य को सुख से रखते हैं।

शब्दार्थ—सहि-सहकर। राखैं राखि-रखे रहते हैं। जरैं-जलता है।

अर्थ—दीपक अपने को जलाता है और अन्यों को प्रकाश देता है, इसी प्रकार, सन्त लोग भी स्वयं कष्ट सहकर भी, अन्य को अपने पास अति सुखी रखते हैं।

३४ कोऊ दूर न·········सको कलंक।

परिचय—किसी के कर्म भोग को कोई नहीं मिटा सकता।

शब्दार्थ—बिधि-ब्रह्मा जी। उलटे-उलटे किए हुए। अंक-अक्षर। उदधि-समुद्र।

अर्थ—चन्द्रमा का समुद्र पिता है, परन्तु वह भी चन्द्र का धब्बा नहीं मिटा सका। सच है, क्योंकि ब्रह्माजी के उलटे किये हुए भाग्य अक्षरों को कोई दूर या सीधा नहीं कर सकता।

३५ होय भले के·········ते जोय।

परिचय—भले के बुरा और बुरे के भला पुत्र भी संसार में हो जाता है।

शब्दार्थ—सुत-पुत्र। ते-से। जोय-देख। प्रगट-प्रकट है।

अर्थ—प्रकाश वाले दीपक से काला काजल प्रकट होता है और कीचड़ से कमल जैसी सुन्दर वस्तु उत्पन्न होती है। इसी प्रकार, भले पिता के भी बुरा पुत्र और बुरे पिता के भी भला पुत्र उत्पन्न हो जाता है।

३६ ठौर देखि कै·········सूधो सांप।

परिचय—नीति का वचन है। टेढ़ी सीधी चाल स्थान देखकर चलनी चाहिये।

शब्दार्थ—ठौर-स्थान। हूजिये-बनिये। कुटिल सरल गति-टेढ़ी गति वाला और सीधी चाल वाला। बांबी-सांप का बिल।

अर्थ—सांप संसार भर में टेढ़ी चाल चल कर घूम आता है, पर अपने बिल में जब घुसता है, तो सीधी चाल से। इसी प्रकार मनुष्य को भी स्थान देख कर ही टेढ़ी सीधी चाल वाला बनना चाहिये।

३७ बिना कहे हूं.........करत प्रकाश।

परिचय—सज्जन पुरुष बिना कहे ही दूसरों की आशा पूरी करते हैं।

शब्दार्थ—हू–हो। पर–अन्य। पूरे–पूर्ण करते हैं। आस–आशा।

अर्थ—सूर्य को बिना कहे ही वह घर घर में प्रकाश करता है। इसी प्रकार, सत्पुरुष भी बिना कहे ही (अपने मन से ही) दूसरों की आशा पूर्ण किया करते हैं।

३८. द्वैही गति हैं..........बिलाय।

परिचय—बड़ों की दोही गतियां हैं, सम्मान से रहें या स्थान पर ही नष्ट हो जायं।

शब्दार्थ-द्वै=दो। गति=दशा। भाय=भाव, रूप। कै = या। बिलाय=समाप्त होता है।

अर्थ—मालती पुष्प जैसे या तो सब के सिर पर रहता है और या वन में ही समाप्त हो जाता है, इसी प्रकार महाजनों की भी दोही दशाएं होती हैं (या तो सब के सिर पर (आदर पूर्वक) रहते हैं, अन्यथा वन में नष्ट हो जाते हैं)।

३९. प्रभु को चिन्ता..............थन माहिं।

परिचय—प्रभु स्वयं सब की चिन्ता रखते हैं, स्वयं चिन्ता व्यर्थ है।

शब्दार्थ-सवन=सबों। आपुन–अपने आप। अगाऊ=पहिले।

अर्थ—प्रभु को सब की चिन्ता है। स्वयं चिन्ता नहीं करो। (वह इतना दयालु है कि) जन्म से पहले ही मां के स्तन में (बच्चे के लिए) दूध भर देता है।

४० काहू को हंसिये..............निरमूल ।

परिचय—संसार में हंसी क्लेश का मूल है ।

शब्दार्थ–काहू को=किसी को । कलह=झगड़ा, फिसाद । मूल=कारण, जड़ । ते=से । निरमूल=निर्मूल ।

अर्थ—हंसी के कारण कौरव कुल का समूल नाश हुआ । अतः किसी को हंसो नहीं, क्योंकि हंसी झगड़े फिसाद का कारण है ।

राजसूय यज्ञ के समय, भवन को कारीगरी से भ्रम में पड कर दुर्योधन ने दीवार में द्वार समझ कर सिर मार लिया था । द्रौपदी देख रही थी । उसने हंसी मे कह दिया था, अन्धे का पूत अन्धा । दुर्योधन के यह कांटा बुरी तरह चुभ गया था और परिणाम महाभारत हुआ था । इसी घटना का संकेत है ।

गिरिधरदास

१. दौलत पाय न..............सब हीं के दौलत ।

परिचय—संसार में दौलत पाकर अभिमान नहीं करना चाहिये, यह चार दिन की पाहुनी होती है ।

शब्दार्थ–दिन चारि को=चार दिन को । ठांउ=स्थान पर । निदान=नादान, मूर्ख । जियत=जीते हुए । घटि तौलत=घट के तोलती है । निस=रात । पाहुन–पाहुनी ।

अर्थ–यह दौलत (कमल पत्र पर पड़े) जल के समान चञ्चल होकर चार दिन को भी एक स्थान पर नहीं ठहरती, इसलिये इसको पाकर कोई स्वप्न में भी अभिमान न करे । यह दौलत एक स्थान पर कभी स्थिर नहीं रहती, अतः जीते जी ही संसार में यश कमाना चाहिये । सब से मीठा और विनय पूर्वक बोले । गिरधर कविराज कहते हैं, अरे ! यह दौलत सबको घटकर तोलती है (अपने योग्य नहीं समझती) और सब के यहां चार दिन की पाहुनी रहती है ।

२. साईं या संसार में............कोई साईं।

परिचय—संसार में निःस्वार्थ मित्र कोई कोई मिलता है। नहीं तो सब स्वार्थ के लागू हैं।

शब्दार्थ—साईं—साधु, सन्त। या—इस। लगि=तक। ताको—उसका। लेखा—देखा।

अर्थ—सन्तो! इस संसार में सब स्वार्थ का ही व्यवहार है। जब तक गांठ में पैसा है उसको दुनियां यार है, यार लोग उसके साथ साथ लगे डोलते हैं। परन्तु जब पास कुछ नहीं रहता तो यार लोग मुख से बोलना भी पसन्द नहीं करते। गिरधर कविराय कहते हैं, हमने तो संसार में यही कुछ देखा है। ऐसा भला यार तो कोई कोई बिरला ही होता है, जो बेगरजी की प्रीति करता हो।

३. गुन के गाहक............गाहक गुन के।

परिचय—बिना गुण के कोई गाहक नहीं बनता, गुण के सौ होते हैं।

शब्दार्थ—सहस—सहस्र। गहै—ग्रहण करता है। सबै—सब को। दोऊ को—दोनों का। अपावन—अपवित्र, घृणित। लहै—ग्रहण करता है।

अर्थ—संसार में गुण के सहस्र ग्राहक हैं और गुण-रहित का हाथ कोई नहीं पकड़ता। काक और कोयल दोनों का शब्द लोग सुनते हैं, और दोनों का रंग रूप भी एक सा ही होता है, पर सब को कोयल सुहावनी लगती है और काग बुरा (अपवित्र) लगता है। गिरधर कविराय कहते हैं, हे मन के राजा! बिना गुण के कोई गाहक नहीं और गुण के सहस्र नर गाहक हैं।

४. साईं अवसर के पड़े............के साईं॥

परिचय—विपत्ति में पड़कर बड़ों को भी तुच्छ काम करने पड़ते हैं।

शब्दार्थ—साईं=साधु। बिकाने=बिके। डोम=चाण्डाल।

वै=प्रसिद्ध दानी सत्यवादी। रखवारी=रखवाली। तपै=पकता है। वह=प्रसिद्ध गदा चालक बली। घटि=घट कर।

अर्थ—हे साधु! अवसर पड़ने पर कौन दुःख कष्ट नहीं सहता। वे प्रसिद्ध सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र जाकर चाण्डाल के घर बिके। उन प्रसिद्ध दानी महाराज हरिश्चन्द्र को मरघट की रखवाली करनी पड़ी। बलधारी अर्जुन को भी तपस्वियों का वेश धारें वन वन घूमना पड़ा। गिरधर कविराय कहते हैं, उस प्रसिद्ध वीर भीम ने (विराट के घर) भी रसोई पकाई। संसार में अवसर पड़ने पर कौन घट कर काम नहीं करता?

५. बिना विचारे जो करै············बिना विचारे॥

परिचय—बिना विचारे काम करने पर, नुकसान होता है, दुनियां बेवकूफ भी बनाती है।

शब्दार्थ—हंसाय=हंसाई। भावै=अच्छा लगता है। टरत= टलता। खटकत=खटकता।

अर्थ—बिना विचारे काम करने पर पीछे से मनुष्य पछताता है, अपना काम बिगाड़ता है और दुनियां में हंसाई होती है। उस व्यक्ति का चित्त चैन नहीं पाता, खान पान सम्मान और राग रंग उसके मन को नहीं भाते। गिरधर कविराय कहते हैं, उसका दुःख (पश्चात्ताप) टाले से नहीं टलता और बिना विचारे किया हुआ काम चित्त में सदैव शूल की तरह चुभता रहता है (खटकता रहता है)।

विविध

मलिक मोहम्मद जायसी

पद्य—नानिसता जो आपु·········आपनि पीठी।

परिचय—जायसी ने इन चौपाइयों में सूफी मत के प्रेम सिद्धान्त का निरूपण करके प्रेम साधक का भी वर्णन किया है। जिसने संसार

के विषयादि का उपभोग किया, उसने इस प्रेम रस को अपने लिए विष बना लिया, किन्तु जिन्होंने विषयों की ओर ध्यान नहीं दिया, उनको अनन्त प्रेमागार भगवान् के दर्शन हो गये और उन्होंने घर बार छोड़ दिया।

शब्दार्थ—नानिसता=निःस्वत्व, अपना आपा खोये हुए। भएऊ=हुए। एहि रसहि=इस प्रेम रस को। मारि=मार कर, दुरुपयोग कर के। किएऊ=कर लिया। थिर=स्थिर। जेंउ=तरह। बिलाहि=अदृश्य हो जायगा। रसे=विषय रस के विषय में। बाएं=विरोधी। तेहि कहँ=उन के लिए। विषभर=विषपूर्ण। होइ गएऊ=बन गया। तेइ=उन्होंने। अरथ=धन ऐश्वर्य। बहारू=बहार। मोठ=मोठा। उहै=उन्होंने। बार होई=दर्वाजों पर जाकर। जस=जैसे। नियर=नजदीक। वह=उस ईश्वर को। तर=नीचे। मह=में। तैजे=देखता है। पुहुमा=पृथ्वी। दाठी=दृष्टि। हेरै नवे=नीचे देखता है। पांठि=पीठ।

अर्थ—जो लोग अपने स्वत्व (व्यक्तित्व) को खोकर ऊंचे नहीं उठे उन्होंने इस सांसारिक प्रेम के आनन्द रस का दुरुपयोग कर के इसे अपने लिए विषमय कर लिया। यह संसार झूठा है, घिरे हुए बादलों के समान उड़ जायगा। स्थिर नहीं है। जो इस विषयानन्द के विरोधी बने उन्हें यह इन्द्रिय सुख विष भरा लगा। उन्होंने संसार की सारी बहार छोड़ कर, घर बार कुटुम्ब सर्वस्व का त्याग कर दिया। खीर खाण्ड में उन्हें मजा नहीं आया, उन्होंने घर घर जाकर भिक्षा मांगी। जीवों के जैसे जैसे निकट हो कर उन्होंने देखा, उन्हें संसार के हृदय में उसी अनन्त प्रेम के भण्डार रूप ईश्वर का दर्शन हुआ। वे प्रेम मार्गी साधु जमीन देखते चलते हैं, किसी से आंख नहीं लगाते। नीचे देखते हैं, घूम कर पीठ पीछे नहीं देखते (निःशङ्क और निःसङ्ग चलते हैं)।

छोड़ि देहु सब..........कर साथ ॥

परिचय—संसार से विरक्ति धारण कर के अकेला निकल चल।

शब्दार्थ—देहु-दे। सौं-से। कर छोड़ि कै-हाथ से छोड़ कर। धरु-रख। काया कर-शरीर का।

अर्थ—जगद् व्यवहार से हाथ निकाल कर, सब काम धन्धा छोड़ दे और घर और सम्पत्ति को हाथ से छोड़ कर केवल अपने शरीर का साथ ले ले।

राजा का जोगी होना

तजा राज भा जोगी..........करि राता।

परिचय—राजा रत्न सेन पद्मिनी को पाने के लिए गोरख पन्थी जोगी का वेश बना कर निकल पड़ा। कवि ने उसके जोगी रूप का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—भा-हुआ। किंगरी-एक सरङ्गी जैसा बाजा। बिसंभर-व्याकुल। बाहुर-बहुत। लटा-अशान्त। अरुझा-उलझा। परी-पड़ी। मेखल-मेखला। सिघी-गोरख धंधारी, गोरख पंथीयों की एक वस्तु। बाट-मार्ग। रुद्र छाल-रुद्र नामक वृक्ष की छाल। कंथा-चिथड़े। पहरि-पहिन कर। गहा-पकड़ा। कहं-को। मुद्रा-जो कनफटे साधु कानों मे पहिनते हैं। स्रवन-श्रवण। उद पान-तूंबा। बग-व्याघ्र। पांवरि-जूती। करिराता-लाल कर के।

अर्थ—राजा रत्न सेन वियोग में राज्य छोड़ कर योगी हो गया और हाथ में छोटी सरङ्गी पकड़ली। शरीर कुम्हलाया हुआ है और मन मे पद्मिनी को देखने के लिए व्याकुलता है। प्रेम में उलझने पर सिर में जटाएं पड़ी (रखी गई)। चाँद जैसे मुख और चन्दन जैसे शरीर की राख मल कर राख ही करली है। मेखला, सिंघी, और रुद्र

वृष की छाल धारण की और चिथडे वस्त्र पहिने और हाथ में दण्ड लेकर योगी होने के लिए 'जय गोरख' मुख से उच्चारण किया। कानों में मुद्राएं पहिन लीं, गले में जप माला डालली, कान्धे पर बाघ चर्म डाल ली, पांव में जूती पहिनली, सिर पर छाता लगा लिया, हाथ में पानी पीने का तूंबा ले लिया, हाथ में खप्पर धारण कर लिया और लाल रङ्ग का वेश बना लिया।

चला भुगति मोगे ····· ···हिये वियोग।

परिचय—जायसी कहते हैं, हे पद्मिनी! राजा रत्न सेन तेरे ही प्रेम को हृदय में धारण कर, भोग प्राप्त करने के लिए योगी बना है।

शब्दार्थ—भुगति-उपभोग। मांगे कहं-मांगने को। साधि-सिद्ध कर के। होई-हो गया। तेर ही-तेरा ही।

अर्थ—हे पद्मावति! राजा रत्न सेन ने हृदय में तेरा ही वियोग लेकर, तेरे ही उपभोग की कामना से, तपस्या और योग की साधना की है और वह योगी बना है।

भ्रमर-गीत

नन्द दास

१ ताही छिन इक·········मधुप कौ भेष धरि।

परिचय—जहां, गोपियां बैठीं कृष्ण की याद कर रही थी, वहीं एक भ्रमर आता है जो अपने स्वभाव वश, उनके हाथ पांव मुख की ओर झपटता है।

शब्दार्थ—ताही छिन=उसी क्षण। तहं=वहां। व्रजबनितन=ब्रज युवतियों। चहत=चाहता है। पग पगिन=पावों पर। अरुन =लाल। दल=कोमल पत्ते। मनु=मानो। मधुप=भौंरा। कौ=का।

अर्थ—(जहां गोपियां बैठी बात कर रही थीं, वहां उद्धव से पहले ही) वहां उस समय एक भौंरा कहीं से उड़कर आ गया, जो ब्रजयुवतियों के मण्डल में गूंजता और शोभा पाता हुआ उनके हाथ पांवों पर कोमल कमल दल समझ कर झपटा मारने लगा। (कवि के हृदय में उसे देख कर ख्याल होता है) मानो भौंरे का रूप बना कर भ्रमर बना हुआ ऊधो पहिले ही आ गया हो (ऊधो इसके पश्चात् पहुंचेगा)।

२ ताहि भंवर सों·········यहां ते दूर हो।

परिचय—गोपियां भ्रमर से कहती हैं, हम तुम्हें भी कृष्ण जैसा ही चोर समझती हैं। हमारे पांव नहीं छू। भाग जा यहां से।

शब्दार्थ—सो=से। प्रति उत्तर=प्रश्नोत्तर रूप में। तर्क वितर्क=उक्ति प्रत्युक्ति, सवाल जवाब। जुक्त=सहित। घातें=प्रहार। जनि=मत। हुते=थे। ते=से।

अर्थ—गोपियां तब उस भौंरे पर तर्क वितर्क युक्त प्रेम रस भरी चोटें और उत्तर प्रत्युत्तर रूप में बातें करने लगी। अरे! हट, यहां से दूर हो। तुम्हें भी हम चोर ही मानती हैं। हमारे पांव नही स्पर्श करो। मोहन नन्द किशोर भी तुम्हारे ही जैसे कपटी थे (वे भी काले और गोपियों का दिल चुराने वाले थे)।

३ कोउ कहै री·········चोरि जनि जाय कछु।

परिचय—कोई कहती है कृष्ण ही मधुकर वेष धारण करके फिर ब्रज में आए हैं। इनका विश्वास नही करो।

शब्दार्थ—उन कौ हौ=उनका ही। धार्यो=धारण किया हुआ। किंकिन=पैंजनी। वापुर=उस नगर, मथुरा। गोरस=दूध माखन आदि। कै=कर: मानहु=मान करो। जनि=नहीं।

अर्थ—कोई कहती है, अरी! यह भ्रमर वेश कृष्ण का ही धारण किया हुआ है। देखो इसका रंग काला और पीला है (कृष्ण का शरीर

श्याम और वस्त्र पीत था। भ्रमर के मुख पर भी पीला रंग होता है, मधुर गुंजार पैंजनियों जैसा शब्द हो रहा है। यह उस नगर (मथुरा) का गोरस चुरा कर फिर इस ब्रज में आया है। इसका वेश छलिया है। अब इनका कोई विश्वास न करना, कहीं फिर कुछ चोरी चला जाय।

४. कोउ कहे री······ कपट के छंद सों।

परिचय—कोई कहती है, रे मधुप! तू क्या प्रेम का रस जाने? तू हमारे प्रेम रस में भी ज्ञान की दुविधा जगा कर हमे अपने जैसा करना चाहता है।

शब्दार्थ—कहा = क्या। बैठिसबै=बैठकर सबको। सम= समान। दुविध=दुविधा, सन्देह। छन्द=जाल।

अर्थ—कोई कहती है, रे मधुप! तू क्या जाने प्रेम रस क्या होता है? तू तो अनेक पुष्पों का रस लेकर अपने जैसा सबको मानता है। मूर्ख! तुम अपने कपट जाल से, हमारे प्रेमानन्द को भी अपने ज्ञान की दुविधा से नीरस करना चाहते हो और हमें अपने जैसा बनना चाहते हो।

गोपियों का कृष्ण प्रेम एक-रस था। उसमें ब्रह्म ज्ञान की दुविधा (सन्देह) उत्पन्न करके ऊधो उनके प्रेम को नीरस करना चाहता है।

५. कोउ कहै रे मधुप······जात किन पातकी।

परिचय—गोपियां अन्त में अधीर हो उसे भर्त्सना पूर्वक 'गेट आउट' कहती हैं।

शब्दार्थ—मधुकारी=मधु करने वाला (मीठा बोलने वाला)। कह=कहता है। बेकारी=व्यर्थ में। रुधिर—लहू। बहुनक=बहुतों का। अरुन=लाल। रंग रात=लाल रंग में रंगे। जात किन= जाता क्यों नहीं।

अर्थ—कोई कहती है, रे मधुप! तुम्हे मधुकारी कौन कहता है? तुम अपने मुख में ज्ञान का उपदेश लिये हो और व्यर्थ में दूसरों की

गांठ काटते फिरते (हमारे प्रेम को चोरने आये) हो। तुम अनेकोंका रक्त पान कर चुके हो, उसी के रंग से रंग तुम्हारे अधर लाल चमक रहे हैं (भ्रमर के मुख पर लाल रंग प्रतीत हुआ करता है) अब ब्रज में तुम यहां क्या करने आये हो ? किसकी घात में हो ? पापी ! यहां से जाता क्यों नहीं ?

कृष्ण के द्वार पर सुदामा के आगमन का समाचार कृष्ण को कहना

(नरोत्तम दास)

द्वारपाल—सीस पगा न झगा...........जनाई प्रीति ।

परिचय-इस में कवि ने सुदामा के द्वारिका में कृष्ण के महल में पहुंचने, उसके रूप और कृष्ण द्वारा सत्कार का वर्णन किया है।

शब्दार्थ-पगा=पगड़ी। झगा=कमीज । जानै को आहि=न जाने कौन है। लटी=लीर। दुपटी=दो पाटों की। उपानह्=जूता। चकि=चकित होकर देखना । सो=वह। वसुधा=भूमि। अभिराम=सुन्दर । धाम=भवन । लोचन=नेत्र । पूरि=भर । सुरनायक=इन्द्र । कल्पद्रुम=कल्पवृक्ष । खखेट्यो=खटका, शंका। कम्प=भय की कंपकपी। परसे=स्पर्श करने पर । रमा पति=लक्ष्मी पति कृष्ण । अंक=बाहों में। भरि=लेकर । बिहाल=बेहाल । पुनि जोए=फिर देखे। इतै = इधर । कितै=किधर। करुना निधि= दया सागर । तिय=स्त्री। हुते=थे। विप्र=ब्राह्मण। सुहृद=मित्र । जनाइ=बताई। तन्दुल=तण्डुल, चावल ।

अर्थ—द्वारपाल सूचना देता है, भगवन् ! द्वारपर एक दीन दुर्बल ब्राह्मण खड़ा है और सुन्दर स्थान को चकित सा देख रहा है। सिर पर पगड़ी नहीं, शरीर पर कमीज नहीं, प्रभु ! पता नहीं, कौन है, किस ग्राम में रहता है। फटी लिटी दो पाटों की धोती है, और पांव

में जूता नहीं। प्रभु के घर का संकेत पूछ रहा है और अपना नाम सुदामा बताता है।

सुनकर, प्रभु के लोचनों में जल भर आया और उन्होंने दूर से कृपा दृष्टि करके सुदामा के सब कष्ट मिटा दिये। उस समय इन्द्र के मन में (अपने राज्य जाने की) शंका हुई और कल्पवृक्ष को (अपने यश के जाने का) खतरा हुआ। कृष्ण ने जब सुदामा का स्पर्श किया, तो कुबेर के मन में (अपने खज़ाने के विषय में) चिन्ता हुई और सुमेरू नामक सोने का पर्वत भय से अपने पांव समेटने लगा लक्ष्मीपति कृष्ण ने जब सुदा को अपनी भुजाओं में लेकर स्नेहालिंगन किया, तो वह रंक से राजा बन गया (उसके घर संसार की सुख समृद्धि पहुंच गई) सुदामा के पांव बेवाई फटने से वे हाल थे। इस पर भी भगवान ने फिर उनमें कांटे गड़े देखे। हाय ! मित्र ! तुमने बहुत दुःख झेले। तुमने इतने दिन कहां खोये ? इधर क्यों नहीं आये ? (यह कहकर) दया सागर भगवान सुदामा की करुणदशा देख कर बहुत रोये और परात के जल को हाथ में नहीं लिया बल्कि अपने करुणाश्रुओं से ही सुदामा के चरण धोये। भगवान के सामने भेंट रखने के लिये पत्नी ने सुदामा को थोड़े से चावल दिये थे। पर अब शाही ठाठ को देख कर सुदामा उन्हे निकालता लजा रहा था। भगवान अन्तर्यामी कृष्ण मन की सब बात जानते हैं, पर प्रकट अपने मित्र सुदामा ब्राह्मण से उन्होंने प्रीति ही जनाई।

श्री कृष्ण–कछू भाभी हम कों.........चतुरानन त्रिपुरारि।

परिचय–कृष्ण सुदामा से भाभी की भेंट मांगते हैं और सुदामा के संकोच पर पिछली बात याद दिलाकर उससे ठठोली करते हैं। कृष्ण के इतने प्रेम को देखकर शिव-ब्रह्मा में काना फूसी होने लगती है कि पता नहीं कृष्ण आज सुदामा को क्या दे दें ?

शब्दार्थ–काहे=किस लिए। देत=देते। चांपि=दाबकर।

हि हेत=किस लिए । दए=दिये थे । लए=लिए । चाबि=चबा । प्रवीने=प्रवीण । बानि=आदत । अजौं=आज भी । तैसेई=वैसे ही । सकुचत=संकोच करता है । जीरन=पुराना । चबत=चबाते में । चवाउ=काना फूंसी, चुगली । चतुरानन=चतुर्मुख, ब्रह्मा । त्रिपुरारि=शंकर ।

अर्थ—कुछ भाभी ने हमारे लिए जरूर दिया होगा । उसे तुम क्यों नहीं देते ? कांख में दबा कर क्यों रखे हो ? आगे भी एक बार गुरु माता ने तुम्हें चने दिये थे । तुमने स्वयं चबा लिये थे और हमें नहीं दिये थे । कृष्ण ने थोड़ा मुस्करा कर सुदामा से कहा, चोरी की आदत में हो तुम पूरे (चार सौ बीस) जो तुम प्रेम के अमृत रस में भीगे हुए पदार्थों को नहीं खोलते हो और पोटली को कांख में दबाये हुए हो । मालूम होता है, पिछली आदत तुमने अभी छोड़ी नहीं और वैसा ही तुम इन भाभी के चावलों से भी करना चाहते हो ।

सुदामा ग़रीब पोटली खोलता संकोच करता है और कृष्ण की ओर देखता है । इतने में पुराना वस्त्र फट कर चावल भूमि पर बिखर जाते हैं और भगवान एक मुट्ठी भर कर मुंह में डालकर चबाने लगते है । उस समय ब्रह्मा और शिव में परस्पर काना फूंसी (चुगली) होने लगती है (कृष्ण के कार्य को वे शंकित होकर आलोचना करने लगते हैं, चुपके चुपके) ।

वसन्त

(सेनापति)

१. बरन बरन तरु············कहियत है ।

परिचय-कवि ने वसन्त की प्राकृतिक शोभा का वर्णन किया है ।

शब्दार्थ—तरु=वृक्ष । सोई=वही । चतुरंगदल=चतुरंगिणी सेना । दल=पत्ते । सम=समान । लहियत=पायी है । बन्दी=

बन्दी गण,भाट । जिमि=तरह । बिरद्=बड़ाई । गइयत=गाये जाते हैं। आव—आती है । पुहुपन—पुष्पों ।;सोंधे—एक सुगन्धित घास । सने-भीगे । आवत—आता ।

अर्थ—उपवनों (बागों) में विविध रंग के वृक्षों पर फूल पत्ते खिले हुए हैं, जो ऋतु राज की चतुरंगिणी सेना की शोभा पाते हैं। कोकिलों की भीड स्तुति करने वाले वन्दीजनों के समान ध्वनि करती है और भौरें गुंजार रहे हैं, जो मानों वसन्त के गुण गाये जा रहे हैं। आसपास सर्वत्र पुष्पों की सुगन्धित सुगंध (वायु) में मिलकर व्याप्त हो रही है। सेनापति कहते हैं, शोभा का सागर और सुख का साज आज सुनते हैं वसन्त आ रहा है।

२ लसत कुटज घट.........कवित्त हैं।

परिचय--विविध लाल पीले वर्णों के फूल खिल रहे हैं, उन पर वैठे काले भ्रमर बसन्त द्वारा लिखे कामदेव के पराक्रम के कवित्तो के अक्षरों जैसे लगते हैं।

शब्दार्थ—लसत=चमकते हैं। कुटज=ऐक पुष्प वृक्ष। घन चम्प=घने चम्पा के वृक्ष। पलास=ढाक। सेत=श्वेत। आछे=हैं। अलि=भ्रमर। अच्छर=वर्ण, अक्षर;) कारज के मित्त=स्वार्थ के मित्र। माधव=वसन्त। नेम=नियम। द्विज=पक्षी। घोष=शब्द। कागद=कागज। चक्कवै=चक्रवर्ती राजा। बिक्रम-बल।

अर्थ—घने कुटज, चम्पा और पलास के वृक्ष वनों मे फूले हुए चमक रहे हैं, जिनकी ये पुष्पित शाखायें जनों के चित्त को हरती हैं। चारों ओर श्वेत, पीले और लाल फूलों की चादर सी (जाल सा) बिछा है, जिन पर अपने स्वार्थ के मित्र भ्रमर रूपी (काले) वर्ण स्थित हैं। सेनापति कहते हैं, वसन्त के सारे महीने तक कोयल आदि पक्षी नित्य नियम से शब्द करते हैं। इस सब शोभा (फूलों पर भ्रमर बैठे हुए) को देखकर लगता है, मानो चतुर वसन्त ने रंगीन कागज़

पर चक्रवर्ती कामदेव के बल विक्रम की प्रशंसा में कवित्त लिख रखे हों।

३ लाल लाल टेसू............परचाए हैं।

परिचय--लाल लाल और काले पलाश पुष्प (टेसू) खिले हैं, उन पर भ्रमर बैठे हैं, जो ऐसे लगते हैं, मानो काम ने विरहियों के कुछ मनो को जला रखा हो और कुछ को बुझा कर कोयला कर रखा हों। वसन्त मे विरहियों के मन को काम अधिक जलाता है।

शब्दार्थ--भेंट=मिलकर। मसि=स्याही। मधु काज=पुष्प रस के लिए। आहृ=हैं। मलय पवन=मलयाचल की वायु। भाउ =भाव। विरही-दहन=वियोगियों को जलाने वाला कवैला= कोयला। परचाए हैं=बुझाये हैं।

अर्थ-सब ओर लाल लाल विशाल टेसू फूल रहे हैं, जिनमें काला रंग ऐसे चमक रहा है मानो स्याही मिलाए हुए हों (टेसू पुष्पों के ऊपर का भाग काला होता है। उन पर मधु के लिए भौंरे आकर बैठ रहे है और घन बागों में मलय पवन बह रही है। सेनापति कहते हैं, वसन्त के महीने में पलाश वृक्षों को देख २ कर मन में ये भाव जगे हैं कि मानो वियोगियों को जलाने वाले कामदेव ने वियोगियों के आधे मनों को जलाया हुआ हो और आधों के मनों को बुझाकर कोयला कर रखा हो। (जिससे फिर जलाने के काम आ सकें)

घनानन्द

१ सुधा तें स्रवत विष..... ...कैसो बीति है।

परिचय--प्रिया के प्रेम में प्रेमी की दुनियां बदल गई। उसके लिए संसार की रीति उलटी हो गई, जिन वस्तुओं से आनन्द मिलता था, उनसे अब दुःख होता है।

शब्दार्थ-स्रवत=चूता है। सुधा=अमृत। जमत=उत्पन्न होता है। सूल=शूल, पीड़ा। जारैं=जलाता है। सुरभंग=स्वर भंग, बे लय

परै-लगती है। विपरीति=उल्टी रीति है। दोषै=दोषों को। औषधि हूं=दवाई से। पोषै=पुष्ट होता है। दिनन को=दिनों का।

अर्थ-हे प्रेयसी! तुमने मेरा मन ही बदल दिया। मेरे ऊपर दिनों का फेर आ गया है। घनानन्द कहते हैं, अहो! बिना आनन्द के जीवन पता नहीं कैसे कटेगा? क्योंकि, हमारे लिए अमृत से विष टपकता है, फूल से शूल उठता है, चन्द्रमा तम उगलता प्रतीत होता है। एक अजीब दशा उपस्थित है। पानी से शरीर जलता है, रागों में लय नहीं प्रतीत होती, सम्पत्ति विपत्ति लगती है, गुण दोष बनते जा रहे हैं, दवाई से मर्ज बढ़ता है, कितनी कष्टकर अनीति है। यह सब जानकर मन को लज्जा आती है।

२ स्याम अंग संगिनी…………अन्तर को धोइ है।

परिचय—कवि भाव में यमुना की स्तुति करता है।

शब्दार्थ—रंगिनी=रंग वाली। सौ=से। भाई=पानी। माद=आनन्द। उदार=चौड़ी। पुनीत=पवित्र। वाइ=जाय, पानी। आनि-आकर। मानिलै-अपना मान ले। हठि-हठ करके। पन-प्रेम। क्यों हूं-किस लिए। धोइ है-धोयेगा।

अर्थ—(कवि यमुना से प्रार्थना करता है) हे यमुना मइया! तुम श्याम के अंग के संग वाली हो [स्नान करते समय तुम कृष्ण के शरीर का स्पर्श करती थी], विशाल क्रीडा के रंग वाली हो, अनुपम तरंगों वाली और दया में भोली [कृपालु] हो। तुम आनन्ददायिनी और बड़ी आयत [विशाल] हो, संसार के ताप को शान्त करने वाला तुम्हारा पवित्र जल है। घनानन्द कहते हैं, मैं तुम्हारे तीर पर आकर पड़ा हूँ। हाय हाय करके, हठ करके रोता हूँ और विनति करता हूं। हे माता! मुझे दीन-हीन जानकर अपने चरणों में ले लो। बादल से पपीहा किस लिए प्रेम पालता है? इसलिए कि बादल पपीहे के [illegible]

से मलिन हृदय का मल साफ कर देगा [यही उद्देश्य लेकर मैं भी तुम्हारे तीर पर आया हूँ ।

अन्योक्ति

दीनदयाल

१ बहुगुन तो में है.........ते बहुगुन

परिचय—नदी की अन्योक्ति से किसी सुन्दरी को शिक्षा दी जा रही है, जिसे भले बुरे का ज्ञान नहीं और अच्छे बुरे से एकसा व्यवहार करती है ।

शब्दार्थ—बहुगुन-बहुत गुण वाली । धुनी-नदी । तो-तेरा । ऐगुन=दोष । बक-बगला । मराल-हंस । बरनै-वर्णन करता है । नसाहि-नष्ट हो जाते हैं ।

अर्थ—दीनदयाल कहते हैं, हे नदी ! तेरे में बहुत गुण हैं, जल भी तुम्हारा बहुत पवित्र है । पर, तुम बगलों और हंसों को एक ही जल मे रखती हो, यह एक भारी दोष है। तुम बक और मराल को एक जल में रखती हो, और ऊंच नीच को नहीं पहिचानती । तुम अच्छी बुरी नही समझती, तुम्हारे लिए तो श्वेत वर्ण वाले सब एक समान हैं। पर यह चाल अच्छी नहीं है-संसार में प्रकट है कि एक ही अवगुण से अनेक गुण नष्ट हो जाते हैं।

२ हारो है हे कञ्ज ....दारु को बेधन हारा।

परिचय—कमल की अन्योक्ति से किसी सुन्दरी को कहा जा रहा है कि वह अपने प्रेमी का आदर करे, उसे सन्ताप नही दे।

शब्दार्थ—कंज-कमल । चंचरीक-भौंरा । तब-तेरे । या-इस । जी कै-दिल से । रावरे-तुम्हारे । इन-इसने । सौरभ-सुगन्धियां । पैंडो-मार्ग। वारिज बंध्यो-कमल में बन्द हो गया मलिंद-भौंरा । दारु-लकड़ी ।

अर्थ—हे कमल ! भौंरा तुम्हारे अन्दर बन्द होकर हार गया है। इसको दुःख नहीं दो, बल्कि दिल से रखो। कष्ट नहीं देना, बल्कि अपना रस उसके सामने रख दो। केवल तुम्हारे ही लिए उसने, अन्य सब सुगन्धियों को छोड़ दिया है। कविवर दीनदयाल कहते हैं, प्रेम का मार्ग अद्भुत है। दारू की कठोर लकड़ी को बेधने वाला भौंरा कमल में बन्द है !

टूटे नख रद·········रद के टूटे।

परिचय—यहां बूढ़े सिंह की अन्योक्ति द्वारा किसी पूर्व पराक्रमी का अब वृद्ध है वर्णन किया गया है।

शब्दार्थ—रद-दांत। जरा—वृद्धावस्था। जम्बुक—गीदड़। गाजें—चीखते हैं। शशक—शशक, खरगोश। राजें—राज्य। पंगु—लंगड़ा। मृग-राज=सिंह।

अर्थ—कविवर दीन दयाल कहते हैं, सिंह के नख और दांत टूट चुके हैं, वह पहिले वाला बल जवाब दे गया है और अब हाय ! बुढ़ापे ने आकर दुःख को और बढ़ा दिया है। उसके लिए महादुख उत्पन्न हो गया है। चारों ओर निडर गीदड़ चिल्लाते हैं, खरगोश और लोमड़िया स्वतन्त्र राज्य करती हैं और मृग चारों ओर क्रीड़ा करते फिरते हैं। परन्तु, सिंह बेचारा नख और दांतों के टूटने से पंगु हुआ बैठा है।

गुरु नानक

१. सर्व बिनासी सदा········ ···भ्रम की काई।

परिचय—ईश्वर सब के अन्दर व्याप्त है। उसे मन में ही खोजो। बिना आत्मज्ञान के भ्रम नहीं मिटता।

शब्दार्थ—अलेपा—निर्लेप, निःसंग। तोहि संग—तेरे साथ, तेरे में। समाई-समाया है। बास—गन्ध। जस—जैसे। छाँ—

कान्ति, छटा। आपा-अपने आप को, आत्मा को। चीन्हें-पहिचाने। काई-मैल।

अर्थ—गुरु नानक कहते हैं, सर्व व्यापक, सदा निर्लेप ब्रह्म तुम्हारे में ही समाया है, जैसे पुष्पो में गन्ध और मुकुट में कान्ति समाई रहती है। इसी प्रकार, ईश्वर घट मे ही रहते हैं, सो वहीं ढूंढो। गुरु का यही उपदेश है कि बाहर और भीतर मे फर्क न समझो (यत पिंडे तद् ब्रह्माण्डे-जो शरीर मे है वही ब्रह्माण्ड मे)। अपने आप को जाने बिना मन का भ्रम नही मिटता।

गुरु गोविन्दसिंह

१. निर्भर निरूप हो कि..........के प्राण हो।

परिचय-कवि ने भगवान के असंख्य और परस्पर विरुद्ध गुण वाले रूपों को देखकर आश्चर्य प्रकट किया है, कि किसका ध्यान किया जाय।

शब्दार्थ—निर्भर—स्वतंत्र। भूपन के भूप-राजाओ के राजा। महादान-महादान वाले। देवै-या-देने वाले। सिद्धता-सिद्धि। सान=शोभा। जाल-फन्दा। काल हूं-काल के भी। गाल-मुख। साल—बाण, कष्ट।

अर्थ—तुम स्वतंत्र और निराकार हो कि सुन्दर स्वरूपवान हो, राजाओ के राजा हो या महादान करने वाले दानी हो। प्राण रक्षक, दूध पूत के देने वाले और रोग-शोक के मिटाने वाले हो या महा मान (गर्व) वाले मानी (Arrogant) हो। तुम विद्या के विचार हो या अद्वैत के अवतार हो? तुम पवित्रता की मूर्ति हो या सिद्धों की शान हो? तुम यौवन के जाल (फन्दे) हो या मौत का मुख हो? तुम शत्रुओ के बाण हो या मित्रों के प्राण हो?

दोहे

(मतिराम)

१. कहा भयो मतिराम ....की माल ।

परिचय—कृष्ण के अन्यत्र आसक्त होने पर ईर्षालु बनी किसी कृष्ण की पूर्व प्रिया को तसल्ली दी गई है कि तू तो लाल है, तेरा मोल वह थोड़ा ही पा सकतो है ।

शब्दार्थ—कहा–क्या । गुंज–गुंजा फल, रत्ती ।

अर्थ—मतिराम कहते हैं, नन्दलाल ने यदि गले में लाल गुंजाओं की माला पहिनली तो क्या हुआ । वह लाल (रत्न) का मोल तो नहीं पा सकती ।

२. अद्भुत या धन ....अति अधिकार ॥

परिचय—घर मे लक्ष्मी का ज्यों ज्यों प्रकाश बढता है उतना ही अभिमनान्धकार भी बढता है ।

शब्दार्थ—या=इस । कौ=का । तिमिर=अन्धकार । मोपै= मेरे पास । अधिकार=अधिक होता है ।

अर्थ–धन के अन्धकार की बात कुछ कही नही जाती बड़ी अद्भुत है । मतिराम कहते हैं रत्न मणियो का प्रकाश जितना बढ़ता है, उतना ही धनान्धकार भी बढ़ता हैं अर्थात् अभिमान होता है ।

३. कोटि कोटि मतिराम....... ... ..कबहूं होर ।

परिचय–फटे मन और दूध में स्नेह (प्रेम और घी) नहीं होता।

शब्दार्थ–कोटि=करोड़ । अस=जैसे । नेह=प्रेम और घी ।

अर्थ–मतिराम बताते हैं, चाहे कितना ही प्रयत्न करो, फटे मन में स्नेह, और फटे दूध में घी या माखन नहीं हो सकता ।

४. अब तेरो बसिबो............ताल ।

परिचय–हंस की उक्ति से किसी कलाकार को कहा जा रहा है कि

अब इस स्थान में रहने लायक दशा नहीं रही, इसलिए यह स्थान छोड़ दो।

शब्दार्थ-बसबो = निवास । पानिप = पानी और आदर सम्मान। पंकमय=कीचड़ युक्त।

अर्थ-हे हंस! अब तेरा यहां रहना उचित नहीं रहा है। तालाब में अब सारा पानी सूख कर कीचड़ भर गया है।

५. दुख दीने हुं सजन जन·········सुवासित केस।

परिचय-कष्ट देने पर भी सज्जन पुरुष अपना सच्चा उद्देश्य नहीं छोड़ते।

शब्दार्थ-दीने हूं=देने पर भी। सुजन=सज्जन। निज= अपना। सुदेस=सद् उद्देश्य। अगरू=अगर पत्र। सुवासित= सुगंधि युक्त।

अर्थ-सज्जन पुरुष दुख देने पर भी अपना परोपकार का उद्देश्य नहीं छोड़ते। अगर पत्र आग मे जलकर भी बालों को सुगन्धित करता है (बालो में लगाने की सुगन्धित द्रव्य बनाकर लगाने से)।

६. पिसुन गखन सज्जन·········तीर तरवारि।

परिचय-निन्दक पुरुष की बातों का सत्पुरुष पर कोई असर नहीं पड सकता।

शब्दार्थ—पिसुन—निन्दक, चुगल खोर। चितै—हृदय को। कारि फारि—काला करना, फाड़ना। कहा—क्या। करै-करेंगे। तुपक—छोटी तोप। तरवारि—खड्ग।

अर्थ– सत्पुरुष के हृदय को निन्दक के वचन न काला कर सकते हैं और न उसे फाड़ सकते हैं। तोप में तीर, तलवार और तुपक लग कर क्या करेंगे?

७ तिहिं पुरान नव द्वै·········पुरान ह्वै जात।

परिचय—अठारह पुराणों का सार यही है कि नया पुराना होता

है और पुराना नया हो जाता है। भाव यह है कि दर्शनों का सिद्धान्त है कि किसी वस्तु का भाव या अभाव कभी नहीं होता। वस्तु का रूप परिवर्तन होता है। वह पुराना रूप छोड़कर क्षण क्षण में नवीन रूप का ग्रहण करती जाती है।

शब्दार्थ--तिहिं=उसने। नव द्वै=दोनो अर्थात् अठारह। जिहिं=जिसने। नव=नया।

अर्थ—जो पुराना है, वह सदा नया है और नया भी पुराना होता है, जिसे इस बात का ज्ञान है उसने अठारह पुराण पढ़ लिए हैं अर्थात उन सब का सार जान लिया है।

८ मद रस मत्त ....निधि हाथ।

परिचय—कवि गणेश जी महाराज और उनके सु फल देने के स्वभाव का वर्णन करता।

शब्दार्थ—मत्त=मस्त। मुदित गन नाय=प्रसन्न गणेश। कैं=के। सिद्ध रिद्ध=ऋद्धि सिद्ध। निधि=कोष।

अर्थ—जिस दिन मतिराम ने मद रस के पान से मस्त हुए भ्रमर, गणके गान से प्रसन्न वदन गणेश जी का स्मरण किया कि उसी दिन तुरन्त उसके हाथ में ऋद्धि सिद्धि का कोष आ गया।

मो मन मेरी बुद्धि..........की फूल।

परिचय—मन और बुद्धि दोनों से शंकर की आराधना कर जो इतने भोले हैं कि धतूरे का फूल लेकर त्रिलोक की सम्पति दे देते हैं।

शब्दार्थ—मो मन=मेरे मन। लै=लेकर। हर=शंभु। अनु-कूल=खुश। साहिबी=राज्य। दै=देकर।

अर्थ—मेरे मन और बुद्धि को लेकर शंकर को खुश कर और एक धतूरे का फूल अर्पण करके त्रिलोक का राज्य प्राप्त करले।

१० कलकल कलिका..........लाल कंकेलि।

परिचय—कवि ने पुष्प मालाएं पहिने भगवान् कृष्ण के रूप को व्यञ्जित किया है।

शब्दार्थ—कल कल=मनोहर। कलिका कुल=कलियों से लदा हुआ। को=कौन। दिल कुल केलि=मन का क्रीड़ा स्थल। लो=लै =कम्पित होता है। कै=करके। कंकेलि=कदम्ब पुष्प की माला।

अर्थ—हृदय के क्रीड़ा के आंगन मे, मनोहर कलियों से बनी हुई, लाल लाल कदम्ब पुष्प की माला किलोल करती हुई कम्पित हो रही है।

११ मधुप मोह मोहन·········जाति सों प्रीति।

परिचय—भ्रमर गीत के ढंग पर गोपी की भ्रमर के प्रति उक्ति है कि काले स्वभाव के निर्मोही होते हैं।

शब्दार्थ—स्यामनि=श्याम वर्ण वालों की। सों=साथ।

अर्थ—हे भ्रमर! मोहन ने हमारा मोह छोड दिया है। (सो, आश्चर्य नहीं) क्योंकि काले लोगों की यही रीति होती है। तुम भी अपना काम करो, क्योंकि तुम भी अपनी कृष्ण (काले) वर्ण की जाति से प्रेम रखते हो।

१२ लखत लाल मुख··· ·····पत्र से नैन।

परिचय—भगवान के खुले हुए नेत्रों और मुख का वर्णन है कि वे अवर्णनीय हैं।

शब्दार्थ—लखत=देखते हुए, खुले हुए। पाइहौ=पाओगे। सतपत्र सौ=शत दल कमल। सहसपत्र सम=सहस्र दल कमल सा।

अर्थ—जिस समय कृष्ण अपने सुन्दर और घनी पलको वाले नेत्रों को खोल कर देखते हैं, उस समय उनके नयन सहस्र दल कमल और मुख शतदल कमल सा लगता है।

नयन। धारि=धारण करके। शोभा=तरंगें। उलसि=उलती हुई। उपमान=समान। भृंगन=भ्रमरों। मिसि=बहाने से। झांई=प्रतिबिम्ब। बहु=बहुत। सात्विक=सतोगुण प्रधान प्रेम, जिसका वर्ण श्वेत माना जाता है। अनुराग=वासनात्मक प्रेम लाल वर्ण वाला माना जाता है। बगरे=विकसित। भौन=भवन। यहि=यमुना। सतधा=शतधा, सौ खण्ड। जल धरत=जल में डुबाती है।

अर्थ—तट पर कहीं अनेक भांति के सुन्दर लाल कमल शोभित हो रहे हैं कहीं शैवाल के मध्य में श्वेत कमलों की पंक्तियां शोभा पा रहीं हैं, जिनसे यमुना की ऐसी शोभा हो रही है, मानो वह अनेक नयन (कमल रूपी) धारण करके ब्रज की सुन्दरता देख रही हो, या वे कमल यमुना और कृष्ण के प्रेम की लहरें उमड़ी हुई हों, या यमुना कमल रूपी अनेक हाथों को ऊंचा करके प्रिय को बुलाती हुई शोभा पा रही हो, या वह पूजा का सामान लेकर प्रिय-मिलन को जा रही हो।

क्या यमुना इन कमलों को अपने प्रिय के चरणों का उपमान समझ कर अपने हृदय पर धारण कर रही है? क्या असंख्य भ्रमरो रूपी मुखों के बहाने से अपने प्रिय की स्तुति बोल रही है? कही ये कमल ब्रज वनिताओं (रमणियों) के मुख कमलों के प्रतिबिम्ब ही तो नहीं हैं? क्या कृष्ण के पदों से सरस बनी ब्रज की भूमि में लक्ष्मी रूपी वधू तो नहीं आ गयी (कमल श्री का नाम भी लक्ष्मी है)? क्या ये कमल ब्रज के सात्विक और राजसी प्रेम के चिन्ह रूप तो नहीं। खिले हुए हैं? कहीं यमुना इन्हे लक्ष्मी (अपनी सौत) को सदन समझ कर ईर्षा से इनके टुकडे करके अपने जल में तो नहीं

डुबाये हुए है (लक्ष्मी को कमलालया–जिसका कमल घर हो–कहा जाता है)

दोहे

दादूदयाल

१. घी व दूध में रमि...... .....ते और।

परिचय–ईश्वर दूध में घी की तरह सर्व व्यापक है, जिसको कोई कोई जानते हैं।

शब्दार्थ–घी व=घृत। ठौर=स्थान। वक्ता=वकवास करने वाले, उपदेशक लोग। ते=वे।

अर्थ–दादू कहते हैं, ब्रह्म जगत में ऐसे सर्व व्याप्त है, जैसे दूध में घी। पर संसार में व्यर्थ के वकवादी बोलने वाले बहुत हैं, दूध को मथकर घी काढ़ने वाले कोई और विरले ही होते हैं।

२. यह मसीत यह..... ..काहे जाइ।

परिचय—यह शरीर ही मन्दिर मस्जिद है, बाहर क्यों जाते हो?

शब्दार्थ—मसीत=पञ्जाबी शब्द, मस्जिद। देहुरा=देह, मंदिर। जाइ=जाओ।

अर्थ–सद्गुरु ने बता दिया हैकि बाहर क्यों जाते हो, यह शरीर ही मस्जिद और मंदिर है और इसके अन्दर ही सेवा और बन्दगी हो सकती है (ईश्वर भीतर है, वहीं उसकी पूजा कर सकते हैं)।

३. दादू देख दयाल को ....जाने दूर।

परिचय—दयालु ईश्वर सर्वत्र भरपूर है। तुम दूर क्यों समझते हो?

शब्दार्थ—सकल=सब में । रमि रहा=व्याप्त है । जनि=नहीं

अर्थ—दादू कहते हैं, देख ! ईश्वर सर्वत्र भरपूर है । रोम रोम में रमा हुआ है । तू अपने से दूर मत समझ ।

४. भाई रे ऐसा पंथ हमारा………।

परिचय—दादू ने अपने पन्थ का वर्णन किया है । कोई शत्रु नहीं कोई मित्र नहीं । सब से तटस्थ वृत्ति है । निर्गुण का आधार ले कर चलते हैं । सर्वत्र आत्मा को व्याप्त देखते हैं । विषय विकार मे मन न फंसा कर ब्रह्म का ध्यान करते हैं ।

शब्दार्थ—द्वै पख=दो पक्ष—शत्रु और मित्र । गह पूरा= ग्रहण करो, पूरा । अवरण=निर्गुण । कदे=कभी । यहि=इस । पन्थ=मार्ग । गहि=पाकर । तत=तत्व । संभारा=संभाला ।

अर्थ—हमारे पंथ का निराकार ब्रह्म आधार है । इसमें दो पक्ष—शत्रु और मित्र-नही हैं । किसी से बहस मुबाहसा (वाद विवाद) नहीं । सबसे तटस्थवृत्ति रखते हैं । हमारा मत यह पूरा (पूर्ण) है सब को अपनी आत्मा ही समझते है, अतः सबजीवों पर समान दृष्टि रखते हैं । तेरे-मेरे का भेद-ज्ञान नही रहा । आत्मा में कोई विकार नहीं, कोई वैरी नहीं । पाप विचार मन मे नही आने देते । ब्रह्म से सर्वदा ध्यान या प्रेम लगाये रहते हैं । दादू कहते हैं, इसी मार्ग से संसार से पार पहुंच हमने सहज तत्व (ब्रह्म-ज्ञान) को प्राप्त किया है ।

सुन्दर दास

१. बोलिये तो जब………बानि नहिं कहिये ।

परिचय—किसी काम को जाने तो करे, नहीं तो न करे ।

शब्दार्थ--बोलि बेकी=बोलने की। जामे लहिये=जिसमें मिलें। मनै=मन को। तुक भंग=तुक का टूटना।

अर्थ—बोलना आय तो बोले, नहीं तो मौन साध कर चुप बैठा रहे। शब्द जोड ने.की रीति आती है, तो जोड़े जिसमें तुक, छन्द और अर्थ आदि सुन्दर रूप में मिले। इसी प्रकार यदि ऐसा गाना आता है कि कानों से सुनते ही श्रोता के मन पर अधिकार हो जाय, तो गाये अन्यथा नहीं। जिसमें तुक भंग हो, छन्द भंग हो और अर्थ भी रमणीय न हो, सुन्दर कहते हैं, ऐसी उक्ति (कवित) कहने से तो कोई फायदा नहीं।

२. सुनत नगारे छोट······ ···रन मैं।

परिचय--जिसका हृदय युद्ध के बाजे सुन कर उछले और जो निडर हो कर युद्ध में कूद कर रण रोपे वही वास्तव मे वीर है।

शब्दार्थ--बिग सैं=खिले। मात है=समाता है। पतंग=पतंगा। परत=पड़ता है। पावक=अग्नि। सावत=एक पशु जिसका शिकार होता है। जुहारै=युद्ध करे। रुपि रहै=अटल खड़ा रहे।

अर्थ—युद्ध के नगारे पर चोट सुन कर वीर का मुख-कमल खिल जाता है। हृदय मे उछलता हुआ जोश शरीर में नहीं समाता। जब खड्ग चलाता है तो सब के धैर्य छूट जाते हैं, कायर दिल काप उठते हैं। शत्रुओं रूपी पशुओं के गोल पर वह ऐसे टूट कर पडता है जैसे पतंग निर्भय अग्नि में कूदता है। सुन्दर कहते हैं, वह वीर मार २ कर घमसान मचाता है और युद्ध करता है। शूरवीर वही है जो युद्ध में अटल हो कर मंडा रहे।

बनारसी दास

१, कायासौं बिचारे………सौं जकरी।

परिचय—ममता और मोह की जंजीरों में जकड़ा हुआ जीव झूठे में ही फूला फूला-फिरता है और संसार की मोह माया से ही अगाध प्रीति रखता है।

शब्दार्थ—हठ रीति=हठ से। हारिल की लकड़ी=हरियल पक्षि मृत्यु के समीप मुंह में तिनका दबा कर खाना पीना छोड़ देता है और मर जाता है। गोह=एक जीव जो पञ्जों से जमीन पकड़ कर छोड़ता नहीं। मरम को ठौर=ज्ञान का स्थान। धावै-भागते हैं। मकरी=मकड़ी। जकरी=जकड़ी।

अर्थ—जोकाया से ही प्रीति करता है और माया में ही हार जीत मानता है। जिसने हारिल पक्षी की लकड़ी के समान हठ पकड़ ली है। गोह नामक पशु जैसे अपने पंजों से जमीन को दृढ पकड़ लेता है, उसी प्रकार माया में जिसने पांव गड़ालिये हैं और अपना हठ नहीं छोडता। जिसने अभिमान की मरोड़ में तत्व ज्ञान का स्थान नहीं पाया। मोह में फंसा ऐसा प्राणी चारों ओर भागता है और मकडी के समान अपना जाल तानता है (मोह का परिवार बढ़ाता है)। ऐसी कुमति में पडा और झूठ केपदार्थों में आनन्द मानता मोह में फंसा प्राणी (हृदय की ममता) अनेक जंजीरों से (मोह के बन्धनों) से जकडा हुआ फूला-फूला फिरता है भ्रम में पड़ा हुआ अपने स्वरूप को नही पहचानता।

जल का हाथ में पात्र लेकर चांद के सामने ऊंचा किया (जिससे चांद का प्रतिबिम्ब उसमें उतर आया) । फिर उस पात्र को कृष्ण के हाथ में देकर बहलाने लगी, अरे चन्दा ! तुझे कृष्ण बुलाता है । (कृष्ण से कहती है) इस पात्र को हाथ में लिये खेलते रहना, ज़मीन ज़रा भी न रखना (कहीं चांद चला न जाय, देखते रहो)

* समाप्त *

मुद्रक—शक्ति प्रिंटिंग प्रेस, बल्ली मारान देहली ।

शिक्षण-संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए
हिन्दी का नवीन और उत्तम साहित्य

तथा

एफ० ए०, बी० ए०, एम० ए०
रत्न, भूषण, प्रभाकर
प्रथमा, मध्यमा, साहित्य रत्न

एवं

दिल्ली, यू० पी० और पञ्जाब की हिन्दी
एम० ए० और ऑनर्स की सभी पुस्तकें,
उनकी टीका, आलोचना और परीक्षापयोगी
उत्तम साहित्य मिलने का एक मात्र स्थान :

कला-मन्दिर

नई सड़क, दिल्ली

मुद्रक—शक्ति प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली तथा केवल टाइटिल पेज
श्रीभानु प्रिंटिङ्ग प्रेस, धरमपुरा, दिल्ली ।